भारत की ऐतिहासिक धरोहर

राजगृह

भोला झा

नाग प्रकाशन

पौराणिक काल से ही राजगृह भारत के राजनीतिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पीठ स्थान रहा, जो अपने आप में भारत की जीवन शैली का एक परिचय बन गया था।

चाहे महावीर हों या गौतम बुद्ध, या बाद के अन्य चिन्तक हों, या फिर अनेकानेक राजनीतिक हस्तियां हों, सबने राजगृह की इन परम्पराओं को आगे बढ़ाया और यह प्राचीन नगर केवल भारत में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में अपने लिए एक अलग पहचान बना लिया, जो समय-समय पर देश-विदेश के ज्ञान पिपासुओं को अपनी ओर आकर्षित करता रहा।

भोला झा द्वारा लिखित यह पुस्तक न केवल उन सभी घटनाओं का गहन ऐतिहासिक विश्लेषण करती है, बल्कि उन सबको सही रूप में प्रतिष्ठित भी करती है।

सुन्दर, सहज और आकर्षक शैली में लिखी हुई यह पुस्तक, जो कि लेखक की कठिन साधना का प्रमाण है, शोधकर्त्ताओं, विद्वजनों तथा सामान्य पाठकों के द्वारा आदरणीय होगी। शोधकार्य में इस पुस्तक ने एक नई दिशा की स्थापना की।

मूल्य : 165 रुपये

विद्वान एवं कुशल प्रशासक
(Programme) कार्यक्रम अधिकारी
संस्कृति विभाग (भारत सरकार)
डा० अजय कुमार पाण्डेय
साहब
को
सादर भेंट।
गीता झा
15. 11. 2000

भारत सरकार के गृह मंत्रालय
(राजभाषा विभाग)
द्वारा
केन्द्र सरकार के सभी मंत्रालयों,
विभागों एवं सार्वजनिक उपक्रमों के
पुस्तकालयों, के लिये

तथा

बिहार सरकार द्वारा माध्यमिक विद्यालयों
के पुस्तकालयों, के लिये स्वीकृत।

भारत की ऐतिहासिक धरोहर

भारत की ऐतिहासिक धरोहर

राजगृह

भोला झा

तारा प्रकाशन

समर्पण

पूज्य पिता

स्व. जगदीश प्रसाद झा

को

तर्पण-स्वरूप

समर्पित

आमुख

"रमणीक है राजगृह, मनोहर है गृद्धकूट, रम्य है गौतम निग्रोध, मनोहर है चोर प्रपात, रम्य है वैभार गिरि की सप्तपर्णी गुफा, रम्य है ऋषिगिरि की कालशिला, रम्य है शीतवन का सर्प-शौण्डिक, रमणीक है तपोदाराम, अभिराम है वेणुवन का कलन्दकहृद, आनन्दकर है जीवक का आम्रवन और रम्य है मद्रकुक्षि का मृगवन" (दीघनिकाय)।

ऐसा था राजगृह, जो पौराणिक काल से लेकर ईसा पूर्व पाँचवीं शतक तक मगध की राजधानी और राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। अलग-अलग नामों से यह जाना जाता रहा : वसुमति, बृहद्रथपुर, गिरिव्रज, कुशाग्रपुर, राजगृह और अब राजगीर। राजगृह वैदिक-अवैदिक मतमतान्तरों तथा विभिन्न मतावलम्बियों का केन्द्र रहा। गौतम बुद्ध और महाबीर ने यहाँ कई वर्षावास बिताए थे। जैन मतावलम्बियों के लिए राजगृह और भी पवित्र है, क्योंकि यहाँ बीसवें तीर्थकर मुनि सुव्रत का जन्म हुआ था। बौद्ध धर्म का तो यह प्रधान केन्द्र था और बुद्ध ने धर्म प्रचार में यहाँ अनेक वर्ष बिताए और राजगृह उनके जीवन की अनेक घटनाओं और धर्मव्याख्यानों का केन्द्र स्थल बना रहा। बुद्ध की मृत्यु के छः मास पश्चात् हुई प्रथम बौद्ध संगीति काउंसिल भी यहीं हुई थी। राजा बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु (ई.पू. 497-459) ने बुद्ध के अस्थि अवशेषों को यहीं एक स्तूप में अवस्थित करवाया।

नवोदित इतिहासकार भोला झा ने इस पुस्तक में राजगीर के उदय, पराकाष्ठा और इसके ह्रास का वर्णन किया है। लेखक ने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के सन्दर्भ में राजगीर के दो हजार पाँच सौ साल के इतिहास को देखने का प्रयत्न किया है जो एक सराहनीय कार्य है। इसके द्वारा भारत और बिहार की छवि भी प्रगट हो आई है।

राजगृह की धरती पर आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध के उपदेश आज भी सामयिक हैं। महावीर ने अहिंसा पर अत्यधिक बल दिया। उनके शब्दों में "जिस प्रकार इस संसार में अणु से छोटी तथा आकाश से बड़ी कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार अहिंसा व्रत से अधिक सूक्ष्म और विशाल कोई व्रत नहीं है।" अहिंसा का व्यापक अर्थ बताते हुए उन्होंने कहा था "सर्वभूतेषु संयम:" – अहिंसा, अर्थात् प्राणी मात्र के प्रति संयम रखना अहिंसा है। महावीर के उपदेश हम सभी के लिए ग्राह्य है जिसमें उन्होंने कहा था:–

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठ, अहिंसा सं जमो तवो।
देवा वितं नमम् संति, जस्स धमो सया मणो।"

अर्थात् "धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण हैं, जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते हैं।"

राजगृह के लिए भी यही कम सौभाग्य की बात नहीं है कि इतिहास में सर्वश्रेष्ठ मानव बुद्ध ने राजगृह को अपना आश्रय स्थल बनाया। जब मानव जाति हिंसा, शोषण और अंधविश्वास के जाल में जकड़ चुकी थी बुद्ध ने "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय। अर्पित हो मेरा मनुज काय।।" के उद्घोष से स्वयं तो उन्होंने मानव जाति के कल्याण के लिए अपने को समर्पित कर ही दिया और अपने भिक्षुओं को भी मानवता की सेवा के लिए उन्मुख किया।

बुद्ध अंधविश्वास और पाखण्ड को मनुष्य के विकास में बाधक मानते थे। संयुक्त निकाय वचन से उनके द्वारा अंधानुकरण के विरोध का संकेत मिलता है। उनके शब्दों में :

"तापाच छेदाच् च निकषात, सुवर्णामिव पंडितै:।
परीक्ष्य मद्वचो ग्राह्यं भिक्षवो न तु गौरवात्।।"

"जैसे जानकार जन सोने को तपाकर काटकर कसौटी पर कसकर परखते है और फिर उसे ग्रहण करते है, वैसे ही हे भिक्षुओं! मेरे वचनों को परखकर ग्रहण करो, केवल भक्तिवश उस पर विश्वास मत करो।" वे मनुष्य के विकास और स्वाभिमान के लिए आत्मनिर्भरता को आवश्यक

मानते थे। आगे चलकर तो उन्होंने "अप्प दीपो भव" अपना दीपक आप बनो, कहा था।

बुद्ध प्रजातंत्र के हिमायती थे। उनके जमाने में लिच्छवियों ने वैशाली में प्रजातांत्रिक पद्धति से प्रजातंत्र का काम चलाया। अपने जीवन के अन्त काल में बुद्ध ने अपनी आस्था प्रजातंत्र में इस प्रकार जताई :

और तथागत ने कहा : आनन्द, क्या तुमने सुना है कि वज्जिगण निरन्तर सभाएं करते हैं?

ऐसा ही मैंने भी सुना है, स्वामी: आनन्द ने उत्तर दिया।

तथागत ने दोहराया "आनन्द, जब तक वज्जिगण यह सभाएं पूरी तरह और लगातार करते रहेंगे, यह आशा की जा सकती है कि उनका पतन नहीं होगा; बल्कि वे फलेंगे-फूलेंगे।"

न केवल भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध, वरन् परवर्त्ती काल में मख्दूम शाह ने भी यही साधना कर इसे पूजनीय बनाया और जो इस स्थल की निरन्तरता का परिचायक है। लेखक की यह मान्यता है कि विभिन्न धर्मावलम्बियों के पावन स्थल के रूप में पूजित होने के बावजूद यहाँ किसी प्रकार का धार्मिक विवाद नहीं हुआ।

राजगृह का विशाल प्राकार, शैलरक्षित गुफाएं, मठ, स्तूप, संघाराम, देवायतन, विविध प्रकार की मूर्त्तियां, सील मुहरें, पुरालेख, मुद्राएं तथा उत्खनन से प्राप्त अन्य पुरावशेष, भारतीय पुरातत्व, इतिहास, कला तथा अन्य विधाओं के मर्मज्ञ एवं शोधकर्ताओं के लिए अनूठी सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

स्वाधीन भारत में पं. जवाहर लाल नेहरू की यह कामना थी कि नालंदा और राजगीर अपनी ऐतिहासिक गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए बुद्ध और महावीर और उनके अनुयायियों की विचार धारा का अध्ययन स्थल बनें, जहां देश और विदेश के लोग सिर्फ धार्मिक कारणों अथवा पर्यटन के लिए ही नहीं जाएं, बल्कि अनुसंधान और विद्या की भी भूख मिटाने के लिए वहां आयें। राजगीर के स्थानीय लोग वहां अपने को इस विरासत का भागीदार समझें।

भोला झा द्वारा लिखित **भारत की ऐतिहासिक धरोहर: राजगृह** एक अच्छी

कृति है जिसमें उन्होंने इस अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल से प्राप्त सामग्री का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रामाणिक और तथ्यपरक सामग्री को वस्तुनिष्ठ तरीके से प्रस्तुत करके उन्होंने इसे पठनीय और संग्रहणीय बना दिया है। लेखक की मंगल कामना करते हुए हम आशा करते हैं कि वे शीघ्र ही इतिहासकारों के बीच अपना स्थान बना लेंगे। इस प्रशंसनीय प्रयास के लिए लेखक को हमारी शुभकामनाएं।

नई दिल्ली
12-6-1996

(बाल्मीकि प्रसाद सिंह)
सचिव,
संस्कृति विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
भारत सरकार
एवं
महानिदेशक,
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली

लेखकीय

काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान और बिहार रिसर्च सोसायटी में जब मैं अपना शोध कार्य पूरा कर रहा था, उसी समय विभिन्न मंचों से ऐतिहासिक आलेख पढ़ने का अवसर भी प्राप्त हुआ। मित्रों ने उसे लिपिबद्ध करने का आग्रह किया।

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति से एम. ए. करने के क्रम में मैंने जयमंगलागढ़ नवग्रह प्रतिमा पर 150 पृष्ठ का मतबंद्ध विश्व विद्यालय में जमा किया था। मैं उसी को प्रकाशित करना चाह रहा था, किन्तु कुछ कारणवश बिहार के कतिपय ऐतिहासिक स्थलों की ओर मेरा ध्यान गया। सर्वप्रथम मैंने बिहार के दस ऐतिहासिक स्थलों पर काम करना शुरू किया और उन सबको मिलाकर 'बिहार की ऐतिहासिक धरोहर' नामक पुस्तक का रूप देना चाह रहा था। किन्तु मनुष्य कुछ और चाहता है, ईश्वर कुछ और ही करते हैं। मित्रों के सुझाव पर प्रत्येक ऐतिहासिक स्थल पर अलग-अलग पुस्तक प्रकाशित करने की योजना बनी और उसी का प्रथम पुष्प 'राजगृह' आपको भेंट कर रहा हूँ।

पंच पर्वतों के आँचल में अवस्थित महान् मगध साम्राज्य की प्रथम राजधानी राजगृह का अपना विशिष्ट महत्व रहा है। यह संतों, यतियों और धर्म प्रवर्त्तकों की साधना स्थली के रूप में भी विश्वविख्यात है। अनेक सूरमाओं को पैदा करने का गौरव भी इस भूमि को है।

राजगृह दीर्घकाल तक मगध की राजधानी रही। श्रीकृष्ण द्वारा जरासंध से युद्ध भूमि से पलायन, पुनः जरासंध की कूटनीति द्वारा पराजय, उसकी कैद से अनेक राजाओं की मुक्ति तथा अजातशत्रु द्वारा वैशाली विजय प्राचीन इतिहास में राजनीतिक क्षमता का परिचय देता है। राजगृह की धरती पर बुद्ध की निर्वाण प्राप्ति के पश्चात बौद्धों की प्रथम संगीति हुई, जिसमें बुद्ध के वचनों को लिपिबद्ध किया गया। सच तो यह है कि बौद्ध धर्म के

आरम्भ के अनेक विधि-विधान राजगृह की धरती पर ही बने। बौद्ध धर्म के साथ-साथ राजगृह जैनियों के लिए भी पवित्र स्थली रही है। अनेक जैन गुरुओं का जन्म, तप, ज्ञान-प्राप्ति, निर्वाण राजगृह में ही हुए। मध्यकाल में प्रसिद्ध सूफी संत मख्दूम शाह ने वर्षों तक राजगृह में तपस्या करने के बाद धर्म प्रचार किया। गुरु नानक देव द्वारा इस स्थल पर धर्मोपदेश देने के उल्लेख मिलते हैं।

मनियार मठ, रण-भूमि, बिम्बिसार का कैदखाना, बिम्बिसार की रथशाला, सोन भण्डार, शीतल और गर्म जलकुण्ड, स्तूप, जरासंध की बैठकी, (पीपल गृह) जैन मंदिर, शिवालय, विश्वशांति स्तूप आदि इसके दर्शनीय स्थल हैं। विश्व के पर्यटन स्थलों में राजगृह का अद्वितीय स्थान है। विभिन्न धर्मों के संगम स्थल के रूप में राजगृह का महत्व आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है।

राजवैद्य जीवक का औषधीय ज्ञान, उसके द्वारा अयोध्या, वाराणसी के श्रेष्ठि परिवार व अवन्ति के शासक चंडप्रद्योत की चिकित्सा राजगृह की शैक्षिक क्षमता व सार्वभौमिकता का बोध कराता है। यद्यपि राजगृह का वह महत्व आज नहीं है, जो कभी था, किन्तु एक विख्यात पर्यटन एवं ऐतिहासिक स्थल के रूप में इसके महत्व को कौन नकार सकता है। किसी भी ऐतिहासिक स्थल व घटना का पूर्ण विवेचन उपलब्ध दस्तावेजों पर ही आधारित होता है। बिखरी सामग्रियों को यथा-क्रम करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक घटनाक्रम, सामाजिक परिवेश व सांस्कृतिक उत्थान का क्रमशः विवेचन है।

यद्यपि मेरा संपूर्ण प्रयास भूलों से भरा है और मेरे लिए पुस्तक लिखना तो 'जिमि पिपीलिका सागर थाहा' ही माना जाएगा, किन्तु 'नीर क्षीर विवेकी हंस' तुल्य पाठक इस पुस्तक की खामियों के लिए क्षमा करेंगे। इस पुस्तक की त्रुटियों को अगले संस्करण में सुधारने का प्रयास किया जाएगा। आपके सुझाव प्रकाशिका के पते पर सादर आमंत्रित हैं।

इस पुस्तक को लिखने के क्रम में बहुमूल्य सुझाव के लिए प्रो. टी. एच. दयाल, प्रो. फुलेश्वर प्रसाद सिंह, प्रो. विजय कुमार ठाकुर, डॉ. रमेश प्रसाद सिंह और विजय कुमार चौधरी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

लेखकीय

पूर्व प्राचार्य श्री केदार नाथ झा ने अपने बहुमूल्य सुझाव से इस पुस्तक के महत्व को बढ़ाने में जो सहयोग किया है, इस हेतु उनका आभारी हूँ। डॉ. आशा नारायण शर्मा, पूर्व प्राचार्य, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, ने इस पुस्तक के संपादन में मदद कर भाषा संबंधी अशुद्धियों को दूर करने का जो कष्ट किया है, इसके लिए इनके प्रति मौन कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। श्री राजेश्वर पाठक, प्रो. डी. आर. ब्रह्मचारी, प्रो. रमण कुमार, प्रों. मिहिर कुमार और विद्वान लेखक रामशरण शर्मा 'मुंशी' के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

पुनः मैं राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित डॉ. एम. पी. सिन्हा का हार्दिक आभारी हूं जिनके सहयोग के बिना पुस्तक लेखन का श्रीगणेश ही संभव नहीं था। अंत में मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग देने वाले सभी सज्जनों का आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक प्रकाशन में अपना पूर्ण सहयोग दिया है।

नई दिल्ली
10. 6. 1996

भोला झा

भोला झा

विषय अनुक्रम

प्रथम अध्याय

परिचय

भारत के वर्तमान बिहार राज्य के दक्षिण में राजगृह अवस्थित है। यह एक आदर्श तीर्थ स्थान एवं राष्ट्रीय स्तर का ऐतिहासिक स्थल है। प्राचीन भारत के विकसित एवं उत्कृष्ट नगरों—तक्षशिला, कौशाम्बी, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, वैशाली एवं चम्पा की श्रेणी एवं पंक्ति में राजगृह की भी ऐतिहासिक गणना की जाती है। छठी शताब्दी ई. पू. के सर्वाधिक शक्तिशाली जनपद मगध की प्रथम राजधानी के रूप में राजगृह समादृत था। इतना ही नहीं, यह भारत के महान् योद्धाओं एवं विजेताओं की जन्म भूमि के रूप में भी चरितार्थ है। विश्व-मानव को शान्ति, अहिंसा, त्याग, सहिष्णुता, करुणा एवं विश्व-बन्धुत्व के सन्देश देने वाले जैनधर्म के तीर्थंकर भगवान् महावीर एवं बौद्धधर्म के प्रवर्त्तक भगवान् बुद्ध दोनों की कर्मस्थली होने का गौरव भी इसे प्राप्त है। फलत: राजगृह भारत के ही नहीं, सम्पूर्ण एशिया के राजनीतिक एवं आध्यात्मिक मानचित्र पर अंकित है। यहां के गर्म-जल-कुण्डों में स्नान करने की ललक देशी एवं विदेशी पर्यटकों में पायी जाती है, क्योंकि ऐसी मान्यता चली आ रही है कि इसके गर्म-जल-कुण्डों में स्नान करने से पाप-ताप-संताप मिट जाते हैं। विभिन्न धर्मों एवं धर्मावलम्बियों के पवित्र स्थल के रूप में प्रतिष्ठित राजगृह विश्व को भ्रातृत्व, धर्म-समभाव एवं धर्मनिरपेक्षता का पावन सन्देश देता है।

राजगृह के सन्दर्भ में धर्मनिरपेक्षता की बातों का उल्लेख भी अनिवार्य है। आजाद भारत की संवैधानिक तस्वीर का रंग धर्मनिरपेक्षता का रंग है, पर यह जानना चाहिए कि हजारों वर्ष पूर्व राजगृह की धरती पर धर्मनिरपेक्षता का पावन-प्रकाश उतर चुका था। इसे प्रमाणित करने के लिए एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे।

एक सूफी संत, जिनका नाम शर्फुद्दीन मख्दूम शाह मनेरी था और जिनका जन्म चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में पटना जिले के मनेर नामक स्थान में हुआ था, राजगृह के प्रपात के निकट की गुफा में रहते थे। वहीं वे तपश्चर्या करते थे। ऐसा कहा जाता है कि यह वही स्थान है जहां महावीर एवं बुद्ध ने भी साधना की थी। आज भी उस स्थान के एक कुंड का नाम मख्दूम कुण्ड है। मख्दूम

फारसी के बड़े विद्वान थे एवं दिल्ली के बादशाह के पास भी जाते थे। जीवन से विरक्त होकर उन्होंने सूफी प्रेम-दर्शन का पाला पकड़ा और राजगृह आकर रहने लगे। प्रायः लोग उनसे मिलकर आशीर्वाद लेने आते थे। लोगों की बढ़ती भीड़ को लक्ष्य कर मख्दूम शाह सप्ताह में एक दिन शुक्रवार को बिहार शरीफ आते थे। वहां लोगों की भीड़ उनसे मिलने के लिए एकत्र रहती थी। ऐसा कहा जाता है कि वहां एक छोटी-सी मस्जिद थी जिसमें वे नमाज अता करते थे। यह भी आश्चर्य है कि वे राजगृह से पैदल 18 कि.मी. की दूरी तयकर बिहार शरीफ आते थे। उनसे मिलने वालों में हिन्दू एवं मुसलमान दोनों थे। मख्दूम शाह लोगों की सुविधा के लिए मगध की बोली मगही में प्रवचन करते थे। तुगलक वंशीय शासक मुहम्मद-बिन-तुगलक ने उनके लिए एक आश्रम बनवा दिया था ताकि उन्हें वहां ठहरने की सुविधा हो। बाद में वे राजगृह छोड़कर बिहार शरीफ में रहने लगे। उनकी मृत्यु के बाद उस स्थान पर एक मजार निर्मित कराया गया, जहां आज भी वार्षिकी के अवसर पर हिन्दू-मुसलमान दोनों जाते हैं एवं श्रद्धापूर्वक चादर चढ़ाते हैं। तभी से बिहार शब्द के साथ शरीफ जोड़ा गया जो आज का बिहार शरीफ है।

मख्दूम साहब के उपदेशों में प्रेम तथा एकेश्वरवाद के सन्देश हैं। बुद्ध एवं महावीर की तरह इन्होंने भी भोग-विलास एवं भौतिक साधनों के उपयोग को हीन बताया एवं उनसे विलग रहने का सन्देश सुनाया। कर्म एवं जीवन की पवित्रता तथा शुद्धता पर उन्होंने भी बुद्ध एवं महावीर की तरह जोर दिया। वे सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता के भाव के प्रबल समर्थक थे। यह विन्दु धर्म निरपेक्षता से सम्बन्धित है। हिन्दू-इस्लामी कट्टरता का विरोध सूफी सम्प्रदाय का महत्तम उद्देश्य है। इस महत्तम उद्देश्य को शाह मख्दूम ने भी अपने उपदेशों में संकलित किया, क्योंकि वे भी सूफी संत थे। इन सारे तथ्यों के उल्लेख पॉल जैक्शन की प्रसिद्ध पुस्तक "शर्फुद्दीन मनेरी : दी हण्डरेड लेटर्स" के पृष्ठ एक, एवं उन्हीं की दूसरी पुस्तक "बिहार्स मख्दूम साहिब" के पृष्ठ 10-12 पर मिलते हैं।

इसी तरह सिक्ख धर्म के संस्थापक नानकदेव के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है कि वे बिहार आये थे। पटना में कुछ दिनों तक ठहरने के बाद वे राजगृह पहुंचे। वहां उन्हें सर्वत्र उष्ण जल के कुण्ड दिखाई पड़े। उन्होंने मानव के लिए शीत-जल-कुण्ड की आवश्यकता महसूस की। यह भी उल्लेख मिलता है कि उन्होंने अपने शिष्य को सामने का पत्थर-खंड हटाने का आदेश दिया और उसके हटते ही शीतल जल की धारा फूट पड़ी। वे कुछ दिनों तक वहां रहे तथा

ग्रामों में जाकर उन्होंने सिक्ख धर्म का प्रचार किया। इसका प्रमाण यह भी है कि आज भी राजगृह के निकटवर्ती कुछ ग्रामों में सिक्ख धर्म के उदासी पंथ को मानने वाले लोग मिलते हैं।

वर्तमान काल में सिक्खों ने राजगृह में नानकदेव की स्मृति में एक गुरूद्वारे का निर्माण कराया है। नानकदेव ने प्रभुनाम-स्मरण, मिहनत की कमाई के उपयोग, समान रूप से मिल जुलकर खाने एवं शान्तिपूर्वक करुणा-प्रेम की छाया में जीने का उपदेश दिया। सिक्ख धर्म के पावन स्थलों में राजगृह का नाम भी सादर लिया जाता है। ये तथ्य "लालोवाली पुरातन जन्म साखी" में उल्लिखित हैं।

राजगृह की धार्मिक गरिमा के उल्लेख में शब्द मौन हो जाते हैं। इसी भूमि पर कभी कृष्ण ने अपने दर्शन की दृष्टि फैलायी। इसी धरती पर महावीर तथा बुद्ध ने अहिंसा, दया एवं करुणा के आलोक-पुंज को प्रतिस्थापित किया और यही वह धरती है, जहां सूफी संत की प्रेमिल सलिला शाह मख्दूम की वाणी में फूटी तथा नानक देव का सिक्ख धर्म मानवता के कल्याण के लिए आलोक बिखेर गया। धर्मों की तीर्थ स्थली, धर्म निरपेक्षता की विधायिका एवं धर्म-सहिष्णुता की संरक्षिका यहां की पावन-भूमि आज भी नाम को मर्यादित करती है और वह नाम है —राजगृह।

यह राजगृह बिहार राज्य के नालंदा जिले के मुख्यालय बिहारशरीफ—गया मार्ग में 21 कि.मी., नालन्दा महाविहार के पुरास्थल से 10 कि.मी., दक्षिण पटना (अशोक कालीन पाटलिपुत्र) से 101 कि.मी., पूर्व-दक्षिण और बोध-गया से लगभग 85 कि.मी. पूर्व दिशा में अवस्थित है। यह उत्तर भारत का प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है। यहां गमनागमन के लिए सड़क मार्ग अधिक उपयुक्त है। रेल मार्ग भी है, पर सड़क मार्ग की अपेक्षा वह कम उपयोगी एवं प्रचलित है। भौगोलिक तुला पर यह अक्षांश 85 डि.-86 डि. एवं देशान्तर 25 डि.-28 डि. के बीच है। यहां की जलवायु मौसम के सन्दर्भ में अनुकूल है।

अभी राजगृह लगभग पांच कि.मी. में फैला हुआ है। इसकी रमणीयता पांच पहाड़ियों से घिरे रहने के कारण बढ़ती है। ये पांच पहाड़ियां हैं—वैभार पहाड़ी, विपुल पर्वत, सोन पहाड़, उदयगिरि और रत्नगिरि। रत्नगिरि जुड़वां पर्वत है, इसके एक भाग को छाता शिला भी कहते हैं, क्योंकि यह दो भागों से जुड़ा है। वे दो भाग हैं—उत्तरी-पूर्वी एवं दक्षिणी-पूर्वी। इसके उत्तर में विपुल पर्वत है। ये तीनों पहाड़ राजगृह को पूर्व से घेरकर अपनी गोद में बिठाये हुए हैं। छाता शिला पर जापान के सौजन्य से निर्मित शान्ति-स्तूप विद्यमान है। यह पर्वत सर्वाधिक ऊंचा है और प्राचीनकाल से ही बौद्धधर्म से सम्बद्ध है। इसके बाद ही दक्षिण की चौड़ी

घाटी के पार्श्व में उदयगिरि पर्वत है। इन दोनों के बीच के भू-भाग को राजा बिम्बिसार के समय में ही पाषाण किला बनाकर घेर लिया गया था। इस पर्वत की ऊंचाई 724 फीट है। यह आधुनिक जैन-मन्दिर से सुशोभित है। इस पर जाने का मार्ग भी है, जो राजा बिम्बिसार के रथसार के पुरास्थल के उत्तर में हैं। जैनियों ने पहाड़ी को काट-छांटकर यातायात का मार्ग निर्मित कर लिया है।

उदयगिरि के पश्चिम में सोन पर्वत है। इन दो पर्वतों के बीच वानगंगा नामक सोता है। बरसात में राजगृह के पर्वतों से बहने वाले जल को यह सोता दक्षिण दिशा में शहर से बाहर प्रवाहित कर देता है। इस सोते के ऊपर आधुनिक पुल बना हुआ है जिसके ऊपर से नवादा-गया की सड़क दोनों ओर जाती है। मगध सम्राट बिम्बिसार के समय में उदयगिरि और सोन पर्वत के निकट कम ऊंचाई वाले भाग में शिलाखण्डों से सुरक्षा की चौड़ी दीवार खड़ी की गयी थी। राजगृह पहाड़ी के मध्य के रिक्त स्थानों को शिला-प्राचीरों से घेरा गया। मानव और प्रकृति-कृत दुर्गों से सुरक्षित राजगृह को मगध शासकों ने राजधानी का सम्मानित दर्जा दिया था।

सोन पर्वत पर भी एक आधुनिक जैन मन्दिर निर्मित और विद्यमान है। यहां से एक मार्ग राजा बिम्बिसार के कैदीगृह (जेल) तक जाने के लिए बना हुआ है। सोन पर्वत और वैभारगिरि के मध्य एक चौड़ी खाई है जिसे पर्वतीय घाटी भी कहते हैं। इससे प्रचीन रणभूमि की ओर जाने का मार्ग है। इसे भी रक्षा की महत्ता को स्वीकारते हुए पाषाण खण्डों की दीवार बनाकर घेर दिया गया है। इसका निर्माण-काल छठी सदी ई. पूर्व है, जो राजा बिम्बिसार का समय, शासनकाल है।

वैभार गिरि राजगृह की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहाड़ी है। यह राजगृह नगर के उत्तर-पश्चिम में अवस्थित है। इसके पूर्वी भाग की ऊंचाई 572 फीट एवं पश्चिमी भाग की 1147 फीट है। इसके ऊपर नये-पुराने जैन मन्दिर, पुराने महादेव मन्दिर के भग्नावशेष, सप्तपर्णी गुफा, बलराम मन्दिर एवं पाषाणी पीपल-गृह के खंडहर अब भी विद्यमान हैं। इसी पर्वत के नीचे में सोन भंडार-गुफा एवं जरासन्ध के अखाड़े के खंडहर हैं। इसके उत्तरी-पूर्वी किनारे पर राजगृह के विख्यात उष्ण-जल-झरने एवं उसके कुण्ड हैं। विभिन्न नामों से सम्बोधित इन कुण्डों का विस्तृत उल्लेख आगे किया जायेगा।

वैभार पर्वत और विपुल पर्वत के उत्तर बाह्य घाटी में राजा बिम्बिसार और उसके उत्तराधिकारी (पुत्र) अजातशत्रु के शासन काल में एक के बाद एक दूसरी रक्षा की दीवारें बनवाई गयी थीं। इसके उत्तरी भाग में प्रवेश-द्वार था जिससे राजगृह

में प्रवेश किया जाता था। यों राजगृह पांच प्राकृतिक पर्वतों, रक्षा के उपादानों से स्वयं भी घिरा है। इसकी औसत ऊंचाई बगल की भूमि से 220 फीट अधिक है। इसके पूर्व, पश्चिम और उत्तर में फैली उर्वरा भूमि है, जिसे मैदानी इलाका भी कहते हैं। दक्षिणी मैदान भी उर्वर था, परन्तु राजगृह में अवस्थित नागार्जुनी पर्वत तथा गया की पहाड़ियों से जल के साथ प्रवाहित होने वाले लाल, महीन पत्थर-कण से आच्छादित होते रहने के फलस्वरूप यह इलाका बंजर होता जा रहा है। बारिश की कमी के कारण यहां की बरसाती नदियां लाल रेत-कणों को ढोने में असमर्थ हैं। अत: यह इलाका खेती-बाड़ी की दृष्टि से मध्यम पड़ने के कारण गरीबी का शिकार है, जबकि राजगृह के शेष तीन भागों में बड़े और खुशहाल-सम्पन्न गांव दृश्य हैं। यहां धान मुख्य फसल के रूप में विख्यात है। ह्वेनसांग के यात्रा-वृत्तांत से जाहिर होता है कि नालन्दा महाविहार में पकाये जाने वाले चावल (भात) की सुगन्ध से ही भूखे व्यक्ति के पेट भर जाते थे। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मगध जनपद प्राचीन काल से ही धान (चावल) के उत्पादन का प्रमुख केन्द्र था। सिलाव (राजगृह के निकट का एक गांव) का चिउड़ा आज भी बहुत प्रसिद्ध है।

प्रारंभ में राजगृह जैन एवं बौद्ध धर्मियों का सम्यक् केन्द्र था। परन्तु बाद में धीरें-धीरे नालन्दा बौद्धों के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। स्याद्वाद से अधिक जुड़े जैनी राजगृह को ही अपना सबल केन्द्र बनाने में लगे रहे। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार जैनों के बीसवें तीर्थंकर मुनि-सुव्रत की जन्म भूमि राजगृह ही है। अत: राजगृह बौद्धों की अपेक्षा जैनियों का तीर्थ-स्थल प्रभावशाली रूप से बना रहा। आगे चलकर हिन्दुओं (शेष धर्मावलम्बियों) ने भी राजगृह में शिव मंदिर बनवाये और उसे अपना तीर्थ स्थल बनाया। यही नहीं, यह स्थान मुसलमानों के लिए भी पवित्र है, क्योंकि सूफी संत मख्दूम शाह शर्फुद्दीन का मकबरा भी है और उनके नाम पर एक मख्दूम कुण्ड भी है।

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजगृह का निर्माण मगध महाजनपद के विकास क्रम में ही सम्पन्न हुआ था। उन दिनों राजगृह में यातायात की अच्छी सुविधा थी। नदी एवं नाले सुव्यवस्थित और विकसित अवस्था में थे। कृषि उन्नतावस्था में थी। निकट के वनों से भवन-निर्माण के लिए पर्याप्त लकड़ियां मिल जाती थीं। उन्हीं वनों से सैन्य-उपयोग के हेतु हाथी भी प्राप्त हो जाते थे। आस-पास के भू-गर्भों से राजगृह के शासकों को खनिज के रूप में लोहा प्राप्य था। यह प्राकृतिक वरदान उसे अपार, असीम समृद्धि की ओर लिए जा रहा था। वहां के कुशल कारीगर लोहे से सुन्दर उपयोगी अस्त्र-शस्त्र तैयार करते थे जिसकी

बिक्री बाहर भी होती थी। लौह निर्मित कुछ सामग्रियां व्यापार संवर्द्धन में भी काम आती थीं। सामरिक दृष्टि से भी राजगृह का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। अपने अतीत की गौरवशाली परम्परा को कायम रखते हुए राजगृह वर्षों तक प्रतिष्ठा की दृष्टि से शीर्षस्थ रहा और कई पीढ़ियों तक मगध शासकों ने इस राजधानी में राज किये।

द्वितीय अध्याय

पृष्ठभूमि

गिरिव्रज (राजगृह) का इतिहास अति प्राचीन है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार यह राजा वसु द्वारा बसाया गया था। इसीलिए यह वसुमति नगरी-नाम से भी जाना जाता है। गिरिव्रज पंच पर्वतों के मध्य अवस्थित है। यहां सुमागधी नदी प्रवाहित होती है। इसलिए भी यहां के लोग मागध कहलाते हैं। पांच पर्वतों से मालाकार रूप में राजगृह घिरा हुआ है। राम को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि वसु महात्मा की वही मागधी है, जो शस्य सम्पन्न क्षेत्रों से परिपूर्ण है।[1]

महाभारत में श्रीकृष्ण द्वारा किया गया राजगृह—वर्णन ध्यातव्य है। वहां कहा गया है कि किस प्रकार गिरिव्रज की रक्षा पंचपर्वतों, गौतम ऋषि तथा उनके वंशजों, प्रताप और नागों से होती है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—"हे पार्थ! मगध की राजधानी गिरिव्रज कैसा मनोरम है! यह पशु-धन से परिपूर्ण है। यहां के जलाशय जल से निरन्तर पूर्ण रहते हैं। यहां के लोगों पर रोगों का आक्रमण नहीं होता। यहां के प्रासाद-समूह सुभग प्रतीत होते हैं। यहां वैभार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि एवं चैत्यक नाम से नामित पांच पर्वत हैं। इनके ऊपर वृक्षों की सघन छांह है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब मिलकर गिरिव्रज की रक्षा करते हैं। वृक्षों की शाखायें पुष्पों से लदी रहती हैं। उनके सुवास मन-प्राण को धन्य करते हैं। प्रेमी यहां सदा विहार करते हैं। ये पर्वत लोध्र के जंगल से घिरे हैं। यहां गौतम नामक महात्मा ने 'उशीनर' राजा की शूद्रकन्या से काक्षिवान् आदि राजाओं को

---

1. चक्रे पुरवरं राजा वसुर्नाम गिरिव्रजम्।
एषा वसुमतीनाम वसोस्तस्य महात्मनः।
एते शैलवराः पंच प्रकाशन्ते समन्ततः।
सुमागधी नदी रम्या मागधान्विश्रुतायया।
पंचानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते।
सैषा हि मागधी राम!, वसोस्तस्य महात्मनः।
पूर्वाभिचारिता राम! सुक्षेत्रा शस्य मालिनी।
वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड अ. 32, श्लोक 7-15.

उत्पन्न किया और गौतमवंशी होने के कारण वे क्षत्रिय कहलाये। फिर वे मागधवंशी नाम से प्रसिद्ध हुए। हे अर्जुन! प्राचीन काल में अंग, बंग आदि के राजे गौतम के आश्रम में सुख एवं चैन से निवास करते थे। हे पार्थ! इन वन सुषमाओं को देखो! पीपल और लोध्र-वन, जो दृष्टिपथ को धन्य करते हैं, गौतम के आश्रम के सन्निकट ही हैं। शत्रुओं के मान-मर्दन करने वाले 'अर्बुद' और 'शक्रवापी' नामक दो सर्पराज रहते हैं। यहां पर स्वस्तिक और मणिनाग नामक नागों का निवास है। मनु ने इसे ऐसा बनाया है कि यहां के नभ-मण्डल सर्वदा मेघ-माला से सुशोभित रहते हैं एवं निरन्तर वर्षा होती रहती है। कौशिक ऋषि तथा मणिमान् नामक नाग ने भी इस प्रदेश पर कृपा कर रखी है।[2]

वैशाली के चापाल चैत्य में अपने प्रिय शिष्य आनन्द से महात्मा बुद्ध ने कहा था– "राजगृह रमणीय है। गृद्धकूट पर्वत रमणीय है। गौतम का निग्रोध रमणीय है। चोर प्रपात रमणीय है। वैभार गिरि की सप्तपर्णी गुफा रमणीय है। ऋषिगिरि पहाड़ की कालशिला रमणीय है। शीत वन के सर्पशौण्डिक रमणीय हैं। तपोदाराम रमणीय है। वेणुवन का कलन्दक निवाप रमणीय है। जीवक का आम्रवन रमणीय है। मद्रकुक्षी का मृगदाव रमणीय है।"[3]

मुनिसुव्रत के रचयिता अर्हदास ने इस नगर के वैभव का उल्लेख किया है। उनका कहना है राजगृह विशाल उद्यानों से घिरा था। उनकी शोभा आकर्षक थी। उद्यानों में यत्र-तत्र अनेक तालाब थे। यहां के पर्वतों से जल की धाराएं फूटती थीं। उनमें स्त्रियां स्नान करती थीं। उनके घुले सिन्दूर से जल की धारा लाल हो जाती थी। नगर के बाहरी मैदान में अनेक कार्यकलाप होते थे। कहीं घोड़े एवं हाथियों के झुण्ड दिखाई पड़ते थे, तो कहीं योद्धाओं को शस्त्र विद्या का प्रशिक्षण दिया जाता था, कहीं पट्ठे मल्ल युद्ध करते दिखाई पड़ते थे, तो कहीं शारीरिक व्यायाम करने वाले वीरों की टोली दृष्टिगत होती थी। नगर के प्राचीरों पर विद्यमान स्वर्ण कलशों को देखने के लिए देव-कन्याएं उत्सुक रहती थीं। यह नगर सुन्दर

---

2. महाभारत 'सभापर्व', अ. 21, श्लोक 1-10.
3. रमणीयं आनंद राजगहं, रमणीयो गिज्झकूटो पब्बतो,
रमणीयो गौतम निग्रोधो, रमणीयो चोर पपातो,
रमणीया वेभार पस्से सत्त पण्णि गुहा, रमणीयं इसिगिलि पस्से काल सिला,
रमणीयो सीतवने, सप्पसोण्डक पब्भारो,
रमणीयो तपोदारामो, रमणीयोवेलुवने कलन्दक निवापो,
रमणीयं जीवकम्ब वनं, रमणीयं मधुकुक्षिस्मिं मृगदायो।।
दीघनिकाय – 6, 31, 43.

अट्टालिकाओं से सुशोभित था। नगर के चारों ओर इन्द्रधनुषी रंगों की ध्वजाएं फहराती थीं। यहां के जलाशयों में मछलियां स्वच्छन्द विहार करती थीं। अट्टालिकाओं पर लगी इन्द्रकान्त मणि का प्रकाश चन्द्रमा की चांदनी को मात करता था। इसका शासक सर्वगुण सम्पन्न एवं धनवान था। राजदरबार विद्वानों, गीतकारों एवं बुद्धिमानों से भरा रहता था। यह स्थान कला-कौशल के विकास के लिए उपयुक्त था।

मगध सम्राट बिम्बिसार ने बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद उसके विकास की दिशा में अपने ध्यान को मोड़ा। उसने प्रसिद्ध 'वेणुवन'—जो राजगृह के पार्श्व में था, दान में दे दिया और भिक्षुओं के निवास के लिए उसमें एक विहार भी बनवाया। यह पहला बौद्ध विहार था। इसके बाद भिक्षुओं के रहने के लिए बौद्ध विहार का निर्माण कार्य बहुत तेजी से होने लगा और आगे चलकर असंख्य बौद्ध विहार निर्मित कर दिए गए। राजगृह जिस मण्डल के अन्तर्गत है, उसके मुख्यालय बिहार शरीफ का नाम 'उदन्तपुरी' था। वहां बौद्ध मठों और चैत्यों की बहुलता थी। मठ का नाम विहार था। अतः आज के बिहार शरीफ का नाम तत्कालीन मुसलमान शासकों द्वारा रखा गया था। इस्लाम धर्मावलम्बी अपने मजहब के दायरे में पवित्र एवं पूज्य स्थानों के लिए शरीफ शब्द का प्रयोग करते हैं। विहार की पवित्रता को लक्ष्य कर उसमें शरीफ शब्द जोड़ा गया और तब विहार शरीफ शब्द बना। यह नाम उस स्थान की पवित्रता का प्रतीक है। ऐसे अन्य नाम भी मिलते हैं जैसे — फुलवारी शरीफ, अजमेर शरीफ आदि। जैसे हिन्दू गंगा के साथ 'जी' जोड़कर गंगाजी बोलते हैं, वैसे ही मुसलमान पवित्रता को झलकाने के लिए स्थान विशेष में शरीफ शब्द जोड़कर बोलते हैं। बाद में मगध का नाम विहार प्रदेश रखा गया। 'शेरशाह सूरी के काल में (1542 ई.) सम्पूर्ण प्रांत का नाम बिहार हो गया।'[4] बौद्ध विहारों की बहुलता के कारण ही इस प्रांत का नाम बिहार पड़ा। इस तथ्य की पुष्टि पंडित जवाहर लाल नेहरू भी करते हैं— ''सारे देश में बड़े-बड़े मठ बन गये जो विहार कहलाते थे। मालूम होता है, पाटलिपुत्र या पटना के आसपास इतने ज्यादा विहार थे कि सारा प्रांत ही विहार या जैसा कि आजकल पुकारा जाता है, बिहार कहलाने लगा।''[5]

अतः यह सौभाग्य भी राजगृह को ही प्राप्त है कि वहां स्थापित प्रथम विहार के नाम पर सम्पूर्ण प्रांत का नाम ही बिहार हो गया।

---

4. बिहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन, पृ. 239.
5. विश्व इतिहास की झलक, पं. जवाहर लाल नेहरू, पृ. 99.

प्राचीन साहित्य में राजगृह की पहाड़ियों के नाम

प्राचीन साहित्य में राजगृह की पहाड़ियों की चर्चा की गई है तथा उनका नामोल्लेख भी है। महाभारत की प्रारंभिक कथा में राजगृह के पांच पहाड़ों को क्रमशः वैभार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक कहा गया है। एक दूसरी कथा में इन पर्वतों को क्रमशः पाण्डव, विपुल, वराहक, चैत्यक एवं मतंग नाम से संबोधित किया गया है। पाली साहित्य में वर्णित नाम महाभारत से मिलते हैं। अंगुत्तर निकाय में राजगृह के पांचों पहाड़ों को वैभार, पाण्डव, वैपुल्य, गृद्धकूट ऋषिगिरि कहा गया है। जैन ग्रन्थों में राजगृह के पर्वतों का विवरण इस प्रकार है–तिलोयपण्णति, धवलाटीका, जयधवलाटीष। हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, अणुतत्तरोव, दशांगसूत्र, भगवती सूत्र, जम्बूस्वामी चरित्र, मुनिसुव्रतकाण पायकुमार चरिउ, एवं उत्तर पुराण आदि ग्रन्थों में भी इनके नामोल्लेख हैं।

इसे पंचशैलपुर भी कहा गया है। ऐसा वर्णन मिलता है कि राजगृह नगर के पूर्व में चतुष्कोण, ऋषिगिरि, दक्षिण में त्रिकोण वैभार, नैऋत्य में त्रिकोण विपुलाचल, पश्चिम वायव्य और उत्तर दिशा में धनुषाकार छिन्न एवं ईशान दिशा में पाण्डु नामक पहाड़ हैं।

पट्खण्डागम की धवलाटीका और वीर सेन स्वामी के द्वारा पंच पर्वतों का उल्लेख श्लोकाधारित है। ऋषिगिरि, वैभारगिरि, चन्द्र और पाण्डु नाम से पर्वतों का उल्लेख है।

हरिवंश पुराण में वर्णित है कि प्रथम पर्वत ऋषिगिरि है। उसमें पूर्व दिशा की ओर चतुष्कोण है। सम्पूर्ण वायुमंडल झरनों के झर-झर स्वर से निनादित होता रहता है। दक्षिण में त्रिकोणाकार वैभारगिरि है। दक्षिण-पश्चिम के मध्य इसी आकार का विपुलाचल है। चतुर्थ बलाहक पर्वत धनुषाकार होने के कारण तीन दिशाओं को आवेष्टित करता है। पाण्डुक नामक पांचवा पर्वत पूर्वोत्तर दिशा के मध्य में गोलाकार रूप में विद्यमान है। इसका वन सिद्ध क्षेत्र कहलाता है।[6]

किन्तु डॉ. ए. घोष के अनुसार राजगृह के पांच पहाड़ों के नाम, जो प्राचीन साहित्य में मिलते हैं, उनका मेल आज के नाम से नहीं बैठता। यह काम भी कठिन

---

6. भगवान महावीर और उनका तत्व दर्शन, आचार्य रत्न श्री 108, देशभूषण जी विद्यालंकार.

है। चूंकि जिस पर्वत को ह्वेनसांग पिपोलो अर्थात् विपुल पर्वत कहता है उसे पालि साहित्य में वैभार पर्वत कहा गया है। मेरी अवधारणा है कि राजगृह की पहाड़ियों के आधुनिक नाम जैनियों की देन है।

नामकरण

भारतवर्ष में स्थान की महत्ता एवं व्यक्ति के संस्कार को दृष्टि में रखते हुए तथ्यपूर्ण नामकरण की परम्परा अति प्राचीन है। ब्राह्मणों, वेदज्ञों एवं राजकुल के आचार्य पुरोहितों द्वारा यह पवित्र कार्य किया जाता था। इसके प्रमाण में भारतीय वाङमय का अक्षय भंडार उपलब्ध है। रामायण एवं महाभारतकालीन संस्कृति भी इस तथ्य की पुष्टि करती है। वनवास के समय भगवान् घास-पात की बनी एक झोपड़ी में रहते थे, फलतः उसका नाम पर्णकुटी रखा गया। इसी तरह पांच वृक्षों से आवृत्त स्थल को 'पंचवटी' नामित किया गया। राम ने लंका जाने के ㄱ म में दक्षिण-समुद्र-तट पर शिव की उपासना की थी। अतः उस स्थान का नाम रामेश्वरम् रखा गया। ये सारे नाम आज भी प्रचलित हैं। महाभारत काल में भी ऐसे नामों के उदाहरण मिलते हैं। राजा द्वारा राज्य-क्षेत्र से दूर निर्मित निवास स्थान को इन्द्रप्रस्थ कहा गया। श्री कृष्ण ने काले नाग की शक्ति को शमित किया था तथा उसे मुक्ति-सूत्र पहनाया था। जिस स्थान पर यह कार्य किया गया, वह स्थान तब से अब तक 'कालिदह' कहलाता है। ये सब भारत की प्राचीन परम्पराओं के उदाहरण हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध नामकरण से है।

आर्यों की इसी व्यवस्था के आलोक में राजगृह नाम पड़ा होगा। राज और गृह के योग से यह शब्द बना है, जिसका अर्थ होता है—राजा का घर। यह नाम इसलिए विख्यात हुआ कि सैकड़ों वर्षों तक यहां मगध-राजाओं की राजधानी थी। ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि बिम्बिसार और अजात शत्रु के पहले भी राजगृह को मगध की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। राजगृह के अनेक नाम मिलते हैं, यथा— वसुमति, बृहद्रथपुर, कुशाग्रपुर, गिरिव्रज, राजगृह आदि। वाल्मीकि रामायण में वर्णित एक सन्दर्भ के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र का नाम वंसु था और किंवदन्ती है कि उन्होंने इस नगर को बसाया था। इसका नाम 'वंसुमति' पड़ा। महाभारत और पुराणों के विवरण से ज्ञात है कि बृहद्रथ एक शक्तिशाली एवं प्रतापी असुर सम्राट था। राजगृह में उसकी राजधानी थी, जहां से उसने वर्षों तक राज्य-व्यवस्था का संचालन किया था। प्रतापी असुर सम्राट जरासन्ध, बृहद्रथ का वंशज था। जरासन्ध के समय में ही यह स्थल 'बृहद्रथपुर' नाम से विख्यात हो

गया था। राजगृह का एक अन्य नाम कुशाग्रपुर भी है। इस नाम पर विद्वानों के मत एक नहीं अनेक हैं। एक धारणा यह है कि बृहद्रथ के वंश में यहां का अन्तिम राजा कुशाग्र था। फलत: उसके नाम पर राजगृह का नाम कुशाग्रपुर हुआ। एक अन्य तर्क भी दिया जाता है। वह यह कि राजगृह के निकट मनियार मठ से दक्षिण पाषाण भवन नामक खंडहर का इलाका आज भी कुशाग्रपुर कहलाता है। अत: विकल्प के रूप में राजगृह के बदले यही नाम लिया गया होगा, ऐसी संभावना लगती है। अभी का कुशाग्रपुर उसी का अंश है। एक अन्य धारणा यह थी कि इस क्षेत्र में कुश (एक प्रकार की नुकोली धारदार घास) अधिक होता है, इसलिए यह क्षेत्र कुशाग्रपुर नाम से चरितार्थ हुआ। फिर भी यह तर्क निर्बल है। कुश नामक घास अत्यल्प रूप में अनेकं जगहों में पायी जाती है।

राजगृह का एक नाम गिरिव्रज भौगोलिक महत्व का प्रतीत होता है। राजगृह चारों ओर से पर्वतों से घिरा है। पर्वत माला के मध्य अवस्थित राजगृह का गिरिव्रज नाम उपनाम-सा लगता है। हो सकता है, यह नाम इसी राज्य क्षेत्र में प्रचलित रहा हो।

जैन और बौद्ध ग्रन्थों में राजगृह का नाम 'राजगृह' ही मिलता है जिसे मागधी भाषा में 'राजगीर' कहा जाता है। तार्किक, बौद्धिक एवं ऐतिहासिक व्याख्या के अन्तर्गत निःसंकोच रूप से यह कहा जा सकता है कि शताब्दियों तक मगध की राजधानी रहने के कारण इसका नाम राजगृह हुआ। प्रकृति के कोमल एवं मनहर आंचलिक आच्छादेन के तले का राजगृह यह इंगित करता है कि यह दीर्घकाल तक राजनीतिक प्रशासन का केन्द्र बना रहा और विभिन्न राजाओं के राज्यासन यहां समय-समय पर कालक्रम से लगते रहे और उनकी इच्छा के अनुसार इसके नाम भी समय-समय पर बदलते गये। पर राजगृह विविध नाम धारक होकर भी अन्तत: एक नाम धारक रहा। वह नाम है– राजगृह, राजगृह।

राजगृह की पहाड़ियों के नाम प्राचीन ग्रन्थों में भी उल्लिखित हैं। जिन नामों का उल्लेख है, वे हैं–वैभार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि एवं चैत्यक। महाभारत में भी इन पहाड़ियों के नामों का उल्लेख है। वहां जिन नामों से अंकित है, वे हैं–पण्डार, विपुल, वराह, पाण्डव, चैत्यक एवं मतंग। पालि साहित्य में इनके ये नाम मिलते हैं–वैभार, पाण्डव, वैपुल्य, गृद्धकूट और ऋषिगिरि। यह प्रमाण भी मिलता है कि इन पहाड़ियों के मध्य में राजगृह अवस्थित था। जैन साहित्य के अनुसार राजगृह, वैभार, विपुल्य, रत्नछठ, शील उदय और सोना पहाड़ियों के बीच अवस्थित था। भारतीय पुरातत्ववेत्ता डॉ. ए. घोष की अवधारणा है कि चीनी यात्री ह्वेनसांग जिस

पर्वत को 'पि-पोलो' कहता है, वही विपुल पहाड़ है और उसे ही पालि साहित्य में वैभार कहा गया है। आजकल राजगृह की ये पहाड़ियां जिन नामों से जानी जाती हैं, वे हैं—वैभार, विपुल, रत्नगिरि, छाताशिला, सोन पहाड़ और उदय गिरि। ये नाम जैनियों से प्राप्त हैं और इनसे ही नामकरण की यथार्थता Justification of the Title संपुष्ट होती है।

राजगृह में मानव-वास

राजगृह में कब से मानव वास प्रारंभ हुआ और किस कुल, शील एवं नस्ल के मानव का निवास कब प्रारंभ हुआ, इसकी बहुत खोज न भी की जाय, तब भी सांकेतिक रूप में इसकी चर्चा यहां मात्र स्पन्दन के रूप में की जा रही है।

ऐसा वर्णन मिलता है कि मगध के आदि मानव दस्यु थे। ऋग्वेद मगध वासियों को गैर आर्य मानता है। इस वेद की एक ऋचा के अनुसार एक ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करते हुए कहते हैं—"कीकट (मगध) की गायें किस काम की हैं जिनका दूध तुम्हारे यज्ञ में काम नहीं आता। जो सोमरस के साथ मिलकर यज्ञ के पात्रों को ही गर्म कर देता है। अतः हे इन्द्र! उन नैचाशाख प्रमगन्दों का वह धन मुझे दिला दो।"[7] अथर्ववेद की एक ऋचा में कहा गया है। "जैसे मनुष्य और उपभोग के अन्य सामान एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजे जाते हैं, उसी तरह हम ज्वर को गन्धार, मूजवान, अंग और मगध देश में भेज देते हैं।"[8]

इससे परिलक्षित होता है कि आर्य मगध और अंग के निवासियों को अपनी श्रेणी के आर्य नहीं मानते थे। ये प्रदेश आर्य-प्रदेश नहीं थे। "शतपथ-ब्राह्मण" जैसी प्रसिद्ध पुस्तक में भी मगध को दस्युओं का देश कहा गया है। भगवान् बुद्ध के जीवन चरित्र से संबंधित बौद्ध-ग्रन्थ "ललित-विस्तर" में आठ राज-कुलों का उल्लेख है। वहां मगध के संबंध में जो लिखा गया है, वह इस प्रकार है—"यह कुल मातृ शुद्ध एवं पितृ शुद्ध नहीं है। यह चंचल है तथा विपुल पुण्य से अभिषिक्त नहीं है। इसकी राजधानी जंगली लोगों के बसने योग्य है।" इन वाक्यों से भी

---

7. किन्ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रये न तपन्ति धर्मम्।
आ नोभर प्रमगंदस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धयानः।।
ऋग्वेद — 3, 53, 14.

8. गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रेष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परिदद्मसि।।
अथर्ववेद — काण्ड-5, सू. 22, 14.

ब्राह्मण ग्रन्थों की बात प्रमाणित होती है। कवि तुलसी दास कृत 'रामचरित मानस' में भी मगध के प्रति उपेक्षा का भाव है। वे लिखते हैं–

लागहिं कुमुख वचन सुभ कैसे ।
मगह गयादिक तीरथ जैसे ।।

(रा. च. मानस, अ. काण्ड, दोहा सं. २ के नीचे)

गंगा के किनारे दक्षिणी छोर से आज भी उसमें स्नान करना अपवित्र माना जाता है। मगध में प्राण-त्याग भी पवित्र नहीं है। डॉ. राम शरण शर्मा का दृष्टिकोण है कि मगध वासी दस्यु नहीं थे। वे ऋग्वैदिक आर्यों से पहले भारत में आकर बसे थे। फलस्वरूप उनके रहन-सहन, खान-पान एवं आचार-विचार भिन्न थे। कहीं कोई मेल नहीं बैठता था।[9] वे ही सैन्ध-सभ्यता-काल (2300 ई.पू.-2700 ई. पू.) में राजस्थान के वनासघाटी के किनारे अहार से गिलुन्द तक फैले हुए थे। और इन्हीं का मृद्‌भाण्ड, कृष्ण लोहित मृद्‌भाण्ड था।

कृष्ण लोहित मृद्‌भाण्ड-संस्कृति का विस्तार राजस्थान से प्रारंभ हुआ जो मध्य, उत्तरी और पूर्वी भारत तक फैल गया। यह इससे भी प्रमाणित होता है कि बिहार राज्य के गया के निकट सोनपुर की खुदाई से कृष्ण लोहित मृद्‌भाण्ड प्राप्त हुआ है। बिहार के कई स्थानों की खुदाई से कृष्ण लोहित मृद्‌भाण्ड, उसी कृष्णमार्जित मृद्‌भाण्ड के साथ मिला है। राजगृह में भी ऐसे मृद्‌भाण्ड मिले हैं। अत: 'शतपथ ब्राह्मण' में वर्णित दस्यु भी कृष्ण-लोहित-मृद्‌भाण्ड के निर्माता आर्य ही थे। ये लोग भारत के आदिवासी (अनार्य) से काफी घुलेमिले थे, फलत: वैदिक यज्ञ को पसन्द नहीं करते थे। इसी मान्यता के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जाता है कि राजगृह में प्रारंभिक निवास इन्हीं लोगों का था। धीरे- धीरे एक बड़े और सुरक्षित ग्राम के रूप में विकसित होकर यह राजगृह छठी सदी ई. पू. में भारत का एक प्रमुख नगर बना होगा।

'बौद्ध धर्म और बिहार' के लेखक श्री हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' के अनुसार इस विषय पर कतिपय विचार प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शब्दों के अनुशीलन से इतिहास खुलेगा एवं मर्यादा बढ़ेगी। मगध, मागध एवं व्रात्य आदि शब्दों का पारस्परिक अर्थबोध स्पष्ट हो जायेगा। व्रत को स्वीकारने वाले को व्रात्य कहा जाता है। वैदिक एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में भले ही इसका प्रयोग हीन भाव प्रदर्शित करने के लिए किया गया हो, किन्तु व्यवहार और लोक फलक पर कुछ भिन्न अर्थ

---

9. प्राचीन भारत में भौतिक परिस्थिति और सामाजिक संरचना, डॉ. रामशरण शर्मा।

स्पन्दित होता है। मनुस्मृति बताती है कि सावित्री और उपनयन से भ्रष्ट द्विजाति 'व्रात्य' कहलाती है।[10]

इस प्रकार झल्ल, मल्ल, लिच्छवी सभी व्रात्य हैं।[11] इस संस्कृति के अनुसार वैश्य पुरुष एवं क्षत्रिय कन्या से उत्पन्न संतान 'मागध' होती थी।[12] मगध के निवासी मागध कहे जाते थे। मनुस्मृति के अनुसार वर्णरहित, अज्ञात एवं कलुषित योनि (वर्णसंकर) से उत्पन्न अनाथ व्यक्ति को उसके कर्म से पहचानना चाहिए। अनार्यता, असाधुता, निष्ठुरता, क्रूरता, अकर्मण्यता, ये लक्षण कलुषित योनि से उत्पन्न लोगों में पाये जाते हैं।

महाभारत के उद्योग पर्व में व्रात्यों को पातकी कहा गया है। ग्रामों और नगरों को जलाने वाले, विष खिलाकर मारने वाले, सुरा बेचने वाले, सूदखोरी करने वाले, मित्रघाती, भ्रूणहन्ता एवं आचरण-भ्रष्ट लोगों को महाभारतकार व्रात्य या ब्रह्मघाती कहते हैं।[13]

वेदों के महान भाष्यकार सायनाचार्य के अनुसार व्रात्य का अर्थ पतित है।[14] पंचविंश ब्राह्मण व्रात्य-सभ्यता के संबंध में कहते हैं कि व्रात्य सिर पर पगड़ी धारण करते थे।[15] वे हाथ में दण्ड या चाबुक रखते थे। उनके हाथों में गुलेल अर्थात् गुलौती भी रहती थी। बौधायन श्रौतसूत्र से इंगित है कि ये व्रात्य वाण भी रखते थे। उनकी पीठ पर चमड़े का तरकस रहता था। वे लोग बांस की फट्टी की गाड़ी रखते थे। घोड़े या खच्चर का उपयोग गाड़ी खींचने में किया जाता था। उनकी पीठ पर की चादर में काली धारियां रहती थीं। उनके नेता उजले कपड़े की पगड़ी

---

10. द्विजातयः सवर्णास्त जनयन्त्य व्रतांस्तु यान्।
तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्यानिति विनिर्दिशेत्।।
मनुस्मृति —10, 20.

11. झल्लो मल्लश्च राजन्याद् व्रात्यांलिच्छविरेव च नटश्च करणश्चैव् खसो द्रविड़ एव च।।
—वही, 10, 12.

12. क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागध वैदेहो राज विप्राङ्गनासुतौ।।
—वही, 10, 11.

13. अगार दाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारिदारिकः।।
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्चस्यात्पानपो द्विजः।
सुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि।।
महाभारत, उद्योग पर्व, 35, 46, 48.

14. प्राङमौर्य बिहार, 3-15.

15. पंचविंश ब्राह्मण, 17, 1, 14.

बांधते थे। उनके कुल-पूज्य जादू-टोना, झाड़फूंक के सहारे जीविका चलाते थे। कहा जाता है कि वे इक्कीस प्रकार की विधियों के प्रयोग सांस लेने में करते थे। वे हठ योगी होते थे।[16]

तंत्र-मंत्र की प्रथा बहुत पुरानी है और बुद्ध भी इससे नहीं बच सके। 'बुद्धकालीन आटानाटीयसुत्त' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। एक बार बौद्ध भिक्षु महामोद्‌गलायन के पेट में दर्द हुआ था और उन्होंने दर्द को भूत समझकर मंत्र से भगाया। यह भी व्रात्य सभ्यता का प्रतीक ही है।

वर्णन के क्रम में व्रात्य या जिनकी चर्चा की गई है, वे आनुवंशिक रूप में राजगृह की भूमिका में माने जायेंगे।

ऊपर उल्लिखित विभिन्न मान्यताओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि मानव-वंश की शुद्धता अथवा अशुद्धता विवादास्पद है। वेदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं परवर्ती प्रामाणिक शास्त्रों की तुला पर मातृ एवं पितृ कुल की शुद्धता को जोखना और निर्णय देना दुरूह एवं असंभव है। ऋग्वेद कहता है—मनुर्भव! अर्थात् मानव बनो! इससे चिन्तन को पंख मिल जाता है। क्या मानव वास्तव में मानव नहीं है कि उसे मानव बनने का आदेश ऋग्वेद देता है? वास्तव में इसका अर्थ यह है कि ऋग्वेद आदर्श चरित्र वाले को मानव मानता है, इसलिए वह आदर्श चरित्र को अपनाने की सीख देता है। यहां शब्द की लक्षणा शक्ति से अर्थ स्पष्ट होता है।

अब इसके व्यावहारिक पक्ष पर ध्यान देकर अनुशीलन करें। संतान में माता एवं पिता दोनों के रक्त का योग होता है। पुनः उन दो में चार और चार के बाद आठ और आगे बढ़ने के साथ अनेक के रक्त के योग बढ़ते जाते हैं। अतः यह कहना बड़ा कठिन है कि किस व्यक्ति में किसका कितना रक्तांश है? फलतः जाति, गोत्र एवं कुल पर कोई निर्णय देना कदापि सार्थक नहीं होगा, क्योंकि इसका सर्वेक्षण या निर्णय चुनौतियों से भरा होगा। इस जटिल समस्या को लक्ष्य कर ही आज के लोगों ने व्यावहारिक सुविधा के लिए विवाहादिकार्य में पिछले सात कुलों की गणना के लक्ष्य को त्यागने की अनुमति दी।

अब दूसरे पक्ष के दृष्टिकोणों को भी हम लक्ष्य कर लें। अनेक आस्तिक एवं नास्तिक विचारकों ने वर्ण व्यवस्था को दुत्कारते हुए नये मत स्थापित किये। इस संदर्भ में ब्राहमण एवं क्षत्रिय को द्विज मानने से इन्कार करते हुए उन पर आक्षेप किया गया। विस्तार में न जाकर मनुस्मृतिकार की मान्यता का उल्लेख करना अनिवार्य

—16. प्राङ्मौर्य बिहार, पृ. 16-17.

प्रतीत होता है। जातिगत शुद्धता के सन्दर्भ में मनु कहते हैं – "सभी वर्णों में समान रूप से अक्षत (un-touched) योनि वाली पत्नियों से अनुलोम विधि से संसर्ग करने पर समुत्पन्न संतान उस जाति की होगी।"[17] अब समस्या उत्पन्न होती है कि किस जाति की पत्नी अक्षत अथवा क्षत योनि वाली है? आखिर इसकी क्या पहचान होगी या इसका परिज्ञान कैसे संभव है? यदि इस दिशा में प्रयास भी किया जाय तो कठिनाई का अन्दाज लगाना भी कठिन है। अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मगध के तथाकथित दस्युओं अथवा तत्कालीन मगध वासियों को जाति के आधार पर अशुद्ध कहना उचित नहीं होगा।

घातों-प्रतिघातों के बावजूद, विचार के बहु-रंगे फलक पर राजगृह का अपना अस्तित्व और महत्व है। इसकी सांस्कृतिक महत्ता अस्वीकारी नहीं जा सकती। वह मात्र दिव्य नहीं दिव्यतम है। कालक्रम से पूर्व की मान्यताओं का समय-समय पर लोप होता गया और अब तो वे पूर्णत: मृत हैं एवं वे लोग भी वैदिक सभ्यता के अनुयायी हो गये।

लैंगडन से रेनफ्रीव (1931 ई. से 1987 ई.) तक भारतीय पुरातत्व के ब्रिटिश विवेचन में एक वर्ग ऐसा भी रहा है जो सिंधु घाटी की सभ्यता को आर्य भाषा बोलने वाली सभ्यता मानता है। डॉ. राम विलास शर्मा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "पश्चिम एशिया और ऋग्वेद" में इस मत का प्रामाणिक समर्थन किया है कि दस्युओं की भाषा भी आर्यों की भाषा थी। सिन्धुघाटी के उत्खनन से लिपि संबंधी जो सामग्रियां उपलब्ध हुई हैं, उनका सम्यक् रूप से अध्ययन किया गया है। अध्येताओं में अधिकांश इस बात से सहमत हैं कि सिन्धुघाटी की भाषा भी आर्य भाषा है। अत: भाषाई आधार पर आर्य भाषा बोलने वाले को दस्यु या अनार्य कैसे माना जायेगा? ऊपर कृष्णलोहित-मृद्‌भाण्ड की चर्चा की गयी है तथा कहा गया है कि वह राजगृह में भी प्राप्त हुआ है और यह कृष्णलोहित-मृद्‌भाण्ड सिन्धुघाटी सभ्यता के लोगों की देन है। जब यह राजगृह में भी प्राप्त होता है तो इससे साफ जाहिर है कि सर्व प्रथम सिन्धुघाटी से लोग आकर राजगृह में बसे थे। वे आर्य थे। फलत: राजगृह के पुरातन वासी भी अनार्य या दस्यु नहीं, आर्य ही थे।

---

17. सर्व वर्णेषु, तुल्यासु, पत्नीषु अक्षत योनिषु।
आनुलुम्येन सम्भूता जात्यागेया तमेवहि।।

मनुस्मृति, अध्याय-10, श्लोक-5.

तृतीय अध्याय

राजगृह का पौराणिक इतिहास

राजगृह के पौराणिक इतिहास का परिचयात्मक विवरण महाभारत का आदिपर्व देता है। साथ ही पुराण के कथोल्लेख से ज्ञात होता है कि मगध महाजनपद का अधिष्ठाता बृहद्रथ था। इसी बृहद्रथ का पुत्र महाप्रतापी राजा जरासंध था।[1] वह कृष्ण के समय में ही हुआ था। उसने अपने प्रताप एवं बाहुबल से आर्यावर्त्त के अनेक राजाओं को परास्त कर कतिपय जनपदों को अपने राज्य में मिलाकर साम्राज्य विस्तार किया था। कितने ही परास्त नृपति जरासंध के कारागार में बंदी थे। कारुष के राजा दंतवक्र ने भय से उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। दक्षिण के अनेक राजा भयभीत हो उससे मित्रता करने की इच्छा पाल रहे थे। कोशल और उत्तर भारत के कितने ही राजे उसके भय से भाग कर दक्षिण भारत चले गये थे।[2] चेदि का राजा शिशुपाल उसका सेनापति था।[3]

मथुरा नरेश कंस रिश्ते में श्रीकृष्ण का मामा लगता था। वह जरासंध का जमाता (दामाद) था। जरासंध की दो पुत्रियों (अस्ति और प्राप्ति) उसी से ब्याही गई थीं। कृष्ण ने कंस का वध कर दिया और ये दोनों रानियां (अस्ति और प्राप्ति) अपने पिता जरासंध के पास विधवा होकर गुहार करने पहुंचीं। दोनों बेटियों से कंस के वध का हाल सुनकर जरासंध उद्विग्न और उत्तेजित हो उठा। बलशाली मगधपति तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ यादवों को समूल नष्ट करने के उद्देश्य से मथुरा के लिए प्रस्थान किया। एक अक्षौहिणी सेना की गणना छत्तीस करोड़, ग्यारह लाख चालीस हजार है—जैसा कि श्रीमद्भगवत गीता बताती है।[4] यद्यपि यह

---

1. **विष्णु पुराण**, 4, 19, 81, 83.
2. **महाभारत**, सभापर्व, 14.
3. राजन सेनापतिर्जातः शिशुपालः प्रतापवान — वही.
4. अयुतमहि नागाः त्रिगुणी रथानाम्
   लक्ष्यैक योद्धा दश लाख बाजी।
   पादात पुंसा षटत्रिंस कोटि
   अक्षौहिणी नाम् मुनयोः वदन्ति। —श्रीमद्भगवत गीता

संख्या कल्पना के हाथों अनुमानित है, पर इतना तो बेशक माना जायेगा कि मगधराज जरासंध विशाल सैन्य-समूह के साथ मथुरा गया था। मगधपति के ध्वज के नीचे कार्यशील रहने वाले राजाओं में कारुष का राजा दंतवक्र, चेदपति शिशुपाल, कलिंग के शाल्व, पुण्ड्र के पुण्ड्रवर्द्धन, कौशिक के कवि तथा संकृति भीष्मक, रुक्मि, वेणुदार, कराथ, अंशुमान आदि राजे एवं अंग, बंग, काशी, कोशल के नृपति प्रमुख थे। इतने ही नहीं, उसके पराक्रम के वशीभूत विदेहपति, मद्रपति, त्रिगर्तराज दहज, यवन, भगदत्त, शैव्य (सौवीर नरेश), सुबल (गन्धार नरेश), पाण्ड, नग्नजीत, गोतर्ण (काश्मीर नरेश), दुर्योधन (हस्तिनापुर नरेश) एवं कालयवन उससे सहयोग कर रहे थे। कालयवन के पास जरासंध ने अपना दूत भेजा था। दूत के समक्ष मगधपति के सम्मान में कालयवन बोला : "जिन महाराजा जरासंध की कृपा से हम सब राजा भयहीन हैं, उनकी हमारे लिए क्या आज्ञा है?" यद्यपि मथुरा पर जरासंध के सत्रह (17) आक्रमण विफल हो गये, किन्तु मथुरा में निश्चित रूप से विनाश एवं ताण्डव हुए। चारों ओर त्रास तथा आतंक छा गया। भय लहराने लगा।

इस दृश्य को देखकर महल के छज्जे पर की स्त्रियां मूर्छित हो जाती थीं।[5] कालयवन के नेतृत्व में जरासंध की सेना ने मथुरा पर अठारह (18) बार आक्रमण किया। यह आक्रमण इतना प्रलयंकारी एवं जबर्दस्त होता था कि खुद कृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारका भाग गये। भय था कि जरासंध मेरे बन्धु-बान्धवों को पराजित कर या तो मार डालेगा अथवा बन्दी बना कर मगध ले जायेगा।[6] इसीलिए वे भाग गये, युद्ध में भाग नहीं लिया। इस घटना को उनका एक नाम सार्थक एवं चरितार्थ करता है और यह नाम है रणछोड़, अर्थात् रण को छोड़ कर भागने वाला। यह नाम आज भी गुजरात में प्रचलित है।[7] इस प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि यह भी एक युद्धकला है। सबल शत्रु से पराजित होने से बेहतर है उससे बचना और बच कर उसे पराजित करने के लिए उपाय ढूंढना। एक बार महान् नेपोलियन बोनापार्ट के आक्रमण से भयभीत होकर रूस (मास्को) का शासक साइबेरिया के बर्फीले भाग में जा छिपा था।

श्रीकृष्ण मौन होकर बैठ नहीं गये और न द्वारका से मोहित हुए। उन्होंने जरासंध को पराजित करने का उपाय ढूंढ़ निकाला। वे पाण्डु पुत्र भीम के साथ

---

5. श्रीमद्भागवत, दशम् स्कन्ध, अध्याय 50, श्लोक 22.
6. बन्धून बंधिष्यप्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली, – वही, श्लोक 48.
7. द्रष्टव्य–डॉ. राम मनोहर लोहिया का निबन्ध 'श्रीकृष्ण'।

राजगृह आये और जरासंध को मल्लयुद्ध का आमंत्रण देकर भीम के साथ जरासंध का मल्लयुद्ध कराया। सारी नीतियों एवं आदर्शों को ठुकरा कर उन्होंने न केवल जरासंध को परास्त कराया; बल्कि भीम ने जरासंध को चीर कर दो खण्डों में फेंक दिया और मगधपति की मृत्यु हो गयी। युद्ध और प्रेम की नीति भिन्न होती है। समयानुसार उसमें परिवर्तन किया जाता है।

मगध सम्राट जरासंध ब्राह्मण-भक्त था। उसमें गृहस्थोचित कर्मों के प्रति सक्रियता एवं निष्ठा थी। वह गृहस्थ धर्म का संपालक था। वह उदार भी था। इससे संबंधित एक प्रसंग महाभारत में वर्णित है; वह यह कि एक बार श्रीकृष्ण, भीम एवं अर्जुन ब्राह्मण वेश में जरासंध के समक्ष उपस्थित हुए। ये सभी भिक्षुक की भांति याचना करने लगे। जरासंध ने छद्मवेशधारी कृष्ण, भीम एवं अर्जुन को पहचान लिया। उसने आत्मचिन्तन कर अपने आप से कहा : "यद्यपि ये तीनों मेरे शत्रु हैं, पर भिक्षुक बनकर सामने आये हैं। इन तीनों ने क्षात्र-धर्म का परित्याग कर ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर लिया है। याचना और भिक्षाटन क्षात्र-धर्म नहीं ब्राह्मण धर्म है। अतः मैं इन्हें मनचाही वस्तु दूंगा और अपनी गर्दन भी देने को तैयार हूं। यदि ये मांगें तो बेहिचक दान में अपना शरीर भी दे सकता हूं।"[8]

श्रीकृष्ण ने जरासंध से द्वन्द्व युद्ध की मांग की। उसने कृष्ण से युद्ध करने की बात नकार दी, क्योंकि वह कृष्ण को डरपोक एवं कायर समझता था। ऐसा इसलिए कि कृष्ण ने उसके भय से मथुरा छोड़ दी थी और समुद्र के आंचल में बसी द्वारकापुरी में आश्रय ग्रहण करने चले गये थे।[9] कराची शहर से छह किलोमीटर की दूरी पर अरब सागर में द्वारकापुरी के पुरातात्विक अवशेष प्राप्त हुए हैं। उसने भीम के साथ द्वन्द्व-युद्ध करने की बात स्वीकार कर ली। दोनों के बीच द्वन्द्व-युद्ध हुआ। दोनों के हाथों में गदायें थीं। युद्ध के दरम्यान गदायें चूर-चूर होकर गिर गयीं। तब दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा। युद्ध का अन्त न होते देखकर 27वें दिन भीम ने श्रीकृष्ण से कहा कि वह जरासंध को नहीं जीत सकेगा।[10]

तत्पश्चात् कृष्ण ने भीम को जरासंध को परास्त करने का उपाय बतलाया। उन्होंने युद्ध के समय संकेत के सहारे सहायता करने का वचन दिया था। 28वें दिन अखाड़े में पुनः युद्ध शुरू हो गया और युद्ध के समय कृष्ण ने संकेत किया कि वह जरासंध को चीरकर विपरीत दिशाओं में दोनों टुकड़े फेंक दे। भीम ने

8. श्रीमद्भागवत, दशम् स्कन्ध, अ. 72, श्लोक 27.
9. "मथुरां स्वपुरी त्यकत्वा समुद्रं शरणं गतः" — वही, श्लोक 32.
10. न शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधिमाधव। — वही, श्लोक 41.

ऐसा ही किया और जरासंध की मृत्यु हो गयी। मगध में हाहाकार का स्वर लहराने लगा।[11] अपने प्रिय राजा की मौत पर जनता आंसू बहाने लगी। इससे जरासंध की लोकप्रियता भी जाहिर होती है। कृष्ण ने जरासंध के पुत्र सहदेव को उसका उत्तराधिकारी बनाया तथा जरासंध द्वारा बंदी बनाये गये राजाओं को मुक्त कर अपने-अपने घर जाने का मार्ग प्रशस्त किया। मगध नरेश सहदेव ने महाभारत युद्ध के समय पाण्डवों का पक्ष लिया।

महाभारत में वर्णित प्रसंग, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, अनेक ऐसे प्रसंगों को स्मृति के पटल पर ला खड़ा करता है जिनका शुद्ध संबंध पौराणिक आख्यानों से है। राजा बलि ने ब्राह्मण वेषधारी विष्णु (वामन) को सारी धरती दान में दे दी थी, यद्यपि बलि के गुरु शुक्राचार्य ने उसे सावधान किया था। कर्ण ने ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को दान में कवच और कुण्डल देकर अपनी दानशीलता को अमरत्व प्रदान किया। इन दोनों दानवीरों ने दानशीलता की वेदी पर अपनी कुर्बानी दी और मनुष्य के मानवीय त्याग को अमर बनाया। वैसे ही मगध सम्राट जरासंध ने ब्राह्मण वेषधारी क्षत्रियों को पहचान कर भी मुंहमांगा दान देकर अपनी मृत्यु का मार्ग प्रशस्त किया। धन्य है मनु पुत्र मानव जिसके सामने स्वर्ग झुकता रहा, देवता भी भीख मांगने के लिए हाथ पसारते रहे।

महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य को अपराजेय देखकर कृष्ण ने कहा था : "एको-हियोगोऽस्य" —द्रोणाचार्य को परास्त करना दुष्कर है। मैंने पूर्व काल में योग के सहारे जरासंध आदि राजाओं को परास्त किया था।

इसी संदर्भ में बालगंगाधर तिलक ने गीता रहस्य में लिखा है कि अंग्रेजी में शैतान के इतिहास लेखक के अनुसार कई बार देवताओं ने दानवों को परास्त करने के लिए छल-छद्म के प्रयोग किये और इसी के सहारे दस्युओं को परास्त भी किया।

जरासंध मनुष्य होकर दस्यु था या नहीं, उसमें आर्यता थी या नहीं—इस पर मैंने पहले ही प्रचुर प्रकाश डाल रखा है। यह तो मान्य सिद्धांत है कि प्राचीन भारत का इतिहास पुराण और साहित्य का आश्रय लिये बिना प्रकाश में नहीं आ सकता। हां, इनकी वैज्ञानिक व्याख्या होनी चाहिए। कृष्ण ने योग के सहारे कतिपय राजाओं को परास्त किया। यह संदर्भ महाभारत का है। कृष्ण का वह योग आखिर क्या

---

11. "हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे।"
श्रीमद्भागवत, दशम् स्कन्ध, अ. 72, श्लोक 47.

है? ऊपर जिन प्रसंगों का उल्लेख किया गया है, उनका संबंध छल एवं कपट से है—चाहे उसमें विष्णु, इन्द्र, कृष्ण आदि आते हों। इसलिए महाभारत में कहा गया है कि युद्ध में सनातन धर्म से काम नहीं चलता। युद्ध-धर्म अलग होता है। महाभारत के नायक श्रीकृष्ण की यही आपद्नीति है और इसी आपद्नीति का शिकार जरासंध हुआ।

कहा जाता है कि महाबली जरासंध के अंत के साथ ही उसके यहां कैदी आर्यावर्त्त के हजारों क्षत्रिय राजे अन्न-पानी बिना मर गये। इसलिए अकाल मृत्यु प्राप्त राजाओं को नरक जाने से बचाने के लिए देवताओं ने यह निर्णय लिया कि इन राजाओं के नरक-निवारण के लिए वे राजगृह में प्रत्येक तीन वर्षों पर जमा होंगे। इसलिए राजगृह में प्रत्येक तीन वर्षों पर मलमास लगता है और उस मास में राजगृह में वास से सारे देवताओं के दर्शन का सौभग्य हिन्दू भक्तों को मिलता है। इतनी-सी कथा के साथ जरासंध को याद किया जाता है।

राजगृह की महत्ता के परिप्रेक्ष्य में कई विन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है। शब्द और शब्दार्थ का महत्व इतिहासकार के लिए उपादेय तथा उपजीव्य है। जहां तक मलमास शब्द है, इस पर एक दृष्टि डाल लेना उचित प्रतीत होता है। ऊपर लिखित पूर्व विषयों के प्रतिपाद्य को ध्यान में रखते हुए इसे मल्लमास कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा। 'मल्ल', अर्थात पहलवान, या योद्धा (Athlete) शब्द भी ठीक है, क्योंकि हजारों मल्लों को जरासंध ने कैद कर रखा था, जो काल-कवलित हो गये। जरासंध स्वयं भी दुर्धर्ष योद्धा था। मल्लयुद्ध का अर्थ होता है दो पहलवानों का युद्ध।

चार वर्षों पर लीप इयर मास होने से फरवरी माह 29 (उनतीस) दिनों का होता है। इससे बहुत पूर्व से ही पक्षों में तिथि क्षय एवं तिथि बढ़ जाने के कारण अधिक मास हो जाता है, जिसे मल्लमास कहते हैं। यह माह अपवित्र माना जाता है। इतिहास के ठोस स्तम्भ पर, जब अध्यात्म का प्रकाश छिटकता है, तो इतिहासकारों की प्राणवत्ता सशक्त हो जाती है। कुछ इसी परिवेश में विचार करना है कि निरपराध राजाओं की मुक्ति के निमित्त श्रीकृष्ण को राजगृह आना पड़ा। 'तीर्थीकुर्वन्ति साधवः' के अनुसार राजगृह परम पावन तीर्थ हो गया। मलमास के बाद विवाह आदि का शुद्ध समय भी नहीं होता है। किन्तु राजगृह में इस अवधि में तीर्थवास करने से मलमास पुण्यदायी बन जाता है। प्रयागराज एवं उज्जैन आदि स्थानों पर कुम्भ आदि के समय वास करने पर तीर्थयात्री पुण्य के भागी बनते हैं।

जरासंध का काल-निर्धारण

इस ऐतिहासिक आलेख में राजगृह की चर्चा के क्रम में श्रीकृष्ण और जरासंध के नाम लिये गये हैं। राजगृह वह स्थान है, जहां विभिन्न मगध सम्राटों (राजाओं) की राजधानी रही। इतिहासकार के लिए तथ्योल्लेख के साथ-साथ काल-निर्धारण भी आवश्यक है। इसके बिना इतिहास पंगु प्रतीत होता है। फलतः इस संदर्भ में जरासंध के साथ-साथ श्रीकृष्ण एवं महाभारत युद्ध का समय भी निर्धारित करना आवश्यक है।

मालूम पड़ता है, बिखरी मामग्रियों के फलस्वरूप प्राचीन भारत का इतिहास लेखन दुष्कर है। फिर भी व्यक्ति, स्थान एवं घटनाचक्र के काल-निर्धारण के लिए बिखरी सामग्रियों का मेल बैठा कर काल-निर्धारण किया जाता रहा है।

काल-निर्धारण के लिए अब तक जो आधार प्राप्त हैं, उनमें साहित्यिक स्रोतों और पुरातात्विक अवशेषों को इतिहासकार महत्व देते रहे हैं और वास्तविकता है कि ये ही प्राचीन भारत की घटनाओं के काल-निर्धारण के मौलिक आधार हैं।

महाभारत में श्रीकृष्ण, जरासंध एवं राजगृह का उल्लेख मिलता है। यदि महाभारत का काल-निर्धारण हो जाये तो स्वतः राजगृह, श्रीकृष्ण और जरासंध का काल-निर्धारण हो जायेगा।

भारत में पुराणों एवं धर्मशास्त्रों को आधार मानकर समय-निर्धारण की परंपरा रही है, और इसी के अंतर्गत ज्योतिष-विद्या से संबंधित गणना भी आती है और तरह-तरह के पंचांग बनाये जाते हैं। अतः ज्योतिष, पुराण एवं धर्मशास्त्र के अनुसार भी जरासंध, श्रीकृष्ण एवं राजगृह के समय-निर्धारण की दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है। इसके अनुसार, युग चार होते हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। श्रीकृष्ण और जरासंध द्वापर के अंत में हुए थे। कुरुक्षेत्र के संग्राम के बाद युधिष्ठिर का राज्यारोहण हुआ। उसके कुछ दिनों के बाद श्रीकृष्ण की मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने अपने पोते परीक्षित को राज्य सौंप दिया और पांचों भाई हिमालय की ओर चले गये।

पौराणिक मतानुसार परीक्षित के समय में कलियुग का प्रवेश हुआ। इस तरह 1996 ई. तक, पौराणिक मत से, कलियुग 5097 वर्ष बीत चुका है। अतः यही माना जायेगा कि 5097 वर्ष पूर्व राजा परीक्षित हुए थे। इस तिथि का मेल शकाब्द

से भी बैठता है। यथा शक संवत्– 3179

= 3179-78 = 3101

3101 + 1996 = 5097 वर्ष

इसमें कुछ वर्ष और जोड़े जा सकते हैं, क्योंकि परीक्षित से पहले युधिष्ठिर राजा थे और कुरुक्षेत्र का संग्राम हुआ था। ऐसी स्थिति में लगभग 5100 वर्ष महाभारत का समय सिद्ध होता है। फलतः यही समय श्रीकृष्ण, जरासंध और राजगृह का होगा, किन्तु इस तिथि का कोई मेल इतिहास से नहीं बैठता। सिन्धु घाटी सभ्यता, हिन्दुस्तान की अब तक़ की खोजों के अनुसार, सर्वाधिक पुरानी सभ्यता है। इतिहासकार प्रायः इस मत से सहमत हैं कि सिन्धुघाटी सभ्यता का समय ई.पू. 3000 है। सिन्धुघाटी की खुदाई में कहीं भी लोहे का कोइं औजार नहीं मिला है और न कहीं घोड़े की मूर्तियां या चित्र ही मिले हैं। मतलब यह कि सिन्धुघाटी सभ्यता-काल के लोग लोहे और घोड़े से अपरिचित थे—जबकि महाभारत में लोहे और घोड़ों का खुलकर प्रयोग हुआ है। महाभारत काल अश्व एवं लौह काल है। सिन्धुघाटी सभ्यता का समय लगभग 3000 ई.पू. है, तो आज की गणना में वह (3000 + 2000) = (5000) वर्ष पहले की रही है, और आज कलियुग के बीते वर्ष भी 5100 हैं। यदि कलियुग का यह समय मान लिया जाय और पुराणों को समर्थन दे दिया जाय, तब तो इतिहास की जीभ से कहना पड़ेगा कि कलियुग का प्रारंभ सिन्धुघाटी सभ्यता से होता है, क्योंकि दोनों की तिथियों का लगभग मेल बैठता है। फिर पुराण की यह बात कैसे मानी जा सकती है कि कलियुग का प्रारम्भ परीक्षित से हुआ था? परीक्षित तो इतिहास पुरुष हैं। श्रीकृष्ण जरासंध और राजगृह सबको ऐतिहासिक आधार प्राप्त है। अतः इनके संबंध में इस पौराणिक गणना को निराधार मानने में हिचक नहीं होनी चाहिए। अतः पौराणिक मतों से एक वितंडावाद खड़ा होता है जिसके भंवर में पड़कर श्रीकृष्ण, जरासंध एवं राजगृह का इतिहास जल की समाधि ले लेगा।

महाभारत की घटना के संबंध में कुछ पुरातात्विक साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं। श्री ब्रजवासी लाल के नेतृत्व में हस्तिनापुर में उत्खनन किया गया है। यह ज्ञातव्य है कि हस्तिनापुर का संबंध महाभारत से रहा है। यहां की खुदाई में सबसे पुराना स्तर प्रथम काल का है, जिसमें गेरुआ मृद्‌भाण्ड संस्कृति के लोग बसे हुए थे। इस संस्कृति के अवशेषों के स्तर नौ से साढ़े नौ फीट के हैं। गेरुआ मृद्‌भाण्ड इतने छोटे-छोटे टुकड़ों में मिले हैं कि उनके टुकड़ों को एक करने पर भी कोई आकार नहीं बनता। किंतु इतना तो पता चल ही गया है कि ये बर्तन चाक पर

बनाये गये थे तथा ये जिस मिट्टी के बने हैं वह मिट्टी मध्यम श्रेणी की है। पकाने के पूर्व बर्तन पर गेरू का घोल चढ़ाया जाता था। ये बर्तन पूरे पके हुए नहीं हैं। अतः इनका रंग हाथ लगने से छूटने लगता है।

इसके बाद द्वितीय काल आता है। इसमें चित्रित धूसर मृद्भाण्ड मिले हैं। इस संस्कृति के अंतिम काल में विनाशकारी बाढ़ आयी थी। इस सभ्यता के 6-7 फीट मोटे एक स्तर का प्रमाण मिला है। विनाशकारी बाढ़ के कारण बहुत दिनों तक यहां लोगों के बसने का प्रमाण नहीं मिलता। इस प्राकृतिक प्रकोप के कारण लोग भाग खड़े हुए तथा हस्तिनापुर वीरान हो गया।

पुराणों में वर्णन है कि राजा परीक्षित के बाद उनके वंशज के काल में हस्तिनापुर में भयंकर बाढ़ आयी और लोग हस्तिनापुर छोड़कर चले गये। अतः पुराण में वर्णित हस्तिनापुर में आयी बाढ़ की पुष्टि वहां के पुरातात्विक उत्खनन से भी होती है। उसके बाद यहां उत्तर कृष्णमार्जित-मृद्भाण्ड-संस्कृति के लोग आकर बस गये। विद्वानों का अनुमान है कि छठी सदी ई. पू. में एन.वी.पी. बनाने की परंपरा शुरू हुई। इसके पूर्व बाढ़ के स्तर को विद्वान 200 वर्ष का मानते हैं तथा उसके पूर्व गेरू-मृद्भाण्ड संस्कृति थी। हस्तिनापुर के उत्खनन से चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति का काल लगभग 1100-800 ई. पू. निर्धारित किया गया है। चित्रित धूसर-मृद्भाण्ड को महाभारतकालीन माना गया है। अगर यह विचार सही है, तो 800 ई.पू. के लगभग यहां बाढ़ आयी होगी और उस बाढ़ के समय यहां का राजा निचक्षु था। वह उसी काल का हो सकता है। इस आधार पर उसके पूर्व परीक्षित का काल भी निर्धारित किया जा सकता है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि लगभग 900 ई. पू. का काल महाभारत का काल था। चित्रित धूसर-मृद्भाण्ड को ब्रजवासी लाल ने महाभारतकालीन माना है। जिस बाढ़ का उल्लेख पुराणों में मिलता है, उसकी पुष्टि उत्खनन से मिले अवशेषों से भी होती है। अधिक संभावना इस बात की है कि चित्रित धूसर-मृद्भाण्ड-संस्कृति महाभारतकालीन कौरवों-पाण्डवों की थी। पाण्डव जरासंध के समकालीन थे। अतः यह मानने में कोई विवाद नहीं रह जाता है कि जरासंध का समय ई. पू. 950 के लगभग है जो महाभारत के पाण्डवों का समय है।

बृहद्रथ का वंश-वृक्ष

बृहद्रथ की पहली पत्नी से विकसित वंश-वृक्ष

वृहद्रथ
↕
कुशाग्र
↕
रिषभ
↕
सत्यहित
↕
पुष्पवाण
↕
जहु

बृहद्रथ की दूसरी पत्नी से विकसित वंश-वृक्ष

वृहद्रथ
↕
जरासंध
↕
सहदेव
↕
मार्जारि
↕
श्रुतश्रवा
↕
आयुतायु
↕
निरमित्र
↕
सुनक्षत्र
↕
वृहत्सेन
↕
कर्मजित
↕
श्रीतंजय
↕
विप्र
↕

बृहद्रथ की दूसरी पत्नी से विकसित
वंश–वृक्ष

शुचि
↕
क्षेम
↕
सुव्रत
↕
धर्मसूत्र
↕
शम
↕
द्युमत्सेन
↕
सुमति
↕
सुबल
↕
सुनीति
↕
सत्यजित
↕
विश्वजीत
↕
रिपुञ्जय

नोट : रिपुञ्जय को उसके मंत्री शुनक ने मार दिया तथा गद्दी छीन ली, स्वयं राजा बना। शुनक, भट्टी नाम से भी विख्यात है। इसी शुनक का पुत्र बिम्बिसार था। शुनक हयंक वंश का था। जरासंध के वंश से मगध साम्राज्य रिपुञ्जय की मृत्यु के साथ ही निकल गया। यद्यपि श्रीमद्भागवत में शुनक के पुत्र का नाम प्रद्योत बतलाया गया है, पर यह गलत है, उसका पुत्र बिम्बिसार ही था।

चतुर्थ अध्याय

राजगृह का ऐतिहासिक काल

पुराणों से सिद्ध यह होता है कि राजगृह में बृहद्रथ वंश के अंत के पश्चात् हर्यक-वंश एवं इसके बाद शिशुनाग वंश के राजाओं ने शासन किया। बौद्ध-साहित्य (त्रिपिटक एवं महावंश) ऐतिहासिक-काल की ओर इंगित करता है कि भगवान् बुद्ध हर्यक वंशी शासक बिम्बिसार एवं उसके पुत्र अजात शत्रु के समय में हुए थे, ये सब समकालीन थे। साथ-साथ कुछ ऐतिहासिक प्रमाणों से यह भी पता चलता है कि पहली बार जब बुद्ध तपश्चर्या एवं ज्ञान की खोज करते राजगृह आये थे, तब वहां बृहद्रथ-वंशी राजा कुशाग्र शासन कर रहा था। किन्तु यह कथन शंका एवं आपत्तियों के घेरे में आबद्ध है। कुशाग्र बृहद्रथ का पुत्र था और वह जरासंध का समकालीन भी था। तब वह बुद्ध का समकालीन कैसे हो सकता है? इनके समय में एक बड़ा अन्तराल है। मेरी दृष्टि में ऐतिहासिक प्रमाणों की बेमेल स्थिति के कारण यह दृष्टिकोण सत्य से दूर तथा अप्रामाणिक है।

पौराणिक कथाओं को यदि आधार मान लिया जाय तो कहना होगा कि हर्यक वंश का संस्थापक भट्टीय नाम का सरदार था। इसी ने बृहद्रथ-वंश के अन्तिम शासक की हत्या की थी तथा वह स्वयं मगध का शासक बना था। ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध है कि बृहद्रथ-वंश के बाद हर्यक वंश का शासन राजगृह में स्थापित हुआ।

मगध पर हर्यक वंशी राजा के शासनारंभ के समय ही पूर्व में अंग जनपद का उत्कर्ष आरंभ हुआ। पुराणों में ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनके आधार पर यह कहा जाता है कि ब्रह्मदत्त नामक एक साहसी युवक योद्धा ने अंग पर आक्रमण कर उसे जीत लिया एवं चम्पा को अपनी राजधानी बनाया। यह ब्रह्मदत्त संभवतः काशी राजवंश के ब्रह्मदत्त का वंशज था। इसीलिये इसे भी ब्रह्मदत्त नाम से सम्बोधित किया जाता होगा। पुराणों से यह भी ज्ञात होता है कि अंग शासक ब्रह्मदत्त एवं मगधपति भट्टीय के बीच सत्ता प्रमार का संग्राम हुआ; किन्तु भट्टीय की पराजय हुई। फलतः मगध के पूर्वी भाग पर अंग का कब्जा हो गया।

बिम्बिसार : मगध पर हर्यंक वंशी शासक का शासन चल रहा था जिसकी नींव भट्टीय ने डाली थी। भट्टीय के बाद उसका पुत्र बिम्बिसार मगध का राजा हुआ। बौद्ध ग्रन्थ 'महावंश' बताता है कि मात्र पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में ही बिम्बिसार का राज्यारोहण हुआ था।[1] इतिहासकार टर्नर एवं एन. एल. डे. दोनों बिम्बिसार को भट्टीय का पुत्र एवं उत्तराधिकारी मानते हैं। इस बिम्बिसार का उपनाम श्रेणिक भी था और वह इस नाम से पुकारा जाता था। यह बुद्ध का समकालीन और संरक्षक था। उसके शासन-काल को रेखांकित करने के लिए पुराणों का सहारा लेना पड़ता है। वह ई. पू. 544 में राजा हुआ था। बिम्बिसार के समय में मगध की राजधानी गिरिव्रज थी, जो बाद में स्थानान्तरित होकर राजगृह चली गयी।

उसने मगध को सुरक्षित करने के लिए राजगृह (राजधानी) की किलेबंदी करायी; मजबूत चहारदीवारियां बनवायीं एवं किले निर्मित किए। इसमें वास्तुकार महागोविन्द का भी बहुत सहयोग है। वह वहीं का निवासी था। उस समय मगध को सर्वाधिक भय अंग के राजा ब्रह्मदत्त से था। मगध का पूर्वी भाग अंगपति के कब्जे में था, जिसे मुक्त कराना मगधपति बिम्बिसार को अनिवार्य मालूम पड़ता था। युद्ध करने के पूर्व अपनी शक्ति तौलनी पड़ती है। बिम्बिसार ने अपनी शक्ति-संवर्द्धन के लिए पड़ोसी एवं दूरस्थ राजाओं से मित्रता की तथा उनसे रक्त संबंध (वैवाहिक संबंध) भी स्थापित किया। सेना में वृद्धि की तथा उसने उसको संतुलित तथा सुयोग्य बनाया।

उसने वैशाली के राजा चेतक की पुत्री चेलना से विवाह किया।[2] उसका परिणय इसी विन्दु पर स्तंभित नहीं था। 'महावग्ग' के अनुसार इसके अतिरिक्त अन्य कतिपय विवाह भी संपन्न हुए थे। उसने विदेह-कन्या वासवी, मद्र (पंजाब)-कन्या क्षेमा एवं कोशल-कन्या कोशला से भी विवाह किये थे। राजा महाकोशल ने अपनी पुत्री के श्रृंगार, स्नान आदि व्यय के लिए दान में काशी का राजस्व प्रदान किया था। बौद्धग्रंथ 'महावग्ग' जिस प्रकार बिम्बिसार की पत्नियों का उल्लेख करता है, वह तर्कसंगत नहीं होने के कारण अमान्य है; वस्तुतः वह अतिशयोक्तिपूर्ण है।[3]

इस आय से मगध की आर्थिक रीढ़ मजबूत हुई। उस समय यह एक लाख की वार्षिकी के रूप में परिगणित थी। इस तरह बिम्बिसार ने अपने को हर तरह

---

1. महावंश—2/29-30
2. Jacobi-*Jain sutras*-I-Xii-XV; S.B.E.
3. संयुक्त निकाय-'अट्ठकथा'।

से सुरक्षित तथा शक्तिशाली बना लिया। अब उसके लिए विजय-अभियान पर जाना फलदायी सिद्ध हो सकता था। बौद्धग्रन्थ 'महावग्ग' एवं 'दीघ निकाय' के उल्लेख से प्रमाणित होता है कि उसने अंग पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। पूरा अंग उसके अधीन हो गया। उसने अपने पुत्र अजातशत्रु (कुणिक) को वहाँ का युवराज बनाया।[4] एच. सी. रायचौधरी की अवधारणा है कि अंग-विजय से मगध का साम्राज्यवादी चरित्र प्रकाशित हुआ।[5] बिम्बिसार के अन्य पुत्र दर्शक, हल्ल, बेहल्ल, अभय, नन्दिसेन, मेघकुमार एवं शीलवन्त आदि भी थे, पर योग्य (कुणिक) अजातशत्रु ही था, जिसे उसने अंग का शासक बनाया था।

अंग-विजय से मगध अधिपति बिम्बिसार की प्रतिष्ठा बढ़ी तथा चारों ओर उसकी ख्याति का प्रसार हुआ। अन्य राजे उसके प्रभुत्व से भयभीत हो उठे। उसने कुशाग्रपुर के पूर्व-दक्षिण में राजगृह का विस्तारीकरण आरंभ किया। बुद्ध घोष ने राजगृह को बिम्बिसारपुरी कहा है। राजगृह के छांता पर्वत के दक्षिण में उसने राजमहल का निर्माण कराया। उससे दक्षिण रथसार बनवाया। राजगृह के पश्चिम-दक्षिण में रक्षा के प्राचीर भी उसके द्वारा बनवाये गये।

भारतीय पुरातत्वविदों ने राजगृह के मानचित्र में इसे 'आन्तरिक रक्षा दीवार' की संज्ञा से विभूषित किया है। लगभग 520 ई. पू. में वर्षाकाल में भगवान् बुद्ध यहाँ आकर ठहरा करते थे। राजगृह के छातागिरि को पालि साहित्य में 'गृद्धकूट पर्वत' कहा गया है। इसी पर्वत पर राजा बिम्बिसार ने बुद्ध के लिए निवासाश्रम बनवा दिया था। मगध शासक बिम्बिसार के शासन-काल में राजगृह उत्तर भारत का प्रसिद्ध धार्मिक तथा राजनीतिक केन्द्र बन गया था। छठी शताब्दी ई. पू. में उत्तर भारत में राजनीतिक सत्ता प्रसार की होड़ में मगध सबसे आगे था। यह बिम्बिसार के नेतृत्व में अवन्ती, कोशल, वत्स एवं वैशाली जनपद से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हो रहा था।

कहा जाता है— Kingship knows no Kinship, यह कहावत मगध पर चरितार्थ होती है। यदि बौद्ध ग्रन्थ 'महावग्ग' तथा 'अंगुत्तर निकाय' को प्रमाण करने के लिए समक्ष रखा जाय तो निर्णय देना पड़ेगा कि अजातशत्रु पितृहन्ता था। उसने पिता बिम्बिसार की हत्या की थी। कहा गया है कि पहले उसने अपने पिता

---

4. भगवती सूत्र-300 चम्पायां कुणणको राजा वभूव।

5. Bimbisar...Launched Magadh to that career of conquest and arrangement which only ended when Ashok Sheathed his sword after the conquest of Kalinga. *Political History of Ancient India* by Dr. H. C. Roy Choudhary, Page 183.

मगधपति को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया। बिम्बिसार बन्दी-जीवन व्यतीत कर रहा था। राजगृह में प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार अजातशत्रु ने गृद्धकूट पर्वत के सामने पिता के लिए कारागार बनवाया था, जिस पर्वत पर बुद्ध निवास करते थे। अद्यतन खुदाई से यह स्थान मनियार मठ से एक किलोमीटर दक्षिण सुनिश्चित होता है। यह खण्डहर 60 (साठ) मीटर वर्गाकार है और इसके कोने में लोहे की कड़ी भी पायी गयी है।

भारत की संस्कृति करुणा एवं दया के भाव पर आधारित है। यहां तो श्रेष्ठ जन की भर्त्सना ही हत्या के तुल्य मानी जाती है। यह देश पितृसत्तात्मक दृष्टि को मान्यता देता रहा है। संभव है, बौद्ध साहित्य ने (जहां अजातशत्रु को पितृहन्ता बताया गया है), पिता को कष्ट देने के कारण मात्र से अजातशत्रु को पितृहन्ता घोषित किया हो।[6]

प्रामाणिक रूप से अजातशत्रु के प्रारंभिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। एक संदिग्ध कथा प्रचलित है। बौद्ध जातक कहता है कि जब वह गर्भ में था, तभी से पिता के रक्त का प्यासा था।[7] यह कथा हास्यास्पद है। इतिहास के पृष्ठ पर पहली बार अजातशत्रु तब अंकित होता है, जब वह अंग का प्रशासक बनता है। पिता बिम्बिसार द्वारा अंग के युवराज बनाये जाने के बाद ही अजातशत्रु से इतिहास का परिचय होता है। बौद्ध ग्रन्थ 'विनय' के अनुसार अजातशत्रु का जीवन दागों से परिपूर्ण है। उसके अनेक काले कारनामे उजागर होते हैं। इस ग्रन्थ में यह भी वर्णित है कि बुद्ध के चचेरे भाई (पर विरोधी) देवदत्त ने अजातशत्रु को कुमंत्रणा देकर बिम्बिसार के विरोध में खड़ा कर दिया था। परिणामत: अजातशत्रु अपने पिता मगधपति बिम्बिसार पर हिंसक बाज के समान टूटता था। उसने हत्या का प्रयास भी किया, पर प्रहरियों द्वारा रोक लिया गया। पुत्र-वत्सल बिम्बिसार ने उसे क्षमा दे दी। यही नहीं, अपना राज्य भी उसे सौंप दिया।

पता नहीं, शायद भविष्य की चिन्ता और शंका से ग्रस्त होकर अजातशत्रु ने बिम्बिसार की हत्या कर दी। पूर्व में ही देवदत्त ने कहा था —"राजकुमार! अपने पिता का वध करो और राजा बनो।"[8] अजातशत्रु ने स्वयं महात्मा बुद्ध के समक्ष स्वीकार किया कि उसने पिता का वध राज्य के लिए किया। यद्यपि बिम्बिसार ने अपने अन्य पुत्रों की अवहेलना कर अजातशत्रु को उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय

---

6. सम्भावितस्यचाकीर्तिः मरणात् उक्त रिच्यते। — गीता
7. जातक — 3, 12, 21.
8. विनय — 2, 190.

ले लिया था, पर अजातशत्रु अधीर हो उठा। बन्दीगृह में रानी छलना बिम्बिसार की देखभाल करती थी। एक दिन अजातशत्रु को उसकी मां ने बताया कि पिता उसे बहुत प्यार करते थे। एक बार उसकी पकी अंगुली, जिससे पीव निकलता था, को स्नेहवश राजा बिम्बिसार ने चूसा था ताकि पुत्र की पीड़ा शमित हो। मां के मुख से इतना सुनते ही अजातशत्रु पिता की बेड़ी काटने के लिए कारागार की ओर दौड़ चला। उसे आते देख बिम्बिसार डर गया। वह पुत्र की भावना समझ नहीं सका और जहर खाकर उसने आत्महत्या कर ली।[9] बौद्ध ग्रन्थों में अजातशत्रु को कलंकित साबित करने के लिए अनेक कथाओं के उल्लेख हैं। और, उन कथाओं का प्रभाव इतिहास-लेखकों पर भी पड़ा है। बौद्ध ग्रन्थों का अनुशीलन बताता है कि इन ग्रन्थों में हमेशा अजातशत्रु को कलंकित करने के उद्देश्य से कथाएं रची-गढ़ी गयी हैं। उसे पितृ-हन्ता साबित किया गया है, परन्तु जैन ग्रन्थ कुछ भिन्न संकेत देते हैं। वहां वर्णन मिलता है कि अजातशत्रु को आते देखकर स्वयं बिम्बिसार ने आत्महत्या कर ली।

बौद्ध साहित्य में यह भी जिक्र है कि अन्तिम समय में पिता के प्रति अजातशत्रु में ममता जागी थी; पर अन्तिम समय आ गया था; तरकस से तीर निकल चुका था। जैन साहित्य तो अजातशत्रु को पितृ-हन्ता ही नहीं मानता है; इतिहासकार वी. ए. स्मिथ भी इसे अस्वीकार करते हैं तथा बौद्ध साहित्य के इस दृष्टिकोण को अतिरंजना मानते हैं। पर इतना तो तय है कि उसने पिता को कष्ट दिया था। बिम्बिसार के जीवन का अन्तिम चरण कष्टपूर्ण था। उसका शासनकाल ई. पू. 544 से 503 के बीच की अवधि का है।

अजातशत्रु : पिता के मनस्ताप पर उसका राज्याभिषेक हुआ था। राज्यारोहण के आरंभिक दिनों में उसे भीतरी और बाहरी संकटों का सामना करना पड़ा। उसके दो सौतले भाई हल्ल और बेहल्ल, जो लिच्छवी राजकुमारी से उत्पन्न थे, अपने नाना के पास ननिहाल वैशाली भाग गये। भागते समय वे काफी धन और हाथी साथ लेते गये। अजातशत्रु की सौतेली मां कोशलादेवी भी उसके विरोध में खड़ी हो गयी। राजगृह में प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार इस रानी ने जैन मुनि के आश्रम में काफी सोना छिपाकर रख दिया था। उसे ही आज स्वर्ण-भंडार के नाम से लोग जानते हैं। अपनी सौतेली मां कोशलादेवी को अजातशत्रु ने बगावत करने के फलस्वरूप पकड़ लिया था। पर रानी ने आत्महत्या कर ली। यह समाचार श्रावस्ती

---

9. यह विवरण आवश्यक सूत्र के आधार पर डॉ. मुखर्जी द्वारा वर्णित कथानक पर आधारित है।

पहुंचा। कोशलादेवी के भतीजे कोशल नरेश प्रसेनजित ने काशी से मगध को प्राप्त होने वाली आय की राशि बन्द कर दी। इस तरह अजातशत्रु अन्तर एवं बाह्य दोनों तरह के संकटों से घिर गया। राजमुकुट में शक्ति के साथ जो कांटे होते हैं, वे उसे चुभने लगे।

परन्तु अजातशत्रु असाधारण योद्धा एवं सफल कूटनीतिज्ञ था। क्रम-क्रम से वह समस्याओं से जूझने लगा और उसे उनके निदान में सफलता मिली। सबसे पहले उसने राजगृह की किलेबंदी की। अपने पिता द्वारा बनवाये गये किले की मरम्मत करवायी तथा राजधानी राजगृह को पश्चिम-दक्षिण से किला बनवा कर घेर दिया। राजगृह के उत्तर में बिम्बिसार द्वारा बनवाये गये किले से मात्र 500 मीटर हटकर उसने दूसरा किला भी बनवाया। इस प्रकार राजगृह उत्तर से दोहरी रक्षा-दीवार से घिर गया।

अजातशत्रु सफल विजेता एवं घोर महत्वाकांक्षी सिद्ध हुआ। उसने काशी और वैशाली पर आक्रमण कर उन्हें जीत लिया तथा अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। इतिहासकार एच. सी. रायचौधरी इसके शासनकाल को मगध के सर्वाधिक उत्कर्ष का काल मानते हैं।[10] अपनी सामरिक एवं साम्रांज्यवादी लिप्सा को साकार करने के लिए सर्वप्रथम उसने कोशल के राजा प्रसेनजित पर आक्रमण किया क्योंकि इसी ने काशी से प्राप्त होने वाली आय बन्द की थी। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि दोनों के बीच लम्बे समय तक युद्ध चला और हार-जीत होती रही, किन्तु अन्त में प्रसेनजित पराजित हो गया। उसने मगध की आय काशी लौटा दी। अपनी पुत्री वजीरा की शादी अजातशत्रु से कर दी तथा मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर प्रसेनजित अजातशत्रु की ओर से निश्चिंत हुआ।[11]

सफलता मनुष्य की इच्छा को उद्दाम वेग प्रदान करती है। अजातशत्रु अब वैशाली की ओर मुड़ा। वज्जि-संघ की राजधानी वैशाली में थी। लिच्छवी, विदेह एवं ज्ञात्रिक आदि छह जनपदों का एक संघ था जो वज्जि-संघ कहलाता था। वैशाली में गणतंत्रीय शासन-व्यवस्था थी। इसके सारे सदस्य सरदार क्षत्रिय होते थे। स्पार्टा की भांति सारे क्षत्रिय युवक इस गण के सेनानी होते थे। वैशाली पर अजातशत्रु के आक्रमण के कई मौलिक कारण थे। बौद्ध साहित्य 'बुद्धघोष' से ज्ञांत होता है कि मगध

10. Like Frederick II Prussia he carried out the policy of a father with whom his relations were by no means cordial. His reign was the high water mark of the power of the Haryanka dynesty. -*Political History of Ancient India*—By H. C. Roy Choudhary, page 186

11. जातक, 2/237 तथा 403-4115, 34311 : धम्मपद टीका, 3/25.

और वैशाली के बीच बहने वाली गंगा नदी के किनारे एक बन्दरगाह था, जहां हीरे की एक खान थी। उस बन्दरगाह एवं खान दोनों पर मगध तथा वैशाली का समान अधिकार था, किन्तु वैशाली ने मगध को अधिकार से वंचित कर रखा था। मगधपति अजातशत्रु को यह हक युद्ध एवं शस्त्र-प्रयोग के बिना मिलने वाला नहीं था। महत्वाकांक्षियों का इतिहास रहा है कि वे शस्त्र को शक्ति का स्रोत मानते हैं। साम्राज्यवादी साधन की पवित्रता के विश्वासी नहीं, साध्य की पवित्रता के पक्षधर और विश्वासी होते हैं। लक्ष्य की प्राप्ति जैसे हो, जिससे हो, उसी साधन का प्रयोग करते हैं। यों प्रो. राधाकृष्ण चौधरी मानते हैं कि वैशाली पर आक्रमण मगध (अजातशत्रु) की साम्राज्य-विस्तारवादी नीति का प्रतिफल था। वैशाली को अजातशत्रु अपने मार्ग का कांटा मानता था। उत्तर बिहार में अपनी धाक जमाने तथा अपने राज्य का विस्तार करने के लिए अनिवार्य था कि वह वैशाली को पराजित करे। इतना ही नहीं, उसके दो सौतेले भाई हल्ल एवं बेहल्ल मगध से भाग कर अपने नाना के पास वैशाली में रह रहे थे। ये दोनों कभी भी अजातशत्रु के लिए संकट पैदा कर सकते थे तथा उल्का पिण्ड बनकर मगध पर गिर सकते थे। किन्तु वैशाली पर आक्रमण कर वज्जियों को पराजित करना साधारण बात नहीं थी। युद्ध का कोई न कोई कारण होता है, चाहे वह कारण तथ्यपूर्ण हो अथवा बहाना मात्र। अजातशत्रु युद्ध का मार्ग प्रशस्त करना चाहता था जिसकी पीठिका पूर्व ही तैयार हो गयी थी। उसके दो सौतेले भाई (हल्ल और बेहल्ल) अपने नाना के पास मगध से काफी धन लेकर वैशाली भागे थे। अतः अजातशत्रु ने वैशाली के शासक के समक्ष प्रस्ताव रखा कि वह धन सहित उसके दोनों भाइयों को मगध वापस कर दे। परन्तु वज्जियों से नकारात्मक उत्तर मिला। अजातशत्रु ने वैशाली को युद्ध की चेतावनी दे दी।

अजातशत्रु का मंत्री वस्सकार (वर्षकार) वैशाली-आक्रमण के सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध का विचार जानना चाहता था। उसने उनसे सम्पर्क कर सारी बातें बतायीं तथा उनका विचार जानने की इच्छा प्रकट की। बुद्ध ने कहा, "जब तक वज्जियों के जुटाव (सन्निपात) बार-बार और भरपूर होते हैं, तब तक उनकी बढ़ती की ही आशा करनी चाहिए, न कि हानि की। वज्जि इकट्ठे उठते, जुटते, उद्यम करते और अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्य करते हैं। वे लोग सभा द्वारा स्वीकृत कानून के बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते; बने नियमों का उच्छेद नहीं करते और नियम से चलते हुए पुराने 'वज्जि-धम्म' के अनुसार मिलकर रहते हैं। वे अपने बुजुर्गों का आदर-सत्कार करते हैं; कुल-कुमारियों पर जोर-जबर्दस्ती नहीं करते और साथ ही अपने

चैत्यों का आदर-सत्कार करते हैं। उनमें अर्हतों की रक्षा करने का भाव भी है।" बुद्ध के वचन से मंत्री वस्सकार को वैशाली की एकता और शक्ति का आभास हो गया और उसने गुप्तचरी विद्या के प्रयोग से वैशाली की चट्टानी एकता को चूर्ण करने की प्रबल योजना बनायी।[12] उसने स्वयं इस षड्यंत्रकारी अभियान में भाग लिया। सर्वप्रथम वह वैशाली गया तथा उसने उद्घोषणा की कि वह मगध से निकाल दिया गया है; उसे आश्रय चाहिए। उसने वहां के लोगों का विश्वास प्राप्त कर लिया और तब 'फूट डालो राज करो' की नीति पर वह वज्जियों की एकता को छिन्न-भिन्न करने की दिशा में अग्रसर हुआ। वैशाली का शासन-तंत्र डांवाडोल हो उठा। एकता खंडित होने लगी। अराजकता छाने लगी। अनुशासन भंग होने लगा। हिटलर कहता था, "अगर तुम किसी राष्ट्र पर शासन करना चाहते हो तो वहां अशान्ति फैला दो।"[13] वस्सकार ने वैशाली में गुप्तचरों का जाल बिछवा दिया। वे अनेक प्रकार का भ्रामक प्रचार एकता-खंडन के लिए करने लगे। जनता की नैतिकता समाप्त हो गयी और यही बात युद्ध के समय उसके ध्वंस के मूल में छिपी रही।

अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र में गंगा नदी के किनारे अपना सैन्य-शिविर स्थापित किया। आक्रमण का उपयुक्त अवसर देख उसने वैशाली पर चढ़ाई की तथा उसे जीत लिया। 'अट्ठकथा' से प्रकट है कि अजातशत्रु ने 'वैशाली-विजय' के लिए उपलायन (कूटनीति) तथा मिथुभेद (सम्बन्ध विच्छेदन) की नीति अपनायी थी।[14]

अजातशत्रु ने इस संग्राम में 'महाशील कण्टक' एवं 'रथमूसल' युद्ध-यंत्रों का प्रयोग किया था।[15] यह उल्लेखनीय है कि इस युद्ध में आजीविक सम्प्रदाय के

---

12. (i) द्रष्टव्य, ए. एल. बाशम का लेख – '**Proceedings of the Indian History Congress**, Jaipur; Session 1951.

(ii) **Ajatshatru and the Lichchvis** — By Prof. R. K. Choudhary. (Journal of the Oriental Institute Barauda).

13. "If you want to rule over any Country, create chaos among them. —Adolf Hitler.

14. Mala Shekhar — **Dictionary of Pali Names** — I. 34, II, 781, 846. B. C. Law — **Budhistic Studies** — page-199; **Modern Review** — July — 1919; JRAS 1931; **Suvarna Varna-Vadan** — 1971.

15. महाशील कण्टक वृहदाकार था और पत्थरों के टुकड़ों को उछाल कर मारने का काम करता था। जबकि रथमूसल चाकुओं की पैनीधार से लैस था। उसके मध्य में बैठने की जगह थी। चारों ओर धार थी। शत्रुओं के बीच प्रवेश कर गाजर मूली की तरह उन्हें काटने में यह यंत्र बेजोड़ था। **भारत का इतिहास**, रोमिला थापर, पृ.-40.

प्रधान मखाली गोसाल भी मारे गये। वैशाली-विजय से अजातशत्रु की यह प्रतिज्ञा पूरी हुई कि—"भले ही ये बड़े सम्पन्न हैं, भले ही इनका प्रभाव है, तो भी इन्हें उखाड़ फेंकूंगा; नष्ट कर दूंगा और अनीति-मार्ग में फँसा दूंगा।" इस विजय का परिणाम यह हुआ कि पूरा बिहार मगध के अधीन हो गया। राजगृह के छत्ते के नीचे बिहार की धरती कायम रही। प्रतिष्ठा की दृष्टि से कहा जा सकता है कि राजगृह के लिए यह उत्कृष्टतम काल था। चाँदनी रात थी और वासन्ती पुरवाई लहरा रही थी। शौर्य का सूरज मध्याकाश में प्रभुत्व का प्रखर तेज फैला रहा था। तभी तो राजगृह की भारत के प्रमुख नगरों में गणना भी होने लगी थी।

राजगृह (मगध) की बढ़ती शक्ति से भारत के कई राजे सशंकित थे। उन्हें खतरे का आभास होता था। अवन्ती के शासक चंडप्रद्योत ने बिम्बिसार की हत्या का इल्जाम अजातशत्रु पर लगाया। वह बदले की भावना से युद्ध की तैयारी में लग गया। मगधपति अजातशत्रु भी जवाबी कार्रवाई के लिए प्रयत्नशील था। इसी सन्दर्भ में उसने पाटलिपुत्र में स्थायी सैनिक शिविर का निर्माण कराया। ये सारी बातें तो हैं, पर बौद्ध साहित्य इनसे आगे युद्ध के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बताता। हाँ, इतना ज्ञात होता है कि चंडप्रद्योत के भय से उसने राजगृह की किलेबन्दी करायी थी।[16] एक और ग्रन्थ में उल्लेख है कि विभिन्न विजयों के सहारे उसने मगध का विस्तार पन्द्रह हजार मील के घेरे में किया था।[17]

मगध की गरिमा के उल्लेख में कहा जाता है कि उस समय उसके अधीन चालीस हजार गाँव थे; तथा बिम्बिसार का राज्य तीन सौ योजन में फैला हुआ था। इसके शासन में मगध उत्कर्ष के शीर्ष पर था। भारत के तत्कालीन जनपदों की तुलना में मगध सर्वाधिक शक्तिशाली था। बिम्बिसार स्वयं तो सबल शासक था ही, उसकी कृपा एवं सहयोग से उसके सम्बन्धी कोशल राज प्रसेनजित वत्सराज उदयन एवं अवन्ती-नरेश चंडप्रद्योत प्रभावशाली बने हुए थे।

प्राचीन भारतीय इतिहास में बिम्बिसार का शासन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना जाता है। उसकी समझदारी से चयनित उसके मंत्रिमंडलीय सदस्य प्रबुद्ध, कुशल एवं नीतिज्ञ थे। मंत्रियों की मंत्रणा के बिना बिम्बिसार कोई कदम नहीं उठाता था। अपने दूरदर्शी, कूटनीतिज्ञ, कुलीन एवं अनुभवी मंत्रियों के परामर्श के सहारे वह शासन का संचालन करता था। मगध का विस्तार बिम्बिसार और उसके मंत्रिमंडलीय

16. मज्झिम निकाय, 31.
17. विनय, 1/119 (लव), सुमंगल 1/148.

सदस्यों के सम्मिलित योगदान का प्रतिफल है। जिसका साक्ष्य इतिहास भी भरता है। ऐसा कहा जाता है कि बिम्बिसार का ज्येष्ठ पुत्र दर्शक राज-काज में उसकी सहायता करता था। यही कारण है कि दर्शक को उपराजा की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है।

बौद्ध ग्रन्थ 'महावग्ग' बताता है कि मगध प्रशासन की परिषद में गाँव के लोग भी सदस्य होते थे। यह भी विदित होता है कि राजा बिम्बिसार द्वारा छियासी हजार ग्राम्य प्रतिनिधि (ग्राममोजक) आहूत थे। यह संख्या भले ही अतिश्योक्तिपूर्ण हो, पर इतना तो विश्वसनीय है कि उसकी परिषद् में ग्राम्य प्रतिनिधि होते थे। यद्यपि पूरा शासन-प्रबंध महामात्यों के ऊपर निर्भर था; पर उन पर कड़ी निगरानी भी थी। अनुचित सलाह देने वाले प्रतिनिधि एवं अमात्य को निष्कासित तथा उचित सलाह देने वाले को पुरस्कृत किया जाता था।

हाँ, इतिहास के पाठकों को यह जानना चाहिए कि राजनीतिक चाटुकारिता के उदय का काल भी यही था, जिसकी छाया आज की राजनीति की काया पर भी विद्यमान है।

राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तत्कालीन विद्वानों के अभिमत की थोड़ी जानकारी प्रस्तुत करना आवश्यक है। बौद्ध ग्रन्थ 'दीघनिकाय' में उल्लेख है कि प्राचीन काल में लोग धीरे-धीरे सम्पन्न हो गये। सम्पदा अर्जित करने के पश्चात् वे नारी-भोग में लिप्त हुए। वैयक्तिक सम्पदा-अर्जन एवं नारी-भोग के फलस्वरूप कलह तथा द्वेष दोनों उदित हुए। आपसी संघर्ष से बचने और अपनी रक्षा के लिए लोगों ने मिलकर कुछ खास व्यक्तियों को प्रधान के रूप में चुना। वे चुने प्रधान सामाजिक शक्ति-सम्पन्न होते थे तथा कुल की रक्षा करते थे। इस कार्य के लिए कर स्वरूप उन्हें लोगों से धन प्राप्त होता था। इन्हीं प्रधानों में शक्तिशाली प्रधान राजा बन गया और राजतंत्र का उदय हुआ। राज्य की उत्पत्ति भी इसी तरह हुई।

राज्य एवं शासन व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए बिम्बिसार ने अनेक कार्य किये। यातायात को सुविधापूर्ण बनाने के लिए सड़कें बनवायीं गयीं। खेती एवं उद्योग को बढ़ावा देकर लोगों को आत्मनिर्भर बनाया गया। जमीन की माप करायी गयी तथा विशेष अधिकारियों को खेती की देखभाल के लिए नियुक्त किया गया ताकि कृषि समुन्नत हो। ये सारी बिम्बिसार के शासन की उपलब्धियाँ हैं। इसके समय में वन-सम्पदा पर पूर्णतः राजकीय अधिकार था। जंगलों की सफाई राजा के आदेश पर ही की जाती थी।

कठोर दण्ड-विधान के अन्तर्गत इस शासन-काल में कोड़ा लगाने, सिर काटने तथा जीभ खींच लेने के नियम प्रयोग में थे। अक्षम्य अपराध के लिए मृत्यु-दण्ड का विधान भी था। दण्ड-विधान वर्णानुसार अर्थात् वर्ण पर आधारित था। हर वर्ण के लिए अलग-अलग दण्ड निर्धारित था। गौतम-धर्म-सूत्र के अनुसार उस क्षत्रिय को जुर्माना स्वरूप एक सौ कर्षापण देने पड़ते थे, जो ब्राह्मण को अपमानित करता था किन्तु यही काम यदि ब्राह्मण करता, अर्थात् वह क्षत्रिय को अपमानित करता तो उसे मात्र पचास कर्षापण देने पड़ते थे, पर वैश्य को अपमानित करने पर वह पचास भी नहीं, केवल पच्चीस कर्षापण चुकाने पड़ते थे। उन दिनों गांव सुरक्षित थे। वहाँ अपराध बहुत कम होते थे। इसका कारण यह था कि शासन द्वारा ग्रामीणों की सुरक्षा की बेहतर व्यवस्था थी। राजा बड़े अपराधों के नियंत्रण में सक्षम था और वह बड़े अपराधियों को सिर उठाने का अवसर नहीं देता था।

धर्म : बिम्बिसार ने अपने चाकरों, सम्बन्धियों तथा पारिवारिक सदस्यों के साथ जैन धर्म स्वीकार कर लिया था।[18] यह भी उल्लेख मिलता है कि उसने कभी बौद्ध धर्म भी स्वीकार किया था।[19] और इसी सन्दर्भ में उसने बौद्ध भिक्षुओं को जल-मार्ग से निःशुल्क यात्रा करने की छूट दी थी।[20]

चीनी यात्री फाहियान और ह्वेनसांग के विवरणों से पता चलता है कि अजातशत्रु ने राजगृह का नव-निर्माण कराया था। बुद्धघोष के अनुसार इसके समय में राजगृह 'अन्तर नगर' और 'बाह्य नगर' दो भागों में बँटा था। इनमें आवागमन के लिए बत्तीस बड़े एवं चौंसठ छोटे द्वार बने हुए थे। शहर की आबादी घनी थी। अजातशत्रु के शासन का अंत ई. पू. 449 में हुआ, ऐसा माना जाता है। पालि ग्रन्थों एवं पुराणों के अनुसार अजातशत्रु ने क्रमशः बत्तीस एवं सत्ताईस वर्षों तक मगध पर शासन किया। जैन ग्रन्थ उसे जैनी और बौद्ध ग्रन्थ बौद्ध मानते हैं। पहले तो अजातशत्रु महात्मा बुद्ध का विरोधी था, पर बाद में वैचारिक बदलाव आया और वह उनका आदर करने लगा। इस बात की पुष्टि भरहूत की मूर्तियों से होती है जो दूसरी सदी ई. पू. 50 की हैं। एक मूर्ति पर अंकित शब्दावलियां इस प्रकार हैं:

"अजातशत्रु महात्मा को प्रणाम करता है।" मूर्ति दर्शाती है कि अजातशत्रु हाथी

---

18. उत्तराध्ययन सूत्र, 20/5:3.
19. सुत्त निपात, 408 तथा विनय, 1139.
20. ललित विस्तर, 5/526.

पर सवार होकर महात्मा बुद्ध को प्रणाम कर रहा है। उसके पीछे चलने वाली स्त्रियों के समूह को भी दर्शाया गया है। ये स्त्रियां हाथी पर सवार जुलूस के रूप में मूर्ति में दृश्य हैं। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् अजातशत्रु ने अपना दूत भेजा था और आज्ञा दी थी कि वह उनकी भस्म लाये। उसने राजगृह में एक विशाल स्तूप बनवा कर भगवान् बुद्ध की भस्म उसमें स्थापित करायी थी। उसी के शासन-काल में दोनों महात्मा—भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया। अजातशत्रु के शासन-काल में ही उसके सहयोग से बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् राजगृह में बौद्धों की प्रथम संगीति महात्मा के अमूल्य वचनों को एकत्र करने के उद्देश्य से हुई। बौद्ध ग्रन्थ 'महावंश' बतलाता है कि अजातशत्रु ने राजगृह के चारों ओर धातु-चैत्य बनवाये। यही नहीं; उसने अट्ठारह महाविहारों की मरम्मत करायी तथा उनका जीर्णोद्धार किया। उसकी धार्मिक सहिष्णुता का एक प्रमाण यह भी है कि जब वह अंग का युवराज था, तब एक बार उसने महात्मा महावीर से भेंट कर जैनधर्म के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की थी।[21]

अजातशत्रु की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र हुआ। उसका नाम उदयी या उदयभद्र था। शासन की सुविधा को लक्ष्य कर उसने राजगृह से अपनी राजधानी हटा ली तथा पाटलिपुत्र को राजधानी बनाकर शासन कार्य प्रारंभ किया। इसमें फिर परिवर्तन हुआ। पुराणों के अनुसार हर्यक कुल के शासकों के बाद शिशुनाग राजाओं के शासन-काल में राजधानी पुनः राजगृह में वापस आयी, राजगृह राजधानी बना। किन्तु इतिहासकार मानते हैं कि शिशुनागों के समय से ही पाटलिपुत्र मगध की राजधानी बनकर प्रभुत्व एवं प्रभुसत्ता का निर्वाह कर रहा था। चाहे जो हो, इससे इतना तो अवश्य हुआ कि राजगृह के व्यापार, उद्योग-धंधों, राजनीतिक प्रतिष्ठा एवं विकास में गिरावट आयी। फिर भी धर्म एवं संस्कृति को जोड़कर ले चलने वाला राजगृह आस्थावानों के मानस से विलग कैसे हो सकता है? इसकी प्रतिष्ठा आज भी धार्मिक एवं प्रसिद्ध सांस्कृतिक स्थलों में महत्तम है।

मौर्य शासक अशोक के समय में भी राजगृह का महत्व धार्मिक दृष्टि से बहुत बढ़ गया था। उस राजा ने यहाँ एक स्तूप निर्मित कराया। सिंह चिह्नित मूर्तियों का एक स्तंभ भी उसने खड़ा कराया था। जिस समय चीनी यात्री फाहियान राजगृह गया था, उस समय यह शहर उजड़ चुका था। उसे वहाँ केवल स्तूपों एवं विहारों

---

21. औपपातिक सूत्र, 12. 27, 30.
    परिशिष्टपर्वण-4 सर्ग : आवश्यक सूत्र, 684, 687.

के खंडहर ही दिखायी पड़े। जैन साहित्य बताता है कि बौद्धों की अपेक्षा जैनियों के लिए यह शहर अधिक आकर्षक और धर्म-केन्द्र था।

सांस्कृतिक एवं धार्मिक अभ्युदय के पदचापों की ध्वनि विध्वंस के बाद भी खंडहरों में गूँजती है। धर्म एवं संस्कृति को आरेखित करने वाला स्थान काल के गाल में नहीं समाता, उसकी अक्षुण्णता बनी रहती है। अत: राजगृह तब तो आबाद था ही, अब भी जनमानस पर धार्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहर के रूप में विद्यमान है।

राजगृह और बुद्धकालीन परिवेश

सामाजिक एवं देशीय चित्रोल्लेख के बिना कोई भी ऐतिहासिक विषयानुशीलन पूर्ण नहीं माना जा सकता। राजगृह का अनुशीलनात्मक अध्ययन केवल ईंट-पत्थरों का पुरातात्विक अध्ययन नहीं है; बल्कि उसके माध्यम से इतिहास एवं भूगोल के साथ-साथ सामाजिक परिवेश का प्रकाश भी दृश्य होता है। अतः समग्रता के साथ उस पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। पाश्चात्य इतिहासकार प्रो. राइस डेविस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'बुद्धिस्ट इण्डिया'* में लिखा है कि उस समय ग्रामों की आवासीय निर्माण-व्यवस्था में एकरूपता थी। अकिंचन अथवा अस्पृश्य के लिए कोई इतर व्यवस्था थी, ऐसी पक्षपातपूर्ण व्यवस्था का उल्लेख नहीं मिलता। धान के क्षेत्रों की बहुलता गांवों में चतुर्दिक शोभायमान थी। प्रायः सर्वत्र आवासीय परिसर में वृक्षों की वल्लियां विद्यमान थीं और वृक्षावलियां झूम-झूमकर धरती माता का चरण-स्पर्श-वन्दन करती दृश्य थीं। गो-चारण-भूमि सार्वजनिक सम्पदा मानी जाती थी। जंगली भागों की लकड़ियां ग्रामीणों के ईंधन के उपयोग में आती थी।[1]

पालि साहित्य के ग्रंथों से विदित है कि गांव प्रायः तीन प्रकार के होते थे। प्रथम प्रकार के गांव में सभी जातियों के लोग निवास करते थे। दूसरी श्रेणी के गांव को उपनगरीय क्षेत्र नाम से संबोधित किया जाता था जिसमें शिल्पी रहते थे। तीसरे प्रकार के गांवों में शिकारी, बहेलिये निवास करते थे। द्वितीय श्रेणी के गांवों की एक विशेषता यह थी कि वे उपनगरीय अर्थात् शिल्पी ग्राम अन्य ग्रामों एवं नगरों के बीच संबंध स्थापित करने का काम करते थे।

वर्ण-व्यवस्था

तत्कालीन साहित्यालेख से ज्ञात होता है कि उस समय वर्ण-व्यवस्था प्रचलित

1. जातक, 1/19.

थी। वही पुरानी वर्ण-व्यवस्था जिसमें चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र अंतर्हित हैं, तब के समाज में भी चरितार्थ थी। समाज एवं राजदरबारों में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ माना जाता था। उसकी सर्वश्रेष्ठता प्राय: सर्वमान्य थी। धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मण अवध्य, अदण्डय, बंधनमुक्त एवं अबहिष्करणीय थे। वेदपाठी एवं संकट-निवारक ब्राह्मणों को राजकीय कर से मुक्त रखा गया था। व्यक्ति का जाति-निर्धारण जन्माधार पर होता था। ब्राह्मण वह था जो ब्राह्मण वंश में जन्म लेता था। स्मृति ग्रन्थों में ब्राह्मणों के कर्म वर्णित हैं[2]—सम, दम, तप, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, ज्ञान-विज्ञान-परिज्ञान एवं आस्तिकता आदि। इन्हें इस प्रकार भी जाना जा सकता है—शमन-वृत्ति, दमन-वृत्ति (इन्द्रिय-निग्रह), तप साधना, पवित्रता, शास्त्रज्ञान, निष्णयन, ब्रह्मज्ञानी और आस्तिक (ईश्वरीय विश्वासी)। ये भी ब्राह्मण की प्रवृत्तियों एवं आचारों के द्योतक हैं। एक ग्रंथ बोधायन धर्मसूत्र कहता है कि संकट काल में ब्राह्मण शस्त्र संचालन एवं व्यवसाय दोनों कर सकता है। इसका मतलब है कि ब्राह्मण विशेष परिस्थिति अर्थात् आपातकाल में क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए निर्धारित कर्मों को करने का अधिकारी होता था। यह तभी सार्थक माना जाता था अर्थात् उपयोग में था, जब ब्राह्मण जाति के निर्धारण का आधार कर्मणा न होकर जन्मना था। आर्थिक विपन्नता के कारण कुछ ब्राह्मण स्वजाति के लिए निर्धारित कार्यों से बाहर जाकर अन्य कार्य भी कर लेते थे, जो जाति-विदित कार्य न थे। फलत: उनकी सामाजिक श्रेष्ठता में ह्रास दृष्टिगत होने लगा। 'दसकुमार जातक' में ब्राह्मणों के दस कर्मों का उल्लेख है। वे कर्म हैं—पुरोहिती, अंग-रक्षण, चिकित्सा-कार्य, सेवक-वृत्ति, शकट संचालन, कर-संग्रहण, भूमि छेदन,फल-मिष्ठान्न विक्रय, प्रतिहारी, कृषि, शिकार, पथ-प्रदर्शन, दरबार-परिचारन। किन्तु अध्ययन और पुरोहिती उनके प्रमुख कार्य थे।

वर्ण-व्यवस्था से क्षत्रिय दूसरे स्थान पर थे। देश का प्रशासन एवं अंतर-बाह्य-संरक्षण (Internal External Safety Arrangement) उनके जिम्मे थे। आपातकाल में क्षत्रिय भी वैश्यों के लिए निर्धारित कार्य कर सकते थे। इस काल में ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय भी जप-तप, ज्ञान-विज्ञान, विद्याध्ययन में रुचि लेने लगे थे। इन क्षेत्रों में क्षत्रियों की विशिष्टता के प्रमाण भी मिलते हैं। मतलब यह कि परिस्थितिवश ब्राह्मण एवं क्षत्रिय दोनों अपने निर्धारित मूल-कार्य से हटकर एक दूसरे के कार्य अपनाने लगे थे।

---

2. समोदम: तपश्चैव, शौच इन्द्रिय निग्रहम् ।
ज्ञान-विज्ञान मास्तिक्यं ब्रहमकर्म स्वभावजम्।। (मनुस्मृति)

वर्ण-व्यवस्था के अंदर वैश्य तीसरे स्थान पर थे। इनके कार्य इस रूप में निर्धारित थे :— कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, महाजनी। श्रीमद्‌भगवतगीता भी इनके कार्यों का अनुमोदन करती कहती है—

'कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यम वैश्य कर्म स्वभावजम्।'

इन पर संकटकालीन दायित्व था। आपातावस्था में ये वैश्य भी वेद और गाय की रक्षा के लिए शस्त्र धारण कर सकते थे। परंतु, युद्ध करने की अनुमति नहीं थी। वेदाध्ययन, दान एवं यज्ञ करने का अधिकार इन्हें था। जैन एवं बौद्ध धर्म दोनों ने इन वैश्यों की सामाजिक स्थितियों को अधिक सुदृढ़ कर दिया। वैश्यों के लिए 'गृहपति एवं कौटम्बिक' संबोधन प्रयोग में आ चुके थे। राज-दरबारों में इनके प्रतिनिधि नियुक्त होने लगे थे। धन तथा पद के फलस्वरूप इन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

वर्ण-व्यवस्था के अन्दर आने वाले चौथे वर्ण अर्थात् शूद्र के संबंध में ऋग्वेद के पुरुषसूक्त एवं अन्य ग्रन्थों में अल्प भिन्नता के साथ कहा गया है कि शूद्रों की उत्पत्ति ब्रह्मा के पैर से हुई। फलतः उन्हें वैदिक अधिकारों से वंचित रखा गया। मूलतः, शूद्रों का कार्य ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य की सेवा करना था। यद्यपि जैनों तथा बौद्धों ने उनकी स्थिति में सुधार लाने की व्यवस्था की, किंतु वह व्यवस्था में एक सीमा के अन्दर ही रही।

अनार्य को शूद्र माना जाता था, उसकी गणना शूद्र में होती थी तथा वे अधिकार-वंचित थे। बौद्ध-ग्रंथ के अनुसार शिल्पी, नट, नर्तक, ग्वाले, संपेरे, घसियारे शूद्र माने गये हैं; किंतु कृषि-कर्म सम्पादित करने का दायित्व इन्हें ही दिया गया था।

पंचम वर्ण की परिकल्पना भी इस युग में थी। चाण्डालों को पंचम वर्ण के अन्दर रखा गया था। उन्हें नगर में नहीं बसने दिया जाता था। नगर से बाहर उनका निवास होता था। उनकी भाषा आर्यों की भाषा से भिन्न थी। वे आखेट एवं सरकंडों की बुनाई कर अपनी जीविका चलाते थे। चाण्डालों एवं निषादों को बौद्ध ग्रंथ अस्पृश्य बतलाते हैं। एक समय भगवान् बुद्ध ने अपूत विधि से समानीत भोज्य पदार्थ को चाण्डालों का उच्छिष्ट अन्न कहा था। इनके ग्रामों को यत्र-तत्र 'चाण्डाल-ग्राम' नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। इनके शरीर का संस्पर्श वर्जित था। यहां तक कि उनकी छाया से भी लोग अलग रहते थे। एक कथा है कि एक श्रेष्ठी की कन्या की आंखें मात्र चाण्डाल को देखने के कारण दूषित मान ली गई थीं। उसे अपनी आंखों को शुद्ध एवं निर्मल करने के लिए उपचार

का अवलम्बन करना पड़ा। चाण्डाल के संस्पर्श होने पर शुद्धता के लिए स्नान अनिवार्य था। आपस्तम्ब की वर्ण-व्यवस्था के संबंध में इस प्रकार विषय वर्णित है– "धर्माचरण द्वारा निकृष्ट वर्ण का व्यक्ति अपने से उच्च वर्ण को प्राप्त कर सकता है और अधर्म का आचरण करने से उत्कृष्ट वर्ण का व्यक्ति अपने से निचले वर्ण का हो जाता है।"[3]

आपस्तम्ब ने अपना सिद्धान्त निरूपित कर एक विलक्षण व्यवस्था की ओर संकेत दे दिया, जैसा कि ऊपरी उद्धरण से संकेतित है। उसने कर्म एवं धर्माचरण को प्रधानता दी। तभी तो कहा कि कर्म, धर्माचरण एवं साधना के द्वारा कोई हीन वर्ण का आदमी भी उच्च वर्ण प्राप्त कर सकता है और उच्च वर्ण का आदमी मानक धर्माचरण के विपरीत कार्य करने पर हीन वर्ण का हो सकता है। अत: पहली बार वर्ण-व्यवस्था के लिए कर्म को आधार माना गया तथा हीन वर्णों के सामाजिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया। एक जैन-ग्रंथ के अनुसार अधम कुल में उत्पन्न एक जैन गुरु से दीक्षा लेने के लिए राजा को नीचे का आसन ग्रहण करना पड़ा था।

नारी

तत्कालीन समाज में नारियों का स्थान सामाजिक सम्मान की दृष्टि से अच्छी अवस्था में नहीं था। नारियां प्राय: घर के अंदर पर्दे में रहती थीं। उनके लिए गृहकार्य एवं संगीत का परिज्ञान दोनों अनिवार्य थे। कुशल गृहिणी के लिए उनमें निपुण होना सामाजिक मानदंड हो गया था। संघ प्रवेश नारियों के लिए निषिद्ध एवं अमान्य था। यह इससे भी प्रमाणित होता है कि एक बार भिक्षु आनंद ने बुद्ध से नारियों के संघ प्रवेश के लिए अनुमति मांगी, तब बुद्ध ने यह उत्तर देकर सावधान किया– "जिस तरह पाला पड़ने पर धान की फसल नष्ट हो जाती है, उसी तरह नारियों के प्रवेश से संघ नष्ट हो जायेगा।" समय बीतने पर कुछ दिनों के बाद नारियों के संघ-प्रवेश की अनुमति मिल गई, किन्तु उनके लिए आठ कठोर नियम प्रतिपादित किये गये। इसके बाद भी भगवान् बुद्ध चिंतित थे और उन्होंने कहा कि हजारों वर्षों तक चलने वाला यह धर्म अब कुछ सौ वर्षों में सिमट जाएगा। नारियों के संघ प्रवेश के लिए जो आठ नियम बनाये गये थे, उनमें से मात्र एक नियम का समीक्षात्मक अध्ययन यह बता देगा कि उस समय के समाज में उनकी अवस्था

3. प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ. 169-170.

कैसी थी? "एक दिन के दीक्षित भिक्षु को सौ दिन पूर्व दीक्षित भिक्षुणी से श्रेष्ठ माना जाता था और सामने आने पर उस भिक्षुणी को भिक्षु के समक्ष बैठे रहने पर खड़ा होना पड़ता था। उसे हाथ जोड़कर प्रार्थना भी करनी पड़ती थी। इतना ही नहीं, भिक्षुणियां भिक्षुओं के समक्ष स्वेच्छा से बातें नहीं कर सकती थीं, जबकि भिक्षुओं को इसकी स्वतंत्रता थी।"[4]

लेकिन कुछ योग्य एवं विदुषी महिलाओं का उल्लेख भी मिलता है। अध्ययन एवं तपस्या के बल पर इन महिलाओं ने समाज में प्रतिष्ठा एवं ख्याति प्राप्त कर ली थी। इन महिलाओं से ही लगभग सौ महिलाओं ने एक साथ मिलकर बौद्ध-गीतों को संकलित किया जो बाद में वह संकलन 'थेरी गाथा' के नाम से चर्चित हुआ। ये सौ महिलायें बाहरी नहीं, बौद्ध भिक्षुणी थीं। इससे कुछ महिलाओं के उन्नत बौद्धिक स्तर का परिचय मिलता है। स्पष्ट है, बौद्धिक स्तर पर सभी महिलायें समान नहीं थीं। फिर भी महिलाओं को पुरुषों के आश्रय में ही रहना पड़ता था। उनकी स्वतंत्रता अत्यंत सीमित थी। सम्पदा पर अधिकार नहीं था। मात्र वस्त्राभूषण उनकी वैयक्तिक सम्पदा की सीमा में आता था। उस वस्त्राभूषण की अधिकारिणी उनके बाद उनकी पुत्री होती थी।

शिक्षा

तत्कालीन राजगृह विख्यात, सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित शिक्षा-केन्द्र था। आचार्यों के लिए 'उपाध्याय' शब्द संबोधन में प्रयुक्त होता था। उन्हें दस वर्षों का भिक्षु-जीवन व्यतीत करना पड़ता था। शिक्षार्थियों (शिशिक्षुओं) को 'सधिविहारिका' कहा जाता था। नवागत शिक्षार्थियों को प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात प्रवेश दिया जाता था। यह एक विशिष्ट संस्कार था। इन्हें स्वाभाविक, सरल, सादा एवं सहज जीवन अध्ययन काल में जीना पड़ता था। शिक्षण-संस्थानों में सशुल्क एवं निःशुल्क दोनों तरह की शिक्षा-व्यवस्था थी। यद्यपि छात्रों के लिए छात्रावास थे, उनमें छात्र रहते भी थे; किंतु कुछ छात्र घर से प्रतिदिन आ-जाकर भी अध्ययन करते थे। शिक्षण संस्थानों का संचालन राजकीय आर्थिक सहयोग एवं दान की राशि से किया जाता था। जातकों में ऐसा वर्णन मिलता है कि विशिष्ट प्रतिभा के शिक्षार्थियों के लिए अन्यत्र अध्ययन की व्यवस्था भी थी। यह व्यवस्था विषय विशेष में दक्षता प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती थी। उन दिनों नालंदा की भांति वाराणसी एवं तक्षशिला में भी विख्यात विद्यापीठें थी।

4. विनय पत्रिका, चुल्ल वर्ग – 101.

नारी शिक्षा

उन दिनों नारियों में भी शिक्षा-प्रचलित थी एवं शिक्षा के प्रति अनुराग के भाव थे। 'थेरी गाथा' पुस्तक इस विंदु पर अधिक प्रकाश बिखेरती है। यह 'थेरी गाथा' महान विदुषी भिक्षुणियों की देन हैं। इसमें बत्तीस आबाल आजीवन ब्रह्मचारिणी का उल्लेख है। विवाहोपरांत अट्ठारह नारियां भिक्षुणी बन गई थीं, इसका भी उल्लेख मिलता है। उनमें शुभा, सुमेधा एवं अनुपमा के नाम आदर और श्रद्धा के साथ उल्लिखित हैं। राजगृह की भद्रकुण्डल केशा नामक श्रेष्ठी कन्या तो इतनी विदुषी थी कि उसने देश-विदेश के अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया था। वह कई शास्त्रों की विदुषी नारी थी। इसके अतिरिक्त धम्मदोना, उत्तरा, काली, सुपत्ता, धन्ना एवं उपालि ऐसी विदुषी थीं कि वे 'विनय पिटक' के ऊपर प्रवचन करती थीं तथा उसके अध्यापन में भी सक्षम थीं। पुरुषों के समतुल्य नारियां थीं अथवा नहीं, यह तो अलग खोज का विषय है, पर इतना तो माना ही जायेगा कि तब नारी शिक्षा का सुदृढ़ प्रचलन था, नारियां शिक्षा प्राप्त करती थीं, 'दिव्यावदान' में छात्राओं का वर्णन भी मिलता है। उन दिनों राजगृह में विदुषी नारियों द्वारा धार्मिक प्रवचन भी किये जाते थे। एक बार कोशल नरेश प्रसेनजित किसी विषय की शंका के समाधान के लिए राजगृह आये थे; यह उस स्थान की विशिष्ट शैक्षिक व्यवस्था का प्रतीक है।

गणिकायें

बौद्ध-साहित्य में गणिकाओं के संबंध में भी उल्लेख है। प्राय: गणिकाएं अविवाहिता रहतीं थीं, किन्तु उन्हें माता बनने का सौभाग्य प्राप्त था। उनकी संतान को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। बिम्बिसार एवं मगधपति अजातशत्रु के शासनकाल का राजवैद्य जीवक सालवती नामक गणिका का पुत्र था। सालवती राजगृह की प्रमुख गणिका थी। राज्य द्वारा उसका अभिषेक किया गया था। वैशाली की प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली से मगध की गणिका सालवती का शुल्क दुगुना था।

विवाह

इस काल में आठ प्रकार की वैवाहिक विधियां प्रचलित थीं, वे हैं—ब्रह्म, दैव,

आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, असुर, राक्षस और पैशाच। इतना ही नहीं, शादी समीपी संबंधियों एवं सगोत्रीय व्यक्तियों के साथ भी सम्पन्न होती थी। भगवान् महावीर का विवाह अपनी चचेरी बहन यशोदा से हुआ था। उनकी इकलौती पुत्री का विवाह भी उनके अपने भतीजे जमाली के साथ सम्पन्न हुआ।[5] महात्मा बुद्ध का विवाह भी दूर के रिश्ते में नहीं हुआ था। उनकी पैत्नी यशोधरा उनकी अपनी चचेरी बहन थी।[6] इस तरह स्पष्ट होता है कि उन दिनों स्वैरिता की स्थिति थी। तत्कालीन समाज में अनुलोम एवं विलोम (प्रतिलोम) दोनों तरह के विवाह प्रचलित थे। हां, बाल-विवाह की प्रथा नहीं थी। सोलह वर्ष की उम्र पार करने के बाद ही कन्या का परिणय सम्पन्न होता था। धम्मपद-टीका में उल्लेख है कि कन्या सोलह वर्ष की उम्र में परिणय के लिए उन्मुख होती है। शादी के अवसर पर दान एवं दहेज दोनों की प्रथा थी। बिम्बिसार को दहेज में एक लाख वार्षिक आय प्राप्त होने वाला प्रदेश (काशी) मिला था।

मनोरंजन

बौद्ध साहित्य से आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन के तत्कालीन साधनों का परिचय मिलता है। सार्वजनिक उत्सव भी होते थे, किंतु उनके लिए आधिकारिक व्यवस्था की जाती थी। उत्सव के अवसर पर एकत्र होने वाली भीड़ को 'सभज्ज' कहते थे। यह 'समज्ज' शब्द समाज का विकृत रूप है। संभवतः इस शब्द का प्रयोग इसी काल में हुआ था, ऐसा अनुमान है।

जातक कथाओं से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में नृत्य, गायन एवं वादन का प्रचलन था। इन्द्रजाल भी प्रचलित था। खेल-तमाशे एवं मनोरंजन के अनेक साधन व्यवहार में थे और अनेक कलाओं के प्रदर्शन भी किये जाते थे। सामाजिक एवं सार्वजनिक उत्सव के अवसर पर प्रतिस्पर्द्धात्मक एवं प्रतियोगितात्मक क्रीड़ा, गायन तथा वादन होते थे। ये लोगों के मनोरंजन के मुख्य साधन थे। प्रतियोगिता में भाग लेने वाले विजेताओं को पारितोषिक देने का प्रावधान भी था। मनोरंजन के लिए जीव-जंतुओं, पशुओं के युद्ध आयोजित होते थे। ऐसे युद्धों में—वृषभ (सांड़) युद्ध, गेंडा-युद्ध, नेवला-नाग-युद्ध, पहलवानों का मल्लयुद्ध, हस्तियुद्ध, भेड़ युद्ध एवं मुर्गे के युद्ध प्रसिद्ध हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रीड़ाएं

5. प्राचीन भारत—एक रूपरेखा, डी. एन. झा, पृ. 40.
6. — वही, पृ. 41.

भी प्रचलित थीं। हाथियों को सजाकर लोग खेल-तमाशे करते थे। नट रस्सी एवं भाले पर छलांग लगाकर तमाशे दिखाते थे। कला-प्रवीण तलवार पर चलकर खेल दिखाते थे। अन्य शारीरिक क्रियाओं द्वारा भी तरह-तरह के खेल दिखाने का प्रचलन था। लाठी के सहारे भी खेल खेले जाते थे। बौद्ध-साहित्य यह भी बताता है कि कभी-कभी ऐसे अवसर पर मारपीट भी हो जाती थी।

अर्थव्यवस्था

किसी भी समाज की सबलता एवं दृढ़ता उसकी आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। दुर्बल अर्थ-व्यवस्था से उन्नत समाज अथवा राष्ट्र की परिकल्पना को साकार नहीं किया जा सकता। राजगृह की अर्थव्यवस्था तथा तत्कालीन समाज के आय-जन्य स्रोतों के संबंध में तत्कालीन इतिहास साक्ष्य भरता है।

सातवीं ई. पू. में लगभग लोहे का आविष्कार हो चुका था। लोहे के आविष्कार से कृषि-कार्य में क्रांति हुई। मगध साम्राज्य के अन्दर बहुत सारी भूगर्भित संपदायें थीं जिनमें लोहा, तांबा, सोना एवं अभ्रक प्रमुख हैं। बाहुबली मगधवासियों ने इन प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता एवं प्रयोग के रास्ते ढूंढ़ निकाले। श्रम की अखंड, अटूट साधना के बल पर इन्होंने लोहे के औजार तैयार कर लिये। हल का फावड़ा (फाल) पहली बार लोहे का बनाया गया। खेत जोतने में इससे काफी मदद मिली। इसके प्रयोग से मिट्टी की अच्छी खुदाई एवं जुताई के फलस्वरूप भूमि उर्वरा हो गई एवं उस पर फसलें लहराने लगीं। इसके पूर्व खेत की अच्छी जुताई नहीं होती थी। लोहे के हल से तीन-चार बार जोतने के बाद फसल लगाने का काम होता था। जमीन की उर्वरा शक्ति में आशातीत वृद्धि हुई। पथरीले भू-खण्डों को भी खेती के योग्य जोतकर बनाया गया। इससे तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था को नया आयाम मिला। प्रचुर अन्नों से भण्डारं परिपूर्ण हो गये। अनेक मण्डियों में अन्न उपलब्ध होने लगे। जीविका का प्रमुख साधन खेती एवं कृषि-कार्य था। अपनी जमीन में लोग खेती करते थे। जोत की भूमि (Agricultural Land) खंडों में विभाजित न होकर 'चको' (Plots) में थी। बुद्धकाल में चकों की जमीन में बखूबी खेती होती थी, परंतु सिंचाई की व्यवस्था सामूहिक थी। यद्यपि लोग अपनी जमीन के मालिक थे, पर उन्हें उसके क्रय-विक्रय का अधिकार नहीं था। भूमि का स्वामित्व परिवर्तन तीन प्रकार से होता था। ब्राह्मण ग्रंथों में बलि शुल्क के रूप में भूमि दान का उल्लेख है। परंतु इसके बाद के अभिलेख से ज्ञात होता है कि भूमि का

हस्तांतरण उचित नहीं था। राज्य (राजा) द्वारा कभी-कभी अपने सरदारों, पुरोहितों तथा कर्मचारियों को उनकी योग्यता के अनुरूप भूमि दान और पुरस्कार स्वरूप प्रदान की जाती थी। किसानों को भूमि-स्वामित्व के लिये कृषि कर लगता था, यह कृषि-कर राजा द्वारा नियुक्त ग्राममोजक अर्थात् ग्रामीण कर्मचारी के माध्यम से वसूल किया जाता था। यह अधिकारी या तो निर्वाचित और नहीं तो वंशानुगत नियुक्त होता जाता था। श्रीलंका में आज भी 'ग्रामीण' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। यह अधिकारी कर-संग्रह तो करता था, किंतु किसी पर वह कर संग्रह के लिये अनुचित दबाव नहीं दे सकता था। यह अधिकारी कर-संग्रह के अतिरिक्त राज्यादेश के अंतर्गत समाज-कल्याण का कार्य भी करता था। कृषि-कर उपज के 1/6 और 1/10 भाग में राज्य को देने का प्रावधान था।

कुलावक जातक, नोशक जातक, तक्क जातक और महा उक्कग जातक से परिलक्षित होता है कि अनेक काम सामूहिक रूप में जनता के सहयोग से होते थे। सहकारिताधारित इन कार्यों में पथ-निमांण, पथ-मरम्मत, उद्यान-उपवन-आरोपण, विश्राम-गृह-निमांण एवं सार्वजनिक उपयोग के मैदान-निर्माण प्रमुख हैं। सार्वजनिक कार्यों में गाँव की स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं और यह उनके लिये गौरव की बात थी।[7]

बौद्ध-साहित्य से जिन अनाजों की पैदावार का पता चलता है, उनमें—बाजरा, चना, मूँग, मटर, उड़द, धान, व्रीहि प्रमुख है। महान् वैयाकरण पाणिनि की पुस्तक 'अष्टाध्यायी' मे भी शालि, व्रीहि, यव, षष्टिक (साठी चावल), तिल, गवेधुका (गोभी) आदि फसलों के उपजने के प्रमाण मिलते हैं। जैन ग्रंथ तीन फसलों अर्थात् अनाजों का उल्लेख करता है, जो श्रौणिक, आराणिक तथा आटविक हैं। एक जगह यह भी प्रमाण मिलता है कि गोधूम (गेहूँ), चणक (चना) एवं कपास की पैदावार भी होती थी। जैन-ग्रंथ में उल्लिखित तीन प्रकार के अन्नों (फसलों) का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है :-

1. **क्षेत्रीय** :— इसके अंतर्गत यव (जौ), व्रीहि, शालि, गोधूम, चणक, कपास, मूँग आदि हैं।

2. **आराणिक** :- इसमें बाग-बगीचों में होने वाली फसलें श्रेणीबद्ध हैं। जैसे—आम, अनार, खजूर आदि।

3. **आटविक** :- इसके अंतर्गत वन में उत्पन्न होने वाली फसलों को श्रेणीबद्ध किया गया है जैसे—जामुन, बेर, बेल आदि।

7. जातक, 1. 119.

उद्योग धन्धे

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि महान् मगधों के राज्यकाल में उद्योग धंधे प्रारंभ हो गये थे। जातक कथाएँ इंगित करती हैं कि लौहकारी, चर्मकारी एवं चित्रकारी के उद्योग पूर्णतः प्रचलन में आ चुके थे। पश्चिम के विद्वान इतिहासकार डेविड के एक अनुमानित लेख से पता चलता है कि काष्ठोद्योग, लौहोद्योग, चर्मोद्योग के साथ-साथ कुम्भकारी, हस्तिदंतकारी, प्रस्तरकारी, बुनाई, रंगकारी एवं स्वर्णकारी के उद्योग धंधे भी विकसित थे। इसके अतिरिक्त मछली मारने एवं टोकरी बुनने के काम भी होते थे। कसाई पशु-वध से जीविका चलाते थे तथा बहेलिये पक्षी पकड़ा करते थे। नाइं, माली, नाविक एवं रंगरेज तथा बावर्ची के उदय हो चुके थे; ये लोग अपने पेशे से जीविका चलाते थे। इन आँकड़ों से पता चलता है कि राजगृह सम्पन्न प्रदेश था और उद्योग-धंधों का प्रमुख केन्द्र था। ये उद्योग समाज़ के आर्थिक ढाँचे को संबल दे रहे थे।

वाणिज्य व्यापार

विभिन्न उल्लेखों से प्रकाशित होता है कि राजगृह (मगध) का वाणिज्य-व्यापार काफी समुन्नत था। इसका व्यावसायिक अस्तित्व सुदृढ़ एवं सुसंचालित था। देश और देश के बाहर इसके व्यापार चलते थे। ये राजगृह की अपार समृद्धि के द्योतक हैं। मगध में उत्पादित मूल्यवान रेशम (रेशमी वस्त्र), मलमल (मलमली वस्त्र), आभूषण, हाथी दाँत के बने उपकरण, कालीन एवं शस्त्रादि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निर्यात किये जाते थे। यह व्यापार चीन, श्रीलंका, भूटान, बर्मा, नेपाल, सुदूर पूर्व मलेशियां एवं जापान के साथ होता था।

वाहन-साधन

जातक-कथाओं से ज्ञात होता है कि माल ढोने के काम में बैलगाड़ी, भैंसागाड़ी का प्रयोग होता था। एक-एक बार में 500 से 1000 (पाँच सौ से एक हजार) गाड़ियाँ साथ निकलती थीं, जिन पर माल-असबाब लदे रहते थे। व्यापारी साथ चलते थे। इस संबंध में एक छोटी कहानी चलती है। राजगृह की यात्रा के क्रम में भगवान् बुद्ध की बेलथा नामक एक व्यापारी से भेंट हो गई, जो 500 (पाँच सौ) गाड़ियों पर चीनी लादकर लिये जा रहा था। उन दिनों मगध में नमक का बहुत अभाव हो गया था। मगधवासी नमक की खोज में दूर-दूर तक जाया करते

थे। उन दिनों अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चुंगी का प्रचलन था। व्यापारी चुंगी देकर ही सीमा पार जाता या सीमा क्षेत्र में आकर सामान बेचता था। समुद्दवणिक जातक, वलाहस्सक जातक, छप्परक जातक एवं महाजनक से तत्कालीन व्यापारिक गतिविधियों की वृहत् जानकारी मिलती है। शंख जातक में उल्लेख मिलता है कि एक ब्राह्मण व्यापारी ने नौका पर विक्रय की सामग्री लादकर स्वर्णभूमि (बर्मा और स्याम) की व्यापारिक यात्रा की थी।[8] महाउमग्ग जातक ज्ञापित करता है कि मगध में तब लगभग 300 जहाज निर्मित किये जा चुके थे।

मार्ग साधन

तत्कालीन व्यापारिक मार्ग राजगृह-कलिंग मार्ग से विख्यात था। यह मार्ग बोधगया होकर उड़ीसा तक जाता था। गमनागमन की दृष्टि से अत्यंत व्यस्त मार्ग 'राजगृह-पुष्कलावती' था, जो तक्षशिला (पंजाब) से गुजरता था। इसी मार्ग से श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन के साथ राजगृह आये थे। इनके अतिरिक्त और दो मार्ग 'राजगृह-सिंधु' एवं कांतरापथ नामित प्रसिद्ध 'राजगृह प्रतिष्ठान' थे, जो कई प्रदेशों को पार करते आगे जाते थे। राजगृह से भरुकच्छ तक जाने वाला कारवां इसका उपयोग करता था। राजगृह-बेबरू जातक इंगित करता है कि उस समय बेबीलोन से भी इसका व्यापार होता था। राजगृह और सिंधु-मार्ग के मध्य रेगिस्तान और जंगल मिलते थे। जो कारवां इस मार्ग से चलता था, वह रात में तारे एवं थल नियामक मार्गदर्शक का सहारा दिशा-निर्देशन के लिए लेता था। व्यवसायियों को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। मार्ग में पड़ने वाले प्रायः सभी जनपदों के राज्याध्यक्षों से उन्हें संरक्षण मिलते थे। यह व्यवस्था जनपदों के आपसी तालमेल एवं संबंधों पर आधारित थी। प्रत्येक जनपदों में व्यापारियों के ठहरने के लिए पड़ाव और सराय थे। उनमें रात्रि-विश्राम की सुविधा थी। इसका कारण यह भी है कि व्यापारियों के लिए उपर्युक्त व्यवस्थाओं से कर मिलता था। कर से प्राप्त होने वाली आय संबंधित राज्य के कोष में जाती थी।

विनिमय साधन

इसके पूर्व वस्तुओं का विनिमय होता था, किंतु वस्तु विनिमय की जगह सिक्के का विनिमय प्रारंभ हुआ। खुदाई से चांदी के सिक्के प्राप्त हुए हैं, जो प्रमाणित

8. शंख जातक, 4, 22.

करते हैं कि विनिमय का साधन वस्तु न होकर सिक्का हो चुका था। तांबे के कार्षापण के रूप में 146 ग्रेन वजन के सिक्के प्रचलन में थे। ताम्र-सिक्के के छोटे आकार भी थे अर्थात् लघु (छोटे) आकार के ताम्र-सिक्कों के प्रचलन से व्यापारियों को वस्तु विनिमय में काफी सुविधा प्राप्त हुई। इन सिक्कों का एक प्रभाव यह भी हुआ कि व्यापारियों को इच्छानुसार व्यापार करके धन कमाने में सहूलियत हुई। क्रय-विक्रय में ये सिक्के सुविधापरक सिद्ध हुए। कार्य सुगमता से होने लगा। खुदाई से प्राप्त धातु के सिक्के बुद्ध-काल के हैं। इस काल के सिक्कों पर हाथी, वृक्ष, मछली, सांड़ (बैल) एवं अर्द्धचन्द्र की आकृतियां मुद्रित हैं; फलतः इन सिक्कों को 'पंच-मार्क आहत मुद्रा' भी कहा जाता है। इस तरह की मुद्रा राजगृह में प्रचलित थी। पालि ग्रंथों से मालूम होता है कि विभिन्न विनिमय एवं वेतनादि के भुगतान सिक्कों के माध्यम से होते थे। यह भी उल्लेख मिलता है कि एक मृत चूहे के प्रतिदेय के रूप में सिक्का ही दिया गया था। अतः पूर्णतः प्रमाणित है कि इस राजगृह में बुद्धकाल में बखूबी सिक्के का आदान-प्रदान विनिमय के रूप में लोग करते थे।

वृत्तिगत वैशिष्ट्य

जातक प्रमाण प्रस्तुत करता है कि उस काल में अनेक शिल्प-कर्म प्रचलित थे। शिल्पकार का कला-वैशिष्ट्य सराहनीय था। शिल्पी सुविधानुसार व्यापार करते थे एवं व्यापारिक परिवर्तनों की छूटें (सुविधाएं) भी उन्हें प्राप्त थीं। व्यवसाय की वृत्ति वंशानुगत थी। एक नई प्रवृत्ति का विकास हो रहा था, वह यह कि पेशा के अनुसार लोग एक मंच अर्थात् संघ में संगठित हो रहे थे। शिल्पकारों एवं पेशेवरों को राजकीय संरक्षण एवं सुविधा प्राप्त थी। परिणामतः ये लोग राजतंत्र के समर्थक थे। यह वही युग है जिसमें 'गृहपति' एवं 'श्रेष्ठी' शब्दों के प्रयोग सम्मानबोध के लिए होने लगे थे। गृहपति एवं श्रेष्ठी दोनों को समाज पदाधिकारी मानता था। राजदरबार में भी इनका सम्मान होता था। यह एक ऐसा नया वर्ग था जिसके अभ्युदय के साथ ही समाज में आर्थिक विषमता का भी उदय हुआ। वैयक्तिक पूंजी विषमता की जननी है। यह पूंजीवाद सामाजिक संबंधों के लिए संघारक सिद्ध हुआ।

सामान्य लोगों की हालत संतोषप्रद नहीं थी। समरस समाज की स्थापना में पूंजीवाद विद्रोह करता है। बौद्ध धर्म के प्रति सामान्य लोगों में निष्ठा एवं आस्था थी। इसके आकर्षण-पूर्ण अस्तित्व को स्वीकारना चाहिए, किंतु कुछ लोग इसे काल्पनिक की

कल्पना कहकर हेय सिद्ध करते हैं, जो वास्तव में सत्य-मुक्त विचार है। विभिन्न धर्मावलंबी पक्ष एवं विपक्ष में तर्कों का अवलम्ब लेकर विचाराभिव्यक्ति करते हैं, पर वे भूल जाते हैं कि जिन दिनों राजगृह की धरती पर धूमधाम से बौद्ध धर्म का उद्घोष प्रचारार्थ किया जा रहा था, उन दिनों जन समुदाय उमड़ पड़ा था एवं आम जनता का समर्थनपूर्ण झुकाव इस धर्म के प्रति देखा गया। जनमत से समर्थित इस भावना की कद्र करनी चाहिए, केवल निराधारीय टिप्पणी से सत्य को सहारा नहीं मिलता और यह वांछनीय भी नहीं है। आज भी बौद्ध धर्म समाप्त नहीं हुआ है। माना कि, वह क्षीणकाय है, पर उसकी अस्मिता विद्यमान है। धर्म, जाति और अर्थ के नाम पर संभव है, तब भी जनता का शोषण किया गया होगा तथा उसे सताया भी गया होगा, इसके प्रमाण ढूंढ़ने पर उपलब्ध हो सकते हैं, किंतु इस पुस्तक के लेखक का उद्देश्य उसका उल्लेख नहीं और न वृहदाकार ग्रंथ का प्रणयन है। अत: यह बात वहीं खत्म की जाती है।

उस काल में लोग गरीबी, अभाव एवं विषमता के आलम में जी रहे थे। वर्ण एवं वर्ग में समाज विभाजित था। निम्नवर्गीय एवं स्तरीय लोगों को अनादृत होना पड़ता था, इस तथ्य को मानना ही पड़ेगा। एक निम्नांकित अनुच्छेद ऊपर के विचार के समर्थन में उद्धृत किया जाता है :—

"बुद्ध काल में जो आर्थिक विकास हुआ, उससे भौतिक उत्थान का एक युग अवतीर्ण हुआ। किंतु उससे होने वाली समृद्धि धनवानों के हाथों में ही जमा हो गई। धनियों के पास जहां अस्सी कोटि थे, वहां मजदूर दिन भर में एक मासा या आधा भी कदाचित ही कमा पाता था जिससे अपना और अपनी माता का भरण पोषण कर सके। जहां भू-स्वामी के पास करीब एक हजार करीष खेत एवं पांच सौ हल थे, वहां स्वतंत्र मजदूर की हालत दासों से भी बदतर थी।"[9]

शोषण चक्र इस काल में चल रहा था। शिल्पियों, कर्मकारों एवं मजदूरों तथा दासों के श्रमों के शोषण होते थे। उन्हें जीने भर का पारिश्रमिक भी प्राप्त नहीं होता था कि वे कम-से-कम अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। राजे, महाराजे, श्रेष्ठी, सामन्त, धर्म के ठेकेदार खुशहाल थे तथा इनके द्वारा गरीबों का निर्विरोध शोषण किया जा रहा था।

इसमें कोई दो मत नहीं कि बौद्ध-धर्म अपने आप में समन्वयवादी है, किंतु सामाजिक न्याय की दृष्टि से एक प्रतिकूलता परिलक्षित होने लगी थी। वणिक

9. जातक, पृ. 276.

एवं श्रेष्ठियों के वर्ग बौद्ध धर्म के प्रबल पक्षधर होकर उभर रहे थे, जबकि ब्राह्मण स्व-धर्म से विलग होकर अनेक निम्नस्तरीय प्रतिकूल आचरण में लिप्त थे''[10] ब्राह्मण वर्ग जो उच्च समुन्नत माना जाता था, वही आचरणहीन व्यवसायों एवं कार्यों के प्रति अनुरक्त होने लगा था। यह बताता है कि आर्थिक व्यवस्था चरमरा चुकी थी और इसी कारण अव्यवस्था भी उत्पन्न हो रही थी।

दासों के अतिशय शोषण को देखकर लोग संत्रस्त हो रहे थे। इस अवस्था को देखकर भगवान् बुद्ध को भी अपने शिष्यों को निर्देशित करना पड़ता था कि वे असह्य सीमा तक उत्पीड़न, अनीति न बढ़ने दें, उसे रोकें।

यद्यपि जैन एवं बौद्ध दोनों सुधारवादी धर्म थे, किंतु इनके भी कुछ आलोच्य विंदु हैं। इन धर्मों में प्रवेश लेने के पूर्व यह देखा जाता था कि प्रविष्ट होने वाला व्यक्ति दास अथवा कर्जदार तो नहीं है। इनके लिए प्रवेश वर्जित था। क्या उस प्रावधान को शोषण का संविधान कहा जाय? उन दिनों स्थिति यहां तक पहुंच चुकी थी कि वस्तु की भांति दास दान में दिये जाते थे। दानग्राही ऐसे दासों एवं सेवकों से भिक्षाटन कराते थे।[11] विशेष अवसर पर राजे देहात के लोगों से बेगार लिया करते थे।[12] यह अत्याचार की पराकाष्ठा थी।[13]

गरीबों पर विपत्ति का पहाड़ टूटता दीखता था। इसकी पुष्टि ''दीघ निकाय' करता है। वहां उल्लेख है कि राजा अपने पुत्र से कहता है कि वह प्रजा के बीच कार्य और धन का ऐसा वितरण करे कि उसकी गरीबी दूर हो, प्रजा खुशहाल हो।

एक दृष्टि इस विंदु पर वांछित है कि क्या भगवान बुद्ध भी शोषितों को शोषकों से मुक्त नहीं करा सके!

जैन एवं बौद्ध धर्म जब राज्याधीन होकर कुंठाग्रस्त हो गये तब वे सामान्य लोगों से दूर जाकर मात्र श्रेष्ठियों के लिए रक्षा-कवच बन कर रह गये। दूसरी दिशा में मुड़कर जब धर्म नागर लोगों की विनोद-लीला का साधन बन जाता है, तब वह अपने मौलिक सिद्धांतों से निश्चय ही डिग जाता है। इसके लिए उस धर्म का प्रवर्त्तक जिम्मेवार नहीं होता, जिम्मेवार होते हैं उनके सूत्रधार और नियामक और जिनकी धूर्तता धर्म पर कालिख पोतने का काम करती हैं। ऐसी स्थिति में आम जनता धर्म की चक्की में रोदन का राग भरती है। उसका कष्ट बढ़ जाता

10. जातक, खण्ड 471, 127.
11. जातक, III – 49.
12. जातक, I – 331.
13. जातक, II – 240.

है। ऊपर से यह बात लक्षित नहीं होती, पर भीतर ही भीतर आग और धुआं दोनों धधकते-दहकते रहते हैं। जनता की पीड़ा विकृत धर्म की साधना में बहुत बढ़ जाती है। मानवीय करुणा पर आधारित बौद्ध धर्म भी विकृति का शिकार हो गया। आततायियों ने इसका दमन किया। इसमें विकृति भर गई। इन बातों के उल्लेख जातक कथाओं में उपलब्ध हैं। बुद्धकालीन समाज के चित्रांकन में बौद्ध धर्म के इस विकृत स्वरूप का चित्रांकन अनिवार्य है, इसके बिना तत्कालीन समाज का सही परिदर्शन संभव नहीं। युग के फलक के धूप-छांही रंग का अवलोकन भी अनिवार्य है।

धार्मिक अवस्था

तत्कालीन समाज भौतिक साधनों के प्रति अधिक उन्मुख हो गया था। धर्म धूमिल हो चला था। लोग जीवन में उसकी अनिवार्यता महसूस नहीं करते थे। तब वैदिक धर्म बाह्याडंबरों से पूरित था। कर्मकांडी अपना प्रभुत्व जमा चुके थे। लोग ,अंध-विश्वास, जादू-टोना एवं भूत-प्रेत के निराधारीय प्रभाव में आकर दिशाहीन हो गये थे। आध्यात्मिक उपासना एवं पूजा-पाठ से दूर जाकर लोग सुख एवं समृद्धि की प्राप्ति के लिए विह्वल थे। यज्ञों में यजमानों से कर्मकांडी पशुबलि कराते थे। वैदिक धर्म का यह विकृत स्वरूप था। ऐसे यज्ञ को मानव-मुक्ति का मार्ग कहा जाता था। पशु-मांस से यज्ञ में हवन किया जाता था, जिसे 'पुरोडास' कहते हैं। वे कर्मकांडी व्याख्या देते थे कि यज्ञ की वेदी पर हवन में पशु-मांस के प्रयोग से मांस के जलने के साथ पापात्मा की पाप-राशि भी जल जाती है। 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' का उद्घोष दिशाओं में गूंज रहा था। यज्ञ एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में गाय, बछड़े, भेड़, बाछी एवं अन्य पशुओं की बलि प्रथा इतनी घनीभूत हो गई कि लोग महसूस करने लगे कि किसी के प्राण कभी भी संकट में पड़ सकते हैं।[14]

बुद्ध ने भ्रमण के क्रम में देखा कि 'कूटदंत' के यहां बलि के लिए एक सौ बैल, छः सौ बछड़े, छः सौ बकरियां एवं छह सौ भेंड़ स्तम्भ (खूंटे) में बंधे थे। ये पशु बलि-प्रतिक्षा-रत थे।[15] निरीह, दुर्बल की रक्षा के लिए कौन खड़ा था? तभी तो उस समय यह कहावत चरितार्थ हुई कि 'दैवो दुर्बल घातकः'।

---

14. दीघ निकाय, 1.5 (कूटदन्त सुत).
15. — वही, 1, 5.

काश्यप-बन्धुओं के अग्नि-होत्र-कर्म ने यज्ञ का रूप धारण कर लिया। इसके लिए मगध के अतिरिक्त अंग प्रदेश से भी लोग बहँगी पर हवन एवं भोजन की सामग्री लेकर जाते थे।[16] अन्धविश्वास के प्रभुत्व में लोग वैचारिक मूढ़ता के कारण वृक्षों की पूजा करने लगे थे। प्रसिद्ध नारी सुजाता की एक कहानी प्रचलित हैं। उसने अपने गांव में एक वट-वृक्ष से मनौती मांगी। वट-वृक्ष से कहा: — 'हे वट-वृक्ष! यदि मेरे प्रथम गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ तो मैं एक लाख की लागत से विशेष प्रकार का पायस तैयार कर तुझे भेंट करूंगी। उसकी मनोकामना पूर्ण हुई तथा उसने मनौती के अनुसार पायस अर्पित किया।[17] मोक्ष की प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या करने का प्रचलन भी था। इस कठोर तप में पंचाग्नि-सेवन, मासिक उपवास तथा एक पैर पर खड़ा होकर तपस्या-रत रहने की विधि प्रचलित हुई।

कठोर तपस्या की उपलब्धि के रूप में यह कहा जाने लगा कि उससे तपस्वी विश्व-विजेता हो सकता है। महात्मा बुद्ध भी एक बार इस चक्कर में पड़ गये थे। उन्होंने अपने शिष्य सारिपुत्त को इसका अनुभव सुनाया। मुण्डेश्वरी पर्वत पर घटी इस घटना का बखान बुद्ध ने इस प्रकार किया — ''मैं उस कठिन तपश्चर्या में इस प्रकार लिप्त हुआ कि शरीर पर के सारे वस्त्र उतार फेंके। मैं बिल्कुल नंगा रहने लगा। बाद में जले अन्न एवं गोबर मेरे आहार हो गये। पटुआ, मृग-चर्म, टाट आदि के बने कम्बल मैंने वस्त्र के रूप में स्वीकार किया। मैं दाढ़ी और मूंछ के बाल को नोच देता था। उकड़ूँ बैठकर तपस्या करता तथा कांटों पर सो जाता था। ये सब मेरी तपस्या की ही पद्धति थी। हे सारिपुत्त! मेरी अवस्था ऐसी हो गयी कि मैं उठ बैठ नहीं सकता था। उठने का प्रयास करने पर बार-बार गिर जाता था। मेरे मल-मूत्र बिल्कुल बंद हो गये। फिर भी इन सारी तपस्याओं से कुछ भी लाभ नहीं हुआ।[18]

यह वही काल है जब उपनिषदीय चिंतन आरंभ हुआ। उपनिषद् कर्म से अधिक ज्ञान को प्रधानता देती है। पुनर्जन्म, आत्मा, परमात्मा एवं अन्य गूढ़ विषयों के चिन्तन-पूर्ण रहस्यों के उल्लेख उपनिषदों में विद्यमान हैं।

एक बात उल्लेखनीय है कि इस जड़ता एवं संक्रमण की कोख से ही विरोध जन्मा, किंतु इसकी गति मंथर थी। यज्ञ में होने वाले पशु-संहार से लोग क्रुद्ध थे, क्योंकि पशुओं का संबंध कृषि एवं व्यवसाय से था और उनके संहार

16. महावग्गो, 1, 3, 1, 15.
17. जातक निदान कथा, अनु. भदन्त आनंद कौशल्लायन, पृ. 89.
18. मज्झिम निकाय, सिंहनाद सुतन्त.

का कुप्रभाव इन पर पड़ रहा था। संहार के फलस्वरूप पशुधन समाप्त होने पर था। फलत: जीव-हत्या को धर्म-विरोधी कार्य माना जाने लगा। समाज में परिव्याप्त हिंसा के इस आलम से भावुक द्रवित हो उठे, उनके हृदय उच्छ्वासों एवं आहों से भर गये। एक अहिंसक, अर्हत धर्मोपदेशक की आवश्यकता समाज को महसूस होने लगी। यह स्थिति सुधार के बीज सदृश थी। हिंसा के विरोध में अनेक सम्प्रदाय जगे, उठे एवं खड़े हो गये, इनमें — आजीविक, निग्रंथ, मुण्डशावक, परिव्राजक, जटिलक, वेदान्तिक, गौतमक, जैन एवं बौद्ध प्रमुख हैं।

बौद्ध ग्रंथ मज्झिम निकाय से राजगृह तथा उसके आसपास में प्रचलित छह शास्ताओं[19] अर्थात् छह सम्प्रदायों के उल्लेख मिलते हैं। इन सम्प्रदायों के नाम हैं— अजितकेश कम्बल, संजयबेलट्ठिपुत्त, पकुधकात्यायन पुरण कस्सप, मक्खलि गोसाल तथा निग्गंठनाथपुत्त। इनका परिचय इस प्रकार है:—

(1) **अजितकेशकम्बल** :— वह उच्छेदवाद नामक भौतिक दर्शन का प्रचारक था। इसका प्रभाव लोकायत (विश्वव्यापी) दर्शन पर पड़ा। उसेने याज्ञिक दान तथा कर्मकाण्ड का विरोध किया था। वह अनात्मवादी था। वह ईश्वर और आत्मा को नहीं मानता था; तपस्या, अग्निहोत्र एवं वेद विरोधी था।[20] वत्स सम्राट उदयन इसेका अनुयायी था।[21]

(2) **संजयबेलट्ठिपुत्त** :— वह विक्षेपवादी था एवं परलोक के संबंध में उसकी धारणा अस्पष्ट थी।

(3) **पकुध कात्यायन** :— इसने कहा कि पृथ्वी, पानी, पवन और प्रकाश की भांति सुख, दुख एवं जीवन सभी नाशवान हैं। वैशेषिक दर्शन के विकास में इस विचार की अहम भूमिका मानी जाती है।

(4) **पुरण कस्सप** :— इसने शरीर और आत्मा दोनों के अलग अस्तिव को स्वीकारा है। इसके अनुसार शरीर और आत्मा दोनों दो हैं, एक नहीं। सांख्य दर्शन इसी का विस्तृत रूप प्रकट करता है। एक विलक्षण बात यह है कि अवन्ती का राजा चंडप्रद्योत इसी संप्रदाय का अनुयायी था।[22]

(5) **मक्खलि गोसाल** :— इसने आजीविक सम्प्रदाय चलाया था। इसका यह

---

19. मज्झिम निकाय, 1, 3, 10.
20. अग्निहोत्र त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
    बुद्धि पौरुषहीनानां जीविका धातृ, निर्मिता — सर्वदर्शन संग्रह।
21. ललित विस्तर, अध्याय-1.
22. — वही, अध्याय-1.

जनक था। राजगृह में इस सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव था। इस सम्प्रदाय की विशेषता यह है कि इसके लोग नियतिवादी होते थे, फलत: उनकी क्रियाशीलता शिथिल हो जाती थी। नियति एक सर्वव्यापी देव के रूप में सर्वमान्य थी।[23]

निग्गंठनाथ पुत्त (महावीर) की चर्चा आगे सविस्तार की गई है।

छठी शताब्दी ई. पू. का काल वस्तुत: सुधारवादी आंदोलन का काल था। इस कालावधि में सुधार के बहुआयामी रूप प्रत्यक्षत: प्रकट हुए। विश्व में अनेक स्थलों पर इसके प्रभाव एवं रूप दृष्टिगत होते दीखते हैं। चीन में इस समय में कनफ्यूशियस एवं लाओत्से तुंग तथा फारस में जरथ्रुष्ट हुए थे, जिनके माध्यम से सुधार के सिद्धांत आये और फैले।

बुद्ध के पहले से ही राजगृह की धार्मिक प्रतिष्ठा परिव्याप्त थी। यह स्थल बुद्ध-युग के पूर्व से ही ऋषियों, साधकों, तपस्वियों, धर्मगुरुओं एवं तीर्थंकरों का पावन-पवित्र स्थल था, जहां वे साधक साधना करते थे। वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का लगाव भी इस भूमि से था। महाभारत यह बताता है कि ऋषि गौतम का आश्रम राजगृह में था और यह स्थल उनकी ज्ञान-गरिमा से ऐतिहासिक एवं गौरवान्वित हुआ। जैन धर्म के अनेक तीर्थकरों के लिए इसकी भूमि आकर्षणमयी एवं पुण्या सिद्ध हुई थी। बुद्ध-युग में वैदिक कर्मकांड एवं कर्मकांडियों के विरोधी सम्प्रदायों एवं चिन्तकों से यह स्थल भरा हुआ था।

मगध (राजगृह) में राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी। राजतंत्रीय व्यवस्था में राज-धर्म ही प्रजा-धर्म होता है। बुद्ध-युग में मगध के राजा बिम्बिसार ने बौद्ध धर्म राज-धर्म बन गया था। राजगृह के प्रागंण में अनेक सम्प्रदायों के उपदेशक अपनी ज्ञानाभा बिखेर रहे थे।

किंतु जहां गणतंत्रात्मक व्यवस्था थी, वहां श्रद्धा के ऊपर (मस्तक पर) तर्क समासीन था, श्रद्धा गौण थी और तर्क जाहिर तथा मुखर हो चला था। हर समस्या के निदान में तर्क का सहयोग लिया जाता था। हर बात की पहचान तर्क से की जाती थी। इसी काल में यह उल्लेख मिलता है कि शाक्य तत्कालीन ब्राह्मणों को उचित-उपयुक्त स्थान समाज में नहीं देते थे।[24]

वैशाली के लोगों ने विनयधरों का विरोध करते हुए तथागत के वचनों को मानने

---

23. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 6. 11.
24. दीघनिकाय, (अम्बट्टसुत्त)

से इन्कार किया था।[25] यही कारण था कि बौद्ध धर्म की द्वितीय संगीति वैशाली में हुई थी। और उसी संगीति में यह धर्म विभाजित भी हो गया।

कुछ ऐसे पुराण हैं (जैसे शिवपुराण, ब्रह्मपुराण आदि) जिनसे ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के बीच श्रेष्ठता का संघर्ष बहुत दिनों से चला आ रहा था, पर क्षत्रिय, ब्राह्मणों की सामाजिक श्रेष्ठता नहीं प्राप्त कर सके। अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करने तथा वर्चस्व को रूपायित करने हेतु इन क्षत्रियों ने उन स्थानों का चयन किया जो स्थान ब्राह्मण बहुल नहीं थे। ऐसे स्थानों में अंग एवं मगध हैं, जिन्हें ब्राह्मण-वर्ग पवित्र एवं निवास योग्य नहीं मानता था। ज्ञान शून्य इन स्थानों के लोगों पर क्षत्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा कायम हो सकती थी। यहां इन स्थानों में आकर, बसकर क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड, यज्ञ आदि के विरोध किये। उन्होंने इन अनुष्ठानों की जगह पर ज्ञान, तपस्या एवं साधना को बिठाया और इन स्थानों के लोगों ने उसको सहर्ष स्वीकारा। इन जगहों पर ब्राहमणों का वर्चस्व नहीं हुआ, इसका प्रमुख कारण यही था।

बुद्ध-युग से पूर्व की सामाजिक स्थिति के अध्ययन से जाहिर है कि उन दिनों सामंती एवं सनातनधर्मी प्रथा का विकास जोरों पर था। यह भी ज्ञात होता है कि उस समय सांस्कृतिक विरासत पर ब्राहमणों का एकाधिकार था। किंतु राज्य शक्ति-शासन पर क्षत्रिय हावी थे। यह एक सामान्य अनुभव और विचार की बात है कि एक क्षेत्र में प्रवीणता हासिल करने वाला आदमी दूसरे क्षेत्र में भी प्रवीणता हासिल कर अपने को श्रेष्ठ साबित करना चाहता है। सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित ब्राहमणों की भांति सुसंस्कृत एवं प्रतिष्ठित होने की लालसा क्षत्रियों में जग चुकी थी। वे राज्य शक्ति के साथ ब्राह्मणवादी प्रतिष्ठा पाने के लिए आकुल थे। संस्कृति के क्षेत्र में धाक जमाने की उन्होंने पूरी कोशिश की। फलतः दोनों वर्णों (ब्राह्मण एवं क्षत्रिय) में प्रभुत्व की लड़ाई प्रारंभ हो गई। इस वर्ण-संघर्ष ने स्पर्द्धा को जन्म दिया और तक ब्राहमण राज्य-शक्ति-शासन पाने के लिए अपने बाहुबल का प्रयोग करने पर अडिग हो गये। इसके लिये वे अपनी ब्रह्म शक्ति की आजमाइश भी करने लगे। प्राचीन काल की अनेक घटनाएँ इस ऐतिहासिक सत्य का साक्ष्य भरती हैं। पुराण में वर्णित वशिष्ठ-विश्वामित्र-संग्राम इसी का उदाहरण और प्रतीक है। इस संबंध में ब्रह्म पुराण का विशेष अध्ययन किया जा सकता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में यह वर्णन है कि परशुराम और क्षत्रियों के बीच गहन संघर्ष

---

25. **बौद्धधर्म और बिहार,** हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' पृ. 29.

हुये थे।[26] परशुराम ने क्षत्रियों को समूल विनष्ट करने का संकल्प लिया था। यह भी ब्राह्मण-क्षत्रिय-वर्चस्व की लड़ाई ही है। शिव पुराण में[27] उल्लेख मिलता है कि दधीचि और सुवथु राजा के बीच भी संग्राम हुआ था। वहाँ यह भी उल्लेख मिलता है कि भगवान् विष्णु स्वयं युद्ध में उस क्षत्रिय राजा की ओर से लड़ने आये थे, किन्तु उन्हें पराजित होना पड़ा था। इन घटनाओं के संदर्भों के अनुशीलन, परिशीलन से ज्ञात होता है कि महात्मा बुद्ध के समय में इन दोनों उच्च जातियों (ब्राह्मण एवं क्षत्रिय) के बीच श्रेष्ठता का गहन संग्राम चल रहा था। फलतः क्षत्रियों के लिये अनिवार्य हो गया था कि वे सांस्कृतिक सबलता प्राप्त करें। सबके बावजूद क्षत्रिय सनातन धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों को पराजित नहीं कर सके। अतः बुद्ध ने एक अलग पंथ का निर्माण कर दिया जो कालक्रम से विश्व-विख्यात, बौद्ध-धर्म घोषित होकर देश-विदेश की सीमा को लाँघता, फैलता गया।

राजगृह के पर्वतांचल में शासन से संरक्षित अनेक तपस्वी एवं साधक क्रमशः तपश्चर्या तथा साधना में तल्लीन थे। 'आराद कलाम' और 'उधक रामपुत्त' के आश्रम भी मगध में अवस्थित थे। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'बुद्धचर्या' में बताया है कि ये आश्रम राजगृह और गया के बीच अवस्थित थे। विश्वविख्यात् विद्वान् होई की मान्यता है कि 'आरा' शहर का नाम 'आराद' के आधार पर ही पड़ा है, आराद से आरा निकला है। उनका यह भी कहना है कि वर्तमान आरा में ही 'आराद कलाम' का आश्रम था।[28] एक जैन अभिलेख से भी आरा का पहला नाम 'आराम' जाहिर होता है।[29] आराद कलाम के शिष्य भरण्डु कलाम ने कपिलवस्तु में बुद्ध को सन्यास एवं समाधि की दीक्षा दी थी।[30] तभी उन्होंने वहीं सन्यास ग्रहण करने का संकल्प लिया था। आराद कलाम के दर्शन का आंशिक परिज्ञान सिद्धार्थ ने भरण्डु के आश्रम में प्राप्त किया था और शेष तथा पूर्ण ज्ञान उन्होंने राजगृह से गया जाने के रास्ते में आराद कलाम तथा उधालक पुत्र रुद्रक के आश्रम में रुक-ठहरकर प्राप्त कर लिया।[31]

---

26. ब्रह्मवैवर्त पुराण-गणपतिखंड अध्याय 40.
27. शिव महापुराण, अध्याय 38–39.
28. जर्नल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, भाग-69, पृ. 77.
29. ऑर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग 3, पृ. 70.
30. अंगुत्तर निकाय, पृ. 3, 3, 3, 4.
31. भगवान् गौतम बुद्ध, भदन्त बोधानंद महास्थविर, पृ. 28.

भाषा और साहित्य

इस काल में संस्कृत एवं प्राकृत इन दो भाषाओं के प्रयोग ही प्रचलित थे। ऐसे लोक भाषा तो हर युग की भाँति इस युग में भी प्रचलित थी जिसे क्षेत्रीय भाषा भी कहते हैं। उसे ही बोली की संज्ञा दी जाती है। संस्कृत के अतिरिक्त मूलत: प्राकृत में ग्रंथों के प्रणयन किये जाते थे। इन ग्रंथों में 'विनयपिटक' तृतीय-76, चतुर्थ-305 एवं पंचम प्रसिद्ध है। यों फुटकल साहित्य भी प्राकृत में रचे गये होंगे किंतु वे अप्राप्त हैं।

कला

कला के विकास की दृष्टि से यह काल कम विख्यात नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापत्य, काष्ठ, चित्र, माला, नागदंत, प्रस्तर आदि कलायें विकसित थीं। ये मगध की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा रही थीं। स्थापत्य कला में लकड़ियों के प्रयोग होते थे। धनियों के नवनिर्मित भवनों में चित्र अंकित रहते थे। दीवारों पर चित्रकारी की जाती थी, किंतु साधारण और गरीब लोगों के भवन बिल्कुल सादे होते थे। विनय पिटक में मालाकारी, लताकारी, पंचसूत्रकारी तथा नागदंतकारी के प्रयोग की चर्चा है।

राजगृह के भग्नावशेषों की दीवारों में बड़े-बड़े सुसज्जित पत्थर प्राप्त हुए हैं। दुर्ग के चतुर्दिक दीवारें खड़ी थीं। यों पालि साहित्य के अध्ययन से ज्ञात है कि तब राजगृह में सात मंजिल के महल भी थे, किंतु अब तक की खुदाइयों से उनकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं हुई है।

खुदाई में छठी शताब्दी ई. पू. के उत्तरीकृष्णमार्जित मृद्भाण्ड के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। ये बर्तन काफी चिकने और चमकीले होते थे। इनकी बनावट उत्कृष्ट थी। समाज के सम्पन्न लोग इसका उपयोग करते थे।

खुदाई में लोहे के औजार भी मिले हैं। मगधवासी लोहे के औजार निर्मित करते थे, जिनका उपयोग कृषि कार्य में होता था। मगधवासियों का शिल्प सुविकसित था। हल में लोहे के फाल का उपयोग होता था। इस काल में लोहे से चाकू, हँसिये, एवं कुल्हाड़ी भी उपयोग के लिये निर्मित किये जाते थे।

ललित कला का विकास भी इस कालावधि में कम नहीं हुआ था। गीत-नृत्य एवं वाद्य आदि ललित कलायें विकसित थीं। राजगृह अर्थात् मगध इन कलाओं में अभिरुचि दर्शाता था।

चिकित्सा

बौद्ध साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि चिकित्सा के क्षेत्र में भी मगध काफी आगे था। इस क्षेत्र में भी राजगृह (मगध) की काफी उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं। प्राचीन पद्धतियों के अनुसार मगध की धरती पर जड़ीबूटी, तेल, घी, लवण, हींग, छाल, फल एवं आँवला से अनेक औषधियाँ निर्मित होती थीं। मात्र औषधि की दिशा में ही मगध आगे नहीं बढ़ रहा था, बल्कि शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भी उसके विकास के प्रमाण उपलब्ध हैं।

षष्ठम् अध्याय

राजगृह और वर्द्धमान महावीर

इस असार अनित्य संसार में असंख्य लोग जन्म लेते और अन्ततः जीवन को भोगकर काल के गाल में चले जाते हैं, किन्तु विडम्बना यह है कि प्रकृति से समान आशीर्वाद प्राप्त कर आने वाला आदमी यहाँ आते ही विविध राग-रंगों से रंजित हो जाता है। कोई असीम भौतिक साधनों से परिपूर्ण होकर लक्ष्मीपुत्र कहलाता और सुखमय जीवन जीता है, तो कोई दाने-दाने के लिए विलखता आँसू के तारों में व्यथा के मोती गूंथता है, कोई मौज और मस्ती में पुरवाई की लहर रेशमी रजाई में सोकर लेता है, तो कोई पंचाग्नि में तपकर साधना और सिद्धि से अपने व्यक्तित्व को अभिभूत कर स्वयंसिद्ध हो जाता है और विश्व को त्रिविध ताप से मुक्ति दिलाता है। यह विविधता धरती और प्रलय की गाथा के साथ जन्मी और तब से आज तक पलती रही है। उत्थान और पतन, उन्नयन और अवसान, प्रकाश और अंधकार तथा सूर्योदय एवं सूर्यास्त की कुहरी पट-परिवर्तन के साथ जीवन क्षितिज पर इसी प्रकार आती और हटती रही है।

जैनाचार्यों, तीर्थंकरों की परम्परा यह बतलाती है कि लोक-जीवन में परिव्याप्त क्लेश के शमन के हेतु वे श्रम साधते और सिद्धि प्राप्त कर उपदेश देते थे। ऐसे जैनाचार्यों तीर्थंकरों में श्रमदेव, पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत नाथ तथा महावीर के नाम है, जिन्होंने अपनी श्रम-साधना और सिद्धि के संबल से लोक-जीवन की व्यथा को निर्मूल करने के लिए अथक् प्रयास किये। मानव और उसके समाज को सुधारने के लिए इन तीर्थंकरों ने जो उपदेश दिये, उनकी वाणी की प्रतिध्वनि आज भी मानवाकाश में गूंज रही है। उससे आज भी मनुष्य का दिशा-निर्देशन हो रहा है और करुणा की ज्योति फूट रही है। निर्ग्रन्थ नाथ पुत्र भगवान् महावीर पार्श्वनाथ परम्परा से तत्वाज्ञान प्राप्त कर चुके थे, परंतु मात्र उस तत्वज्ञान को प्रचारित नहीं करना चाहते थे। तत्वज्ञान को जीवन की कसौटी पर कसकर वे स्वयं अहिंसक बन गये थे, अहिंसा उनकी साधना की प्रमुख कड़ी में जुड़ी थी। ऋषभदेव के बाद के तेईस तीर्थंकर वीतरागी और सर्वज्ञ थे। तिमिर-ग्रस्त मानव-जीवन को

प्रकाशित, दीपित करने के लिए वे अहिंसा का उपयोग करते थे। वे जानते थे कि अहिंसा से ही मानव जीवन की पीड़ा विलुप्त हो सकती है। व्यक्ति में निराकुलता एवं समाज में शांति-स्थापना हेतु जिस मूलभूत तत्वज्ञान अथवा सत्य-साक्षात्कार की अपेक्षा स्वीकार की जाती थी, उसमें इन सभी तीर्थंकरों ने युगानुरूपता प्राप्त की।[1] 'आचारांग-सूत्र' में कहा गया है–

जे-जे अतीता पडुपन्ना अनागता
अभगवन्तो अरिहंता, ते सव्वे ऐ अमेव धम्मम्।[2]

उसकी आत्मा देश-काल तथा उसकी व्याख्या शरीर में भेद अवश्य लाती है, परन्तु उसकी मूल 'धारा' सदा एक-रस-वाहिनी होती है। अतएव व्यक्ति की मुक्ति तथा संसार की शांति के लिए एक ही प्रकार के सत्य का साक्षात्कार जगत के असंख्य संतों-श्रमणों ने किया जिसका व्यापक मूल सत्य है–अहिंसा। इसी अहिंसा का प्रकाश जब विचार-क्षेत्र में अनेकांत रूप में प्रकट होता है, तब वचन–व्यवहार-क्षेत्र में–स्याद्वाद के रूप में, सामाजिक शांति के रूप में तथा अपरिग्रह के रूप में स्थिर बनता है। अतः आचरण में अहिंसा, विचार में अनेकांत, वाणी में स्याद्वाद एवं समाज में अपरिग्रह–ये चार स्तंभ हैं जिन पर जैन धर्म का सर्वोदयी प्रासाद सुस्थिर है।[3]

महावीर से पूर्व भी अनेक जैन-तीर्थंकरों का राजगृह से अटूट, गहरा संबंध था। जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत नाथ का जन्म राजगृह में ही हुआ था। वहीं उन्होंने तपः साधना की तथा निर्वाण प्राप्त किया। उनके पिता सुमित्र एवं माता पद्मावती थीं। उन्हें चम्पक तरु-छाया में विराग की प्राप्ति हुई थी तथा उन्होंने "समवेदाचल" पर्वत पर निर्वाण प्राप्त किया।[4] जैनाचार्य श्री नेमि नाथ जी मैली-श्री को एक चमेली के वृक्ष की छाया में वैराग्य प्राप्त हुआ तथा 'समवेदाचल' पर्वत पर उन्हें निर्वाण मिला।[5]

छठी शताब्दी ई. पू. का भारत कुरीतियों, कुण्ठाओं, कुव्यवस्थाओं, प्रतिकूलताओं एवं सामाजिक दुर्गुणों से आच्छन्न था। कुलपूज्यों, पुरोहितों तथा निकृष्ट संस्कार-सम्पन्न ब्राह्मणों (यज्ञमानों) के विचार आपस में टकरा रहे थे। वैचारिक

---

1. सर्वोदय की? श्री केदारनाथ झा (आमुखांश के भाव) (आमुख लेखक, स्व. डॉ. आदित्यनाथ झा, आई.सी.एस.: भू. पू. उपराज्यपाल, दिल्ली, से हिन्दी में अनूदित)।
2. –वही।
3. –वही।
4. पद्मपुराण (दशम परिच्छेद), मू. ले., श्री रविषेणाचार्य: अनुवाद, पं. दौलत राम, पृष्ठ 78 79.

घातों-प्रतिघातों से समाज परित्यक्ता नारी-सा दंश झेल रहा था। सामाजिक विकास एवं समता के आकाश का चांद ग्रहण ग्रस्त था। पुरोहितों एवं पण्डाओं के शोषण का शिकार होकर समाज अतिशय व्यथित था। सर्वत्र कोलाहल, रोदन एवं व्यथा की घनी छाया दिखायी पड़ती थीं। विह्वलता नृत्य करती थी; गिरते आंसू पर आह भरने वाला कहीं दिखाई नहीं पड़ता था। कहीं धर्म के ठेकेदार यज्ञ में भैंसे एवं बकरे की बलि दिलाकर मांस भक्षण से उदर तृप्ति कर रहे थे, तो कहीं अशुभ, असुन्दरमतों का प्रचार जन मानस को अस्थिर व भ्रमित कर रहा था।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' के उद्घोषक पुरोहित अपने कर्म एवं आचरण से समाज का शोषण कर रहे थे। किन्तु उनके हृदय में महावीर के 'अहिंसा परमो धर्मः' की गूंज भी समाहित हो रही थी और भयभीत हो वे कांपने लगे थे। वे चुप नहीं थे। उन्हें भय था कि उनके हिंसक कर्मों का प्रतिरोध करने वाला धर्म बढ़ रहा है। अतः अहिंसा के व्रतियों एवं अहिंसा धर्म को दबाने के लिए कुचक्र सृजित होने लगे। हिंसा पर आधारित कर्मों की वृद्धि हुई। समाज को अस्त-व्यस्त करने तथा अपनी वृत्ति कायम रखने के लिए ब्राह्मण पुरोहितों, पण्डों, पुजारियों समर्थित क्षत्रियों एवं अन्य दुराचारियों द्वारा अहिंसा-धर्म को कुचलने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। साधु-संतों, यतियों एवं साधकों के मार्ग में कांटे बिछाये गये, अवरोधक तत्वों का सहारा लिया गया एवं उनके सिद्धांतों पर आघात पहुँचाये गये। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि 'परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा' की ज्योति बुझाने वाला स्वयं ज्योति खो बैठता है। और यही हुआ भी। भगवान् महावीर ने उन दुराचारियों के प्रयत्नों का उच्छेदन कर दिया। अपने तर्क के बल पर उन्होंने समाज में अपनी धाक जमा ली तथा अहिंसा की जड़ को मजबूत कर दिया। अहिंसक समाज के निर्माण में उनका धर्म, विचार के कलश से जल नहीं—अमृत प्रदान कर रहा था। उनकी शक्ति के सम्मुख हिंसक दुराचारी पंडितों की शक्ति शिथिल होने लगी और अहिंसक समाज के निर्माण की दिशा प्रशस्त होकर प्रकाशित हो गयी।

भगवान् महावीर की माता त्रिशला वैशाली के राजा चेतक की बहन थी। इसी चेतक की पुत्री से मगध सम्राट बिम्बिसार का विवाह हुआ था। अतः महावीर और बिम्बिसार दोनों संबंधी थे और यह संबंध महावीर की ज्ञान-प्राप्ति के पूर्व से चला आ रहा था।

गया में ज्ञानोपलब्धि के पश्चात् भगवान् महावीर राजगृह आये। किन्तु इनके आगमन के पूर्व ही भगवान् बुद्ध राजगृह में विख्यात हो चुके थे। दोनों धर्मोपदेशक एक धरती पर आ जुटे; इससे कोई व्यवधान नहीं पहुँचा। इसका कारण यह था

कि दोनों के मार्ग अलग थे। बुद्ध ब्रह्मचर्य पर प्रथम जोर देते थे, जबकि महावीर अहिंसा पर। धर्म की सीढ़ियाँ भिन्न थीं!

राजगृह आने के साथ ही महावीर के दर्शन करने तथा उनका उपदेश सुनने के लिए अपार जन समुदाय उमड़ पड़ा। लोग आते-जाते रहे पर इससे इनका मौनव्रत खंडित नहीं हुआ। एक सौ पैंसठ दिनों तक मौन रहने के बाद, उन्होंने अपना मौनव्रत तोड़ा। उस समय राजगृह में इन्द्रभूति गौतम नामक व्यक्ति महान विद्वान एवं वेदान्ती था। उसके पाँच सौ शिष्य थे, जिन्हें वह शिक्षा देता था। एक दिन वह महावीर के पास पहुँचा। उनके धर्म प्रभाव में आकर उसने दीक्षा ले ली तथा उनका शिष्य बन गया। उसके पाँच सौ शिष्य भी महावीर के धर्म में दीक्षित हो गये। इन्द्रभूति उनके गणधर बने।[6]

जिन दिनों राजगृह की धरती पर धर्मों की क्रांति मची हुई थी, उन दिनों यह नगर समृद्धि के शिखर पर था, जैन धर्म जब विनाश के कगार पर पहुंच चुका था, तभी महावीर का पदार्पण हुआ था।

उन्होंने इस धर्म को नूतन प्राण-शक्ति देकर इसे जीवन्त बनाया। यह वही समय है, जब राजगृह का शासन बिम्बिसार के हाथों में था और वह नगरी उसकी राजधानी थी। बिम्बिसार बौद्ध थे। वे कैसे जैन-धर्मी हुए, इसकी एक कथा इस प्रकार प्रचलित है:

"एक दिन राजा श्रेणिक (बिम्बिसार) पाप के वशीभूत हो शिकार खेलने गये। जब लौट रहे थे तो मार्ग में एक दिगम्बर मुनि उन्हें दिखायी दिये। उस समय मुनि तपस्या में लीन थे। यह देखकर धर्म-द्वेषवश राजा ने अपना शिकारी कुत्ता उन पर छोड़ दिया। कुत्ता वहाँ पहुँच कर नम्र हो गया; उसका आवेश जाता रहा। वह मुनि को प्रणाम कर वहीं बैठ गया। राजा का क्रोध अब अधिक तीव्रता से भभका। इस बार उन्होंने एक मृत सर्प उस मुनि के गले में लपेट दिया और अपने सभी अनुचरों के साथ राजगृह लौट आये। राजा बिम्बिसार ने इस घटना का उल्लेख अपनी पत्नी चेलना के निकट किया। रानी चेलना बहुत दुखी हुई और उसने राजा से कहा: यह कर्म करके आपने अपने लिए नरक का मार्ग प्रशस्त कर लिया है। मुनि के साथ किया गया यह व्यवहार संसार में जघन्यतम पाप है। चेलना बोली, महाराज! जब तक मुनिराज का यह उपसर्ग दूर नहीं होगा तब तक वे वहीं रहेंगे।

---

6. हरिवंश पुराण, 3/41/; 43.

"तब राजा श्रेणिक बोले: क्या मुनिराज अपने हाथों से सर्प को निकालकर फेंक नहीं सकते। रानी ने उत्तर दिया—नहीं, नहीं! चाहे प्राण क्यों न चले जायें, वे अपने हाथों से ऐसा नहीं कर सकते।

"रानी चेलना के साथ राजा बिम्बिसार ने वहाँ के लिए पुन: प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर देखा कि मुनि उसे उपसर्ग समझकर ध्यानावस्था में वहाँ खड़े हैं और गले में सर्प विद्यमान है। रानी ने गले से सर्प हटवा दिया और गर्म जल से उनकी काया को प्रक्षालित कराया। फिर राजा-रानी दोनों हाथ जोड़कर मुनि से बोले, भगवन्! उपसर्ग दूर हो गया, हम लोगों को धर्मामृत पिलाइये! मुनिराज ने कहा, धर्म वृद्धि का लाभ हो। बिम्बिसार चिन्तन करने लगे। उनकी चिन्ता यह थी कि वे बौद्ध और रानी चेलना जैन धर्म की विश्वासिनी थीं। फिर मुनि ने दोनों को समान रूप से धर्म-वृद्धि लाभ का आशीष क्यों दिया, जबकि वे जैन मुनि थे। मुनि की उदारता से बिम्बिसार प्रभावित होकर ग्लानि ग्रस्त हो गये। उन्होंने मन ही मन कहा, मैंने जो अपराध किया, उससे विमुक्ति के लिए मुझे अपना मस्तक-दान करना चाहिए। राजा की स्थिति को लक्ष्य कर मुनि ने कहा, राजन्! मस्तक दान अच्छा विचार नहीं है, क्योंकि आत्महत्या असाधारण पाप है। राजा ने आश्चर्य से चकित हो रानी से पूछा, अरी! मैं तो अंतर्मन में ऐसा सोच रहा था; बात को प्रकट किये बिना ही मुनिराज ने उसे कैसे जान लिया? रानी चेलना बोली, महाराज! आप केवल मन की बात जानने की बात करते हैं! अरे, मुनिराज तो आपके कितने ही भावों की बात जानते हैं। इच्छा जाहिर करने पर, मुनिवर ने राजा बिम्बिसार को उसके कितने ही भावों के आख्यान सुना दिये। राजा बिम्बिसार की आत्मा बोल उठी, सचमुच जैन धर्म ही सच्चा धर्म है, जिन देव ही सच्चे देव हैं, जिन गुरु ही सच्चे गुरु हैं और जैन शास्त्र ही सच्चा शास्त्र है। मेरे इतने दिन यों ही बेकार गये। राजा श्रेणिक जैन धर्म के अनुयायी हो गये और उन्होंने इस धर्म को प्रोत्साहित किया। वे महावीर के समवसरण में जाकर टिके और उन्होंने गौतम गणधर से अनेक प्रश्न किये। राजा की पटरानी चेलना परम जैन भक्तिन थी। उसी की कृपा से राजा जैन-भक्त बने और जैन-धर्मावलम्बन किया। फिर वे सुखपूर्वक बहुत दिनों तक राज्य के कार्यों का सम्पादन करते रहे। उन्होंने कतिपय सुन्दर जैन मंदिर बनवाये और भारी धर्म प्रभावना की।

---

7. जैन सिद्धांत भास्कर, The Jaina Antiquary Vol. 46. Dec. 1993 No. 1-2, ओरियन्टल रिसर्च इन्सटीट्यूट, आरा (बिहार)।

यह कथा "पुण्या श्रवक कथा-कोष" में भी वर्णित है। इस कथा से स्पष्ट होता है कि प्राणियों के कल्याण चाहने वाले संत, विरोध और पक्ष में अंतर नहीं मानते। मानव को सन्मार्ग पर लाया जा सकता है, उनमें यही अन्तर्भावना काम करती है। एक ओर राजा और रानी में अपने कर्मों के पश्चाताप का भाव है और दूसरी ओर मुनिराज में साधना की दिव्यता तथा क्षमा-दान का ज्योति-पुंज। अपने चरणों में लोट रहे राज-दम्पत्ति (चेलना एवं बिम्बिसार) को मुनिराज आशीर्वाद देकर उनके जीवन को कृतार्थ करते हैं। पूर्व से जैन धर्मावलम्बिनी चेलना अपने पति का परम कल्याण देखकर हर्षित होती है।

राजगृह की पावन भूमि पर ही महात्मा महावीर ने वहाँ के एक प्रसिद्ध व्यक्ति गोशालक को पंचशील (सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, तथा ब्रह्मचर्य) का उपदेश देकर अपना शिष्य बना लिया था। राजा बिम्बिसार का आमंत्रण पाकर महावीर स्वामी उनके उपवन में गये थे। उपवन का माली उनके आदेश पर उनके आगमन की सूचना देने राजा के शीशमहल में गया था। श्रेणिक बिम्बिसार ने विपुलाचल पर्वत की ओर सात डेग (पग) चलकर मुनिराज को नमन किया। कालिदास ने लिखा है, "सज्जनानां मैत्री सप्त पदीन मुच्यते।"[8] राजा बिम्बिसार सपत्नीक राज्य के प्रसिद्ध मान्य लोगों के साथ महावीर स्वामी से मिलने उपवन में पधारे। महावीर स्वामी ने अपने दिव्य ज्ञान के प्रकाश से आगन्तुकों की आत्मा को अभिभूत किया। इतना ही नहीं, उन्होंने जिज्ञासुओं एवं ज्ञान-पिपासुओं को ज्ञान-रस पिलाकर उनकी ज्ञान-तृष्णा भी दूर की। अपने धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने कहा, धर्म के विभिन्न आयाम होते हैं। मुनि एवं श्रावकों के धर्म में अन्तर है। मुनि निर्वाण अर्थात् मोक्ष के लिए साधना करता है। श्रावक साधना से सुख की अपेक्षा करता है। यही उसका धर्म है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र की दृष्टि से मोक्ष की प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग एवं स्रोत हैं, पर धर्म-त्रय सम्प्रदाय ही मोक्ष का मार्ग है। सम्यक् दर्शन में जीव को अजीव की प्राप्ति यथार्थ श्रद्धा की उपलब्धि होती है। इसकी भी दो कोटियाँ निसर्गज और अधिमगज हैं। निसर्गज में उपदेशादि की अपेक्षा नहीं रहती किन्तु अधिमगज में उसकी अपेक्षा निहित रहती है। इन दोनों की भी तीन कोटियाँ औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक हैं। अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व एवं सम्यक् दर्शन का औपशमिक स्वरूप अनुभूत होता है। सप्त प्रकृतियों का क्षय होने से क्षायिक स्थिति आती है। पूर्व

8. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास।

वर्णित षट प्रकृति में उदयाभावी क्षय होने और तद्रूपस्थ सत्तावस्थित प्रकृति का उपशम होने से सम्यक मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होता है। परिणामतः क्षायोपशमिक सम्यक् दर्शन होता है। किसी भी पदार्थ के वास्तविक ज्ञान को सम्यक् ज्ञान की संज्ञा दी जाती है। इसकी पाँच श्रेणियाँ हैं—ज्ञान, मतिश्रुत, अवधिमन, पर्यय और कैवल्य ज्ञान। ऐसी क्रिया (कर्म), जिससे पापोद्भव होता है,-के परित्याग को सम्यक् चरित्र कहते है। प्रकृति के अनुसार इसके तेरह भेद हैं। "अष्टादश दोषमुक्त सर्वज्ञदेव" में श्रद्धान करना, अहिंसा, (अहिंसा के परिवेश में श्रद्धान) भगवान के प्रति श्रद्धान परिग्रहरहित गुरु परिज्ञान, सम्यक् दर्शन है। सम्यक् दर्शन के आठ अवयव हैं—समवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, शम, भक्ति वात्सल्य एवं कृपा। अठारह दोषों में प्रमुख हैं—बुभुक्षा, पिपासा, वृद्धावस्था, द्वेष, नींद, भय, क्रोध, राग, आश्चर्य, विषाद, मरण, मोह, चिन्ता, रति एवं दुःखादि। देव इन दोषों से मुक्त रहते हैं। सम्यक् दर्शन में पच्चीस दोष आते हैं जिनमें अष्ट्मद, अनायतन, शंका, कांक्षा आदि मुख्य हैं। सात व्यसन हैं—द्यूत, मांस-भक्षण, मधु-सेवन, वेश्या गमन, चौर्यकार्य, अनुराग और शिकार। बुद्धिमान सम्यक् इनका परित्याग कर देते हैं। त्यागने योग्य चीजों में मद्य, मांस, मधु ही नहीं है, उदम्बरा का त्याग भी है। इसका त्याग आठ मूल गुणों में प्रधान हैं। गृहस्थों के लिये मौलिक गुणों के, जिनका उल्लेख ऊपर है, पालन पर जोर देना चाहिए। बासी दही एवं मक्खन-भक्षण दोनों वर्जित हैं। इतना ही नहीं। त्यागियों के लिए चमड़े के पात्र में रखे गये तेल, पुष्प, शाक, मक्खन, कंद-मूल एवं भुने अन्न भी त्याज्य हैं। धर्मात्माओं के लिए भी कुछ भोजन निषिद्ध हैं। उनके लिए वर्जित खाद्य पदार्थ हैं: बैंगन, सूरन, हींग, अदरक एवं बिना छाना हुआ जल। अज्ञात, अनजाने का दान भी अग्राह्य है। मधु दोहन में मक्खियों के रक्त, मल-मूत्रादि मिश्रित रहते है, फलतः मधु-छत्ते से मधु निष्कासन में हिंसा का योग सिद्ध होता है। श्रावकों के लिए जो वृत्तियाँ पालन हेतु उपबन्धित हैं, उनमें प्रमुख है: दर्शन, व्रत, सामायिक प्रोषधोपवास, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एवं अनुमति। दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड व्रत—ये तीन गुणव्रत हैं। ये श्रावकों के आचार में आते हैं जिनका अनुपालन अनिवार्य है। जीवों पर दया, पंचेन्द्रियों पर काबू तथा रौद्र-ध्यान सामयिक है। अष्टमी एवं चतुर्दशी तिथि को पुरुषधोपवास करना चाहिए। इस उपवास के भी उत्तम, मध्यम एवं निम्न तीन प्रकार हैं। केसर चन्दन का अनुलेपन भोग है। भूषण एवं वस्त्र उपभोग की श्रेणी में आते हैं। इनका नियमन-नियंत्रण भी अनिवार्य है। दान मूल्यवान चीज है, यह गृहस्थ के लिए भी आवश्यक है। इसे यथाशक्ति देना चाहिए। दानों में आहार,

औषधि एवं क्षमा प्रमुख हैं। बाह्य और आभ्यंतर दृष्टि से शुद्ध तप: चरण भी दो प्रकार के होते हैं। इन साधनाओं से अर्जित बीज कर्म का विनाश होता है। दिगंबर (नग्न रहना) वेष मोक्ष की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

इतना कहकर; प्रवचन देकर, महात्मा महावीर मौन हो गये। सभी ज्ञान पिपासु एवं श्रद्धालु भक्त राजा बिम्बिसार के साथ चले गये, क्योंकि उपदेश-श्रवण पूर्ण हो चुका था।

यह संसार प्रपंचों से परिपूर्ण है। इन प्रपंचों के वशीभूत होकर मनुष्य अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए संसार को मल्लयुद्ध का केन्द्र बना देता है। इसमें वह केवल अपना उत्थान देखता है, पर कभी-कभी अवसान के गर्त में भी चला जाता है। निर्वाह सभी चाहते हैं, पर केवल योगी, संयमी ही इस विंदु पर सफल होते हैं। हठधर्मी का निर्वाह भी होता है, पर आध्यात्मिक अर्थात् प्राकृतिक संकट के समय तिलमिलाहट देखने योग्य होती है।

राजगृह निवासी शालिभद्र के जीवन में प्रकृति का कुछ ऐसा ही योग हुआ। जन्मकाल से वह ऐश्वर्य की गोद में परम स्वतंत्र जीवन यापन कर रहा था। एक दिन अपनी मां के एक साधारण आदेश पर वह तिलमिला उठा और वैराग्य की प्रवृत्ति उसमें जगी। माता का वह आदेश मात्र इतना था कि वह श्रेणिक बिम्बिसार से मिले। इस आदेश को वह मानव परतंत्रता और बंधन का स्वरूप समझता था। उसे दासता की अनुभूति हुई। तब तक उसके अंदर यह ज्योति नहीं जग पायी थी कि मानव जन्म तो स्वतंत्र लेता है पर उसका जीवन बंधनों में आबद्ध हो ज़ाता है। यह अनुभूति अब उसे पहली बार हुई थी। इसी तथ्य को अट्ठारहवीं शताब्दी में प्रतिपादित किया था फ्रांस के महान चिंतक रूसो ने।[9]

इस समय महावीर राजगृह पहुंच चुके थे। कामवासना एवं सांसारिक पीड़ा तथा उलझन से ग्रस्त शालिभद्र अपनी माता के साथ उनके निकट पहुंचा। उसके उत्पीड़न की कोई सीमा न थी। महात्मा महावीर ने उसकी वेदना को लक्ष्य किया। उसकी इच्छा के अनुरूप उन्होंने उसे उपदेशामृत पिला कर परितुष्ट किया एवं उसे दीक्षा दी। महात्मा महावीर के उपदेश का संबल लेकर वह जीवन पथ पर चला। वह उपदेश क्या था? कुछ देर मौन रह कर महावीर ने शालिभद्र से कहा, षड्निकाय को जानना परमावश्यक है। जीव की छह कोटियां हैं—पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक, वायु कायिक, वनस्पति कायिक एवं त्रंस कायिक। इन जीवों को

9- "Man is born free but is everywhere in chains". Roussean. Social Contract.

न तो उत्पीड़ित करना और न किसी से उत्पीड़ित कराना। मन, वचन एवं कर्म से सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतों का अनुपालन करना। इन पंच-महाव्रतों की पच्चीस भावनायें होती हैं। शिष्यवर! यही मैंने भी जीवन में धारण किया है और इसी के लिए अन्य जनों को भी प्रेरित करता हूँ। जीव समुदाय को आत्मवत देखना, इन्द्रिय-निग्रही की पहचान है। उसका धर्म है। इस धर्माचरण से वह पाप-मुक्त होता है, दया और ज्ञान दोनों परस्परापेक्षी हैं। ज्ञानहीन व्यक्ति आचार संहिता को समझ नहीं सकता। जीव और अजीव की भिन्नता बताने वाला विवेक जिसे नहीं है, वह किसी भी प्रकार मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। जो जीवाजीव तत्वों का परिज्ञाता है, उसे ही सभी जीवों की गतिविधियों का ज्ञान रहता है। इसी संदर्भ में वह पुण्य, पाप तथा बंध-मोक्ष को भी जानता है। वही व्यक्ति दैवी और मानुषी भोगों का परित्याग करता है। वाह्य और अंतर संबंधों को तोड़ने की क्षमता उसी में होती है और अंततः वह सन्यस्त परिव्राजक बन जाता है। तब उसे शैलेषी अवस्था प्राप्त होती है जिसमे वह अचल हिमालय-सा दृढ़ हो जाता है। इतना कह कर (अर्थात उपदेश देकर) महात्मा महावीर मौन हो गये। शालिभद्र घर वापस चला गया।

महात्मा महावीर के उपदेश से अभिभूत शालिभद्र ने अपना अगला शेष जीवन वैरागी के रूप में व्यतीत करने का निर्णय लिया। यह महात्मा के उपदेश का जादुई प्रभाव था। इसकी सूचना उसने अपनी माता भद्रा को भी दी। उसके बत्तीस परिणय सम्पन्न हुए थे। परिणय के ये बत्तीस दिन ऐश्वर्य के दिन थे। उसने सभी रिणीताओं (पत्नियों) एवं विवाह के समस्त ऐश्वर्यों (बत्तीस परिणय के ऐश्वर्य) को त्याग दिया। उसकी प्रथम पत्नी विदेह-तनया थी। वह अपने परिव्राजक पति के परिव्राजकत्व के प्रभाव में स्नेहपूर्वक आकर स्वेच्छा से परिव्राजिका बंनकर उसकी दासी हो गयी। शालिभद्र का बहनोई धन्य सेट्ठि अपने साले का हाल जानकर विह्वल हो गया। उसकी सोयी हुई श्रद्धा जाग उठी। जैन धर्म के प्रति जागी श्रद्धा-भावना से प्रेरित होकर वह महावीर के पास पहुंचा और उनसे दीक्षा लेकर वह भी परिव्राजक बन गया। महावीर के व्यक्तित्व और धर्म का यही प्रभाव तत्कालीन राजगृह की भूमि को अहर्निश प्रभावित कर रहा था। इस धर्म ने उसे महिमामंडित किया। भगवान् महावीर के व्यक्तित्व के आकर्षण के ये सारे ऐतिहासिक आख्यान और प्रमाण है। आज भी राजगृह के खंडहर, शिलालेख, एवं दीवारों के बिखरे भग्नावशेष महात्मा महावीर के व्यक्तित्व तथा धार्मिक कृतित्व के रूप में मौजूद हैं। धर्म का इतिहास हमेशा करवटें बदलता रहता है।

आज का सूरज कल के अस्ताचल पर पहुंच जाता है।

कहा जाता है कि एक बार शालिभद्र और उसके बहनोई दोनों द्विमासिक उपवास पर थे। उपवासावधि की पूर्णता के पश्चात् वे पारण के लिए भिक्षा प्राप्त करने हेतु महावीर से अनुमति लेने गये। अनुमति मिली और वे अपनी माता भद्रा के पास भिक्षा के लिए पहुंचने वाले थे, किन्तु मार्ग में ही पारण करने के लिए विवश हो गये। लौटकर दोनों भगवान महावीर के पास पहुंचे और अंतिम व्रत 'अनुज्ञा' की प्राप्ति के लिए याचना करने लगे। 'अनुज्ञा' मिली। वे वैभार पर्वत पर चले आये। 'अनुज्ञा' व्रत के अधीन दोनों अनशन पर थे और इसी व्रतसाधन में उनका अंत हो गया; वे स्वर्गवासी हो गये।

प्राय: प्रत्येक दिन अनेक धर्म पिपासुओं एवं जिज्ञासुओं की भीड़ भगवान् महावीर के निकट एकत्र होती थी और वे उन्हें ज्ञान तथा उपदेश देकर परितुष्ट करते थे। यह भी एक आश्चर्य है कि महात्मा बुद्ध और उनके धर्म पर भी इसका प्रभाव पड़ा। वे भी महावीर से प्रभावित थे। कुछ बौद्ध भिक्षु ऐसे भी थे जिन्होंने बुद्ध से दिगम्बर रहने के लिए निवेदन किया था। यद्यपि बुद्ध ने दिगम्बर वेश की भर्त्सना तो नहीं की, पर वे मन-ही-मन सोचने लगे, आशंकित हो उठे। उन्हें भय था कि इस वेश के प्रयोग से संभवत: आगे कम लोग भिक्षु बनना चाहेंगे। उनकी दृष्टि में यह वेश परिव्राजकत्व के विस्तार में बाधक हो सकता था।[10] संभवत: नेपाल में तांत्रिक बौद्धों के बीच यह दिगम्बर वेश प्रचलित हो गया था।[11] वास्तविकता यह है कि तब नग्नता साधुओं के लिए वर्जित नहीं थी। इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। साधु-नग्नता को लोग उनका आभूषण समझते थे।

भगवान् बुद्ध के समय में इसका काफी प्रचार था। महावीर ने तो उपदेश ही दिया था कि प्राचीन जैन और आजीविक साधु नंगे रह कर घूम-घूमकर धर्म प्रचार करेंगे।[12]

तीर्थंकरों पर जैन धर्म का प्रभाव पड़ा था, यथा:

"In Lames 'Alwis' Paper (IInd Ant. VIII) on the Six Tirthankars the Digambaras' appear to have been regarded as an old order of ascetics and

---

10. महावग्ग, 8/28/1.

11. नेपाल में गूढ़ और तांत्रिक नामक एक बौद्ध शाखा है। मि. हागसन ने लिखा है कि इस शाखा में नग्न यति रहते है। जैसिभा. 1/2—3/ पृ. 25.

12. जेम्स एलवी, प्रो. जैकोबी तथा बुल्हर इस बात का समर्थन करते हैं कि दिगंबरत्व, बुद्ध के पहले से प्रचलन में था, आजिविक आदि तीर्थंकरों पर जैन धर्म का प्रभाव पड़ा था।

all of these heretical teachers carry the influence of Jainism in their doctrines."

-JA, IX, 161.

Prof. Jacobi remarks: "The preceding four Tirthankars (Makkhali Goshal etc.) appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of The Jaina System probably from the Jains themselves...It appears from the preceding remarks, that the Jaina ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him. This combined with other arguments, leads us to the opinion that Nirgranthas were really in existence long before Mahavira.

Prof. T. W. Rhys Darvids notes in the "Vinaya Texts" that "the sect now called Jains was divided into classes, Digambara; Swetambara, the latter of which eat. naked. They are seen to be the successors of the school called Nirgranthas in the Pali Pitakas." SBE, XIII, 41.

Dr. Buhler writes: "From Buddhist accounts in their canonical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one even in Buddha's time his teaching had spread considerably... Also they say in their description of other rivals of Buddha that these, in order to gain esteem, copied the Nirgranthas and......unclothed and that they were looked upon by the people as Nirgrantha holy ones, because...happened to lost their cloths." AISJ. p. 36.

जैसिभा, 1/5, 3/24. The people bought clothes in abundance for him, but he refused them as he thought that if he put them on, he would not be treated with the same respect. Kassapa said" Clothes are for the covering of shame and the shame in the effect of.....I am an Arahat. As I am free from evil desires, I know no shame" etc.

डॉ. स्टिवेन्शन लिखते है, कि एक तीर्थंकर नग्न हो गया। लोग उसके लिए बहुत वस्त्र लाये, किन्तु उनको उसने स्वीकार नहीं किया। उसकी मान्यता थी कि वस्त्र स्वीकार करने से और अधिक प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी। वे अपने को अर्हत कहते हैं, जहाँ वासना से मुक्त रहने के कारण लज्जा के लिए स्थान ही नहीं है। परिणामत: जम्बू द्वीप में इसी को लोग बुद्ध कहने लगे। पूर्व वर्णित आधार के संदर्भ में इन्द्रभूति महावीर के गणधर बन चुके थे। इनके अतिरिक्त अन्य गणधर भी थे, जिनमें अग्निभूति, वायुभूति, शुचिदत्त, सुधर्म आदि प्रमुख हैं।[13] एक

13. हरिवंश पुराण, 3/41—43.

अन्य लेख से ज्ञात होता है कि मक्खलि गोसाल एवं पुरण कश्यप विलक्षण प्रतिभा के साधु थे जो भगवान् महावीर की शिष्य परम्परा के मुनि कहलाते थे और वास्तव में थे भी।[14] संभवत: मक्खलि गोसाल भगवान् महावीर से विमुख होकर आजीविक सम्प्रदाय का नेतृत्व करने लगा था। इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार भी जैनियों से हुआ।[15] पुरण कश्यप (गोसाल का मित्र) दिगम्बर हो चुका था। यत्र-तत्र यह भी उल्लेख मिलता है कि दिगम्बर रहने की परंपरा जैनियों के पूर्व से चली आ रही थी।[16]

बौद्ध ग्रंथों में महात्मा महावीर का उल्लेख मिलता है। 'मज्झिम निकाय' के अभय राजकुमार सुत्त से ज्ञात होता है कि वे राजगृह में रहते थे। 'उपलिसुत्त' से पता चलता है कि महावीर वहाँ के विहार में रहते थे[17] एवं उनके साथ बहुसंख्यक निर्ग्रंथ साधु भी निवास कर रहे थे।[87] एक ग्रंथ 'ब्रह्मजाल सुत्त' में उल्लेख है कि मगध अधिपति अजातशत्रु भगवान् महावीर से मिलने गये थे।[19]

पूर्व में जिन गणधरों के नाम उल्लिखित हैं। उन्हीं में एक गणधर (दसवें मैत्रेय थे और ग्यारहवें प्रभास थे। यह विदित है कि इन दोनों गणधरों के निवास राजगृह में थे; वे राजगृह के वासी थे। प्रभास के पिता का नाम बल था और वे जाति से ब्राह्मण थे। ये दोनों दिगम्बर मुनि से दीक्षित होकर भ्रमण के सहारे धर्म-प्रचार करते थे।[20] इतिहास के पृष्ठों में अंकित, पर संभ्रम की अवस्था से पूरित होकर यह कहा जा सकता है कि बिम्बिसार के पुत्र राजकुमार अभय दिगम्बर मुनि हो गये थे। बौद्ध ग्रंथ प्रतिपादित करता है कि राजकुमार अभय धर्म-प्रचार के लिए ईरान गये थे और वहां उनके प्रभाव में आकर वहां के राजा का एक पुत्र निर्ग्रंथ साधु हो गया था।[21]

महावीर और बुद्ध दोनों के धर्म का सार अहिंसा में निहित है। यही मूलाधार है। किन्तु दोनों में थोड़ी व्यावहारिक भिन्नता दिखायी देती है। महावीर की मान्यता

---

14. भमबु, पृ., 16–21.
15. वीर वर्ष 3, पृ. 312; व भमबु, पृ. 17–21.
16. भगवान् महावीर और उनका तत्व-दर्शन, आचार्य रत्नश्री 108 देशभूषण जी विद्यालंकार।
17. मज्झिम निकाय (PTS) भा., 1; 392 भमबु।
18. मज्झिम निकाय, 1/369 व "The M.N. tells us that once Nigantha Nath Putta was at...with a big retimcee of the Niganthas." AIT 4 P. 147.
19. भमबु, पृ. 222।
20. बृजैश, पृ. 81।
21. A. D. J. B., I. p. 92.

थी कि मन, वचन एवं कर्म से जीव-हिंसा से दूर रहना चाहिए, भोजन, शयन तथा मनोरंजन में भी इसका ध्यान रखा जाता था कि जीव-हिंसा नहीं हो। परन्तु, बौद्ध भिक्षुओं के आचरण कुछ भिन्न थे। कई बार स्वयं बुद्ध ने मांस-भक्षण किया था।[22]

महावीर के श्रावक शिष्यों में सम्राट बिम्बिसार का महत्वपूर्ण स्थान था। कर्मशील शिष्य परिवार की सूची के अंकन में कहा जाता है कि महावीर के शिष्य-परिवार में चौदह हजार साधु, छत्तीस हजार अर्चिकाएं, एक लाख श्रावक तथा तीन लाख श्राविकायें थीं। राजगृह में ही उनके असंख्य शिष्य थे।[23]

राजगृह वस्तुतः एक सिद्ध पीठ है, जिससे जैन धर्म का इतिहास सबलता के साथ जुड़ा हुआ है। यहीं के विपुलाचल पर्वत पर महावीर ने प्रथम साधना सम्पन्न की थी। धन्य है राजगृह का विपुलाचल पर्वत, जिस भूमि पर अनेक ऋषि मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया। यहां के ऋष्यद्रि पर्वत पर असंख्य नंगानंग मुनिराजों को निर्वाण की प्राप्ति हुई। श्री प्रेमीजी ने पंचपहाड़ियों में दो पहाड़ी श्रवण गिरि और सोनगिरि को सिद्ध पीठ माना है।[24] उत्तर पुराण के अनुसार श्री गौतम स्वामी को इसी विपुलाचल पर्वत पर निर्वाण प्राप्त हुआ था।

उत्तरवर्ती साधु, सुधर्म स्वामी एवं जम्बु स्वामी को भी इसी विपुलाचल पर्वत पर निर्वाण, कैवल्य प्राप्त हुआ। धर्मावलम्बियों के तीर्थ राजगृह को ही यह सुयोग एवं सौभाग्य प्राप्त है कि यहीं पर भदन्त, समुन्दर एवं मेघरथ जैसे संतों को निर्वाण प्राप्त हुआ। भगवान् महावीर ने सेठ-प्रीतकर का यहीं पर धर्मोपदेश से कल्याण किया था। यहीं की नील गुफा में निषाद कन्या "गन्धा" ने सल्लेखना व्रत का संपालन किया तथा व्रत-सिद्धि के उपरांत उसने प्राण छोड़े।

---

22. Cowell, Jātakas, II. 182: भमवु, पृ. 246।
23. तीर्थंकर महावीरः उनका सर्वोदय तीर्थ, हुकुमचंद भारिमल, पृ. 79–85.
24. भगवान् महावीर और उनका तत्व दर्शन, देश भूषण जी।

सप्तम् अध्याय

राजगृह और गौतम बुद्ध

राजगृह की धरती पर सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का प्रथम पदार्पण उस समय हुआ, जब महान् प्रतापी एवं उदार शासक बिम्बिसार वहाँ का राजा था। इस शासक में सर्वधर्म समभाव की आस्था थी।[1] इसके शासन-काल में श्रद्धा यज्ञों से जुड़ी हुई थी। इसमें साधको, तपस्वियों, श्रमणों एवं परिव्राजकों के प्रति आदर का भाव था। जब कभी श्रमण, यति, सन्यासी बिम्बिसार की राज्य सीमा में प्रवेश करते, तो सर्वप्रथम श्रेणिक उनके निवास का प्रबन्ध करते थे। इस बात का अधिक महत्व है कि श्रमण, संत एवं सन्यासी के लिये आवासीय प्रबंध राजधानी के बिल्कुल पार्श्व में किया जाता था। राजधानी के परिवेश-परिसर में भी ऐसी व्यवस्था होती थी तथा वे संत-श्रमण सुखपूर्वक चैन से निवास करते थे।[2]

गृह त्यागने के पश्चात् सिद्धार्थ गौतम राजगृह पहुँचे। महान् मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह की ख्याति पूर्व से परिव्याप्त थी। उन्होंने भिक्षाटन करने का निर्णय लिया और यह उल्लेखनीय है कि राजगृह की धरती पर ही प्रथम बार हाथ में भिक्षा पात्र ग्रहण किया। भिक्षा ग्रहण कर वे नगर से बाहर पाण्डव पहाड़ के आश्रम में गये। भिक्षा-पात्र से भोज्य वस्तु निकाल कर खाना प्रारंभ किया। तत्क्षण उन्हें एक दुखद अनुभूति हुई। ऐसा मालूम पड़ा कि उनकी आँत पेट से निकल कर मुख मार्ग से बाहर जा रही है। वह वमन की अवस्था थी। खाई वस्तु वमन से बाहर आ गई। इसके पूर्व उन्हें ऐसा निम्नकोटि का भोज्य पदार्थ खाने को नहीं मिला होगा। घटिया भोज्य पदार्थ के कारण ही ऐसा हुआ। सिद्धार्थ ने अपने अंत:करण को संतुलित कर सामान्यावस्था की ओर मोड़ा। सिद्धार्थ के इस उत्पीड़न की जानकारी राजा बिम्बिसार को मिली और उसने उत्तम भोजन उनके पास भिजवाया। उन्हें वह भोज्य सामग्री प्राप्त हुई और वे उसे लेकर पाण्डव (रत्नकूट) पर्वत के निकट चले गये और वहीं पर भोजन किया।

1. सोनदण्ड सुत्त (दीघ निकाय) 1-4.
2. सुकुलदायी सुतन्त (मज्झिम निकाय), 2, 3, 9 एवं सामंजफल सुत्त (दीघ निकाय).

बिम्बिसार ने स्वयं जाकर सिद्धार्थ से भेंट की। सिद्धार्थ की उच्चकुलीनता एवं राजकीय महत्ता के वशीभूत राजा ने राजकीय व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण पद देने का प्रस्ताव किया, किन्तु विरक्त सिद्धार्थ ने उसे अस्वीकारा। राजभोग को स्वेच्छा से त्यागने वाला पद लोलुप कैसे हो सकता था? राजा बिम्बिसार का यह निवेदन—"महाराज! मेरा सम्पूर्ण मगध राज्य आपके चरणों में समर्पित है। आप यहीं रहिये और राज प्रासाद में वास कीजिए।" भी प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। उत्तर में सिद्धार्थ ने कहा—"महाराज! यदि राज सुख भोगने की इच्छा होती तो मैं अपने बंधुओं एवं स्वदेश को क्यों छोड़ता? सांसारिक भोगों को त्यागकर मैंने प्रवज्या ग्रहण की है। मैं बुद्धत्व लाभ करूँगा।" यह सुनकर महाराज चुप हो गये। पुनः उन्होंने नम्रता पूर्वक निवेदन किया—"बुद्धत्व लाभकर आप मुझे अवश्य दर्शन दीजिएगा। बोधिसत्व ने बिम्बिसार की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।"[3] ज्ञान-प्राप्ति के बाद पुनः आने का वचन देकर सिद्धार्थ मगध के विख्यात विद्वान, आचार्य आराम कलाम तथा आचार्य रुद्रक के आश्रम में पहुँचे। वहाँ कुछ दिनों तक ठहरकर ज्ञान प्राप्त किया। फिर वे वहाँ से गया चले गये। रुद्रक के आश्रम के पाँच ब्रह्मचारी भी इनके साथ हो गये। गया के शीर्ष पर्वत पर भी तपस्या हेतु गये थे।

वर्षों की तपस्या के पश्चात् प्रसिद्ध निरंजना नदी के तट पर एक पीपल वृक्ष के नीचे इन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। ज्ञान प्राप्त होने के बाद वे सारनाथ गये, जहाँ उन्होंने रुद्रक के आश्रम से भागे हुये अपने पाँच सहचरों को दीक्षा दी और वहाँ से राजगृह आये। सारनाथ में लोगों को संबोधित करते हुए उन्होंने अपने उद्देश्य के संबंध में कहा था—"मैं अज्ञानियों को ज्ञान से तृप्त करने आया हूँ। जब तक कोई मनुष्य प्राणियों के हित के लिये अपने को खपा न दे और त्यागे हुए को तसल्ली न दे; तब तक वह पूर्ण नहीं हो सकता। मेरा मत करुणा का मत है। इसी कारण संसार के सुखी मनुष्य उसे कठिन समझते हैं। निर्वाण का मार्ग सबके लिये खुला हुआ है। ब्राह्मण भी उसी तरह स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ जैसे चाण्डाल, जिसके लिये उसने—मोक्ष द्वार बंद कर रखा है। जिस प्रकार हाथी नरकुलों की झोपड़ी उखाड़ फेंकता है, उसी प्रकार तुम भी अपने विकारों का नाश कर दो। पापों से रक्षा का एक मात्र उपाय आर्य-सत्य है"।

महात्मा बुद्ध से प्रतिपादित चार आर्य-सत्य इस प्रकार उल्लिखित हैं:—"दुख,

3. भगवान गौतम बुद्ध, भदन्त बोधानंद महास्थविर, पृ. 27-28.

दुख का कारण, दुख का निवारण एवं दुख के निवारण का मार्ग। प्रथम सत्य के अंतगंत जन्म-मरण, रोग, बुढ़ापा, अवांछितों का संयोग, वांछितों का वियोग तथा मनोनुकूल वस्तुओं की अप्राप्ति आदि तत्व दुख प्रदान करने वाले हैं।''[4]

दूसरा आर्य-सत्य बताता है कि इन दुखों का कारण तृष्णा (इच्छा) है। इच्छा से ही स्वार्थ प्रेरित होता है। स्वार्थ का मूलाधार इच्छा है। अज्ञानता ही इच्छा का मूल कारण है।[5]

तीसरा आर्य--सत्य बताता है कि दुख दूर करने का उपाय इच्छा का विनाश करना है। जब तक किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा जागृत रहेगी, दुख होगा, वह दूर नहीं हो सकता। इच्छा की अपूर्णता दुख को जन्म देती है।

चौथा आर्य-सत्य बताता है कि इच्छा को नष्ट करने का उपाय अष्टांगिक मार्ग का अवलंबन है।[6]

बौद्ध धर्म का एक अपर (दूसरा) नाम अष्टांगिक मार्ग है। यही दुख निरोधिनी प्रतिपदा है। अष्टांगिक (आठ) मार्ग क्रमबद्ध रूप से इस प्रकार संचित हैः—

1. सम्यक् दृष्टि (आर्य-सत्य का ज्ञान)
2. सम्यक् संकल्प (दृढ़ संकल्प)
3. सम्यक् बाक् (सत्य भाषण)
4. सम्यक् कर्म (दुराचरण रहित कर्म)
5. सम्यक् आजीव (न्यायपूर्ण जीविका)
6. सम्यक् व्यायाम (पापों को छोड़ने के निमित्त तथा पूर्ण समुच्चय की प्राप्ति के हेतु सतत उद्योग)
7. सम्यक् स्मृति (चित्त वेदना, शरीर आदि की अनित्यता तथा अविजेता का बोध और मोहादि दोषों से दूर रहना-हटना)
8. सम्यक् समाधि (जो शारीरिक बंधन एवं मानसिक लगावों से उत्पन्न बुराइयों को दूर करे)

इसी तरह मुक्ति-प्राप्ति के लिये जिन दस शीलों का प्रतिपादन किया गया है, वे इस प्रकार हैं—'अहिंसा, अस्तेय, सत्य-भाषण, ब्रह्मचर्य, मादक द्रव्यों का निषेध, दोपहर के बाद भोजन पर प्रतिबंध, गायन-वादन-नृत्य के प्रति विराग, सुगन्धित द्रव्य, आभूषण का वर्जन, कोमल शय्या पर विश्राम का परित्याग, रजत

4. महासत्ति पट्ठान सुत्त (दीघ निकाय), 2, 9.
5. मज्झिम निकाय, 1, 3, 31.
6. धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र, संयुत्त निकाय, 55, 2/1.

एवं स्वर्ण का संस्पर्श वर्जन।" ऊपर के पाँचशील गृहस्थों एवं सभी दसशीलों का पालन भिक्षुओं के लिये अनिवार्य था।

बुद्ध आत्मा के पुनर्जन्म को नहीं स्वीकार करते। इसका अर्थ है कि वे अनात्मवादी हैं। उनके दर्शन में आत्मा के अस्तित्व को नहीं स्वीकारा जाता। उनकी मान्यता है कि कर्म के अनुसार अर्थात् कर्म के परिणामस्वरूप धर्म (गुण) का पुनर्जन्म होता है। जीव पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगता है। बुद्ध ने कहा था—"समस्त विश्व को प्रेममय देखो! अपने साथ एकाकार करके देखो।"[7] बुद्ध के समय ब्राह्मण पुरोहित देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ में यजमान से पशुबलि दिलाते थे। बुद्ध ने इसका घोर विरोध किया। उन्होंने कहा कि किसी प्रकार के जीव की बलि देने से अच्छा है कि लोग अपने क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या एवं बुरे विचारों की बलि दें।

बौद्ध धर्म मध्यममार्गी धर्म है। यह मध्यम मार्ग के अवलम्बन की सीख देता है। मध्यम मार्ग का सिद्धांत जीवनोपयोगी है। बुद्ध ने इसे ही लक्ष्यकर 'अति' और 'अन' को छोड़ मध्यम मार्ग के अनुसरण का निर्देश दिया। इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि वीणा के तार को इतना न कसो कि वह टूट जाए और इतना ढीला भी नहीं छोड़ो कि उससे आवाज ही नहीं निकले। वे प्रतिपादित करते थे कि जैसे मल से मल धोकर साफ नहीं किया जा सकता, उसी तरह अशुभ का अंत बलप्रयोग से कदापि नहीं हो सकता है। उनकी दृष्टि थी कि सच्ची विजय वह है जिसमें किसी की पराजय नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि विजय प्रेम एवं करुणा के सहारे प्राप्त करनी चाहिए। यही शाश्वत विजय है। बुद्ध ने वेद और ईश्वर दोनों को अस्वीकारा। तर्क को आधार मानकर दोनों के प्रभुत्व को मानने से इन्कार कर दिया। दोनों उनकी दृष्टि में अस्तित्वहीन सिद्ध हुये। ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में वे कहते हैं—

कैसे हो सकता कि ब्रह्म यह जगत बनाये!
किन्तु उसे दुख और मुसीबत में रखवाये।
क्योंकि अगर वह सर्वशक्तिमय हो यह करता!
तो वह अच्छा कभी नहीं माना जा सकता।
और अगर वह ब्रह्म नहीं है, सर्वशक्तिमय!
तो वह ईश्वर कभी नहीं, यह जानो निश्चय।[8]

7. उत्तर और दक्षिण धार्मिक समन्वय, एस. एम. कृष्णन, पृ. 19-21.
8. विश्व इतिहास की झलक, पं. जवाहर लाल नेहरू, पृ. 662.

बुद्ध ने धर्म और जीव की शुद्धता के संबंध में कहा था—"ओऽम् स्वभाव शुद्धाः स्वभावो शुद्धो हे।" अर्थात् सभी धर्म या पदार्थ मूलतः शुद्ध हैं और मैं भी स्वभावतः (मूलतः) शुद्ध हूँ। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को निरंतर भ्रमण करते रहने का आदेश दिया। लोक-कल्याण में जीवन को लगाने, अर्पित करने का संदेश भी भिक्षुओं को प्राप्त हुआ और बौद्ध भिक्षु वस्तुतः भ्रमणशील सिद्ध हुये। सुत्तनिपात (बौद्ध ग्रंथ) में कहा गया है कि कोई माता अपने इकलौते पुत्र को जैसा स्नेह देती है, उसी तरह का स्नेह भिक्षु हर जीव को दे। भिक्षुओं को लोक कल्याण के लिये स्नेह, करुणा एवं दया की वर्षा करनी है, यह निर्देश बुद्ध का था।

बुद्ध के प्रादुर्भाव के पूर्व समाज में आतंक परिव्याप्त था। पाखंड लहरा रहा था। पाखंडियों से शोषित समाज की कराह अनवरत सुनाई पड़ती थी। हतन्याय एवं लुंटित नीति के परिवेश में मानव जीने को विवश था। विलखती मानवता अपने रोदन से प्रकृति को भी अधीर कर चुकी थी। हिंसा के भय से दिशाएँ प्रकम्पित थीं। इस तुमुल कोलाहल, ईर्ष्या, द्वेष, हत्या, आतंक एवं पाखंड के घटाटोप में कीचड़ के कीट की तरह मानव खलमल, बजबज करता था। इस अवस्था से परित्राण दिलाने के लिये कोई रोशनी नहीं दिखाई पड़ रही थी। तभी सिद्धार्थ का जन्म हुआ, जिसने बुद्ध बनकर अपने बुद्धत्व के अमृत से विश्व मानव की प्यासी जिह्वा को तृप्त कर दिया। जब कभी धरती पर संक्रमण की स्थिति आती है तब उसे दूर करने के लिये प्रकृति अमोल उपादान भेजा करती है। उन्हीं अमोल, अतुल उपादानों में एक उपादान भगवान् बुद्ध है, जिन्होंने संक्रमण की स्थिति नष्ट कर दी तथा प्रकाश का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने धार्मिक पाखण्डों पर संघातक प्रहार किया। यज्ञ में होने वाली पशु-बलि एवं कर्मकाण्ड के ढकोसले का घोर विरोध किया। अनैतिक मान्यताओं को झकझोरा एवं आतंक तथा पाखंड के उन्मूलन के लिये करुणा तथा दया का मार्ग प्रशस्त किया। लोक-कल्याण के लिये उनके द्वारा सिद्धांत निरूपित किये गये। अपनी निर्भीकता एवं साधुता के बल पर इन्होंने कट्टर पंथियों एवं पाखंडियों को परास्त किया। इनके उपदेश धीरे-धीरे फैलते गये और कालक्रम से बौद्ध धर्म के रूप में चरितार्थ हुए।

इस संदर्भ में पंडित जवाहर लाल नेहरू अपनी पुस्तक में लिखते हैं—"बुद्ध के जन्म के समय भारत में पुराना वैदिक धर्म प्रचलित था। लेकिन वह बहुत बदल गया था और अपने ऊँचे आदर्शों से नीचे गिर चुका था। ब्राह्मण पुरोहितों ने तरह-तरह के पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड और अंधविश्वास जारी कर दिये थे, क्योंकि पूजाएँ जितनी ज्यादा बढ़ें, पुरोहितों को उतना ही अधिक फायदा पहुँचता है। जाति का बन्धन

बहुत कड़ा होता जा रहा था और आम लोग शकुन, मंत्र-तंत्र, जादू-टोने और भूतों से डरते थे। इन तरीकों से पुरोहितों ने जनता को अपनी मुट्ठी में कर रखा था और क्षत्रिय राजाओं की सत्ता को चुनौती देने लगे थे।...उसी समय बुद्ध एक लोकप्रिय सुधारक के रूप में प्रकट हुये और उन्होंने पुरोहितों के इन अत्याचारों पर और पुराने वैदिक धर्म में जो बुराइयाँ घुस आई थीं, उन सब पर हमला बोल दिया। उन्होंने सदाचारी जीवन बिताने और भले काम करने पर जोर दिया और पूजा-पाठ वगैरह का निषेध किया। उन्होंने अपने अनुयायी भिक्षु और भिक्षुणियों की संस्था 'बौद्ध संघ' का गठन किया।[9]

राजगृह आने पर महात्मा बुद्ध सर्वप्रथम यष्टिवन में अपने शिष्यों के साथ रुके। उनके आगमन का समाचार सुनकर मगध सम्राट बिम्बिसार अपने मंत्रियों एवं ब्राह्मणों के साथ उनसे मिलने गया। बुद्ध के साथ वहाँ काश्यप बन्धु भी उपस्थित थे। काश्यप बन्धुओं को देखकर बिम्बिसार एवं उपस्थित जन समुदाय संशय में पड़ गये और उनके लिये यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कौन किसका शिष्य है? बुद्ध बिना कहे लोगों की भ्रांति को समझ गये और उन्होंने उरूवेल काश्यप से कहा—"हे उरूवेल निवासी काश्यप! तुम्हीं बोलो कि तुमने अग्निहोत्र कर्म का त्याग क्यों किया?"[10] तभी सभासदों के बीच तत्क्षण काश्यप ने उद्घोषणा के लहजे में कहा 'रूप, शब्द, रस ये सब यज्ञ से प्राप्त होते हैं।—काम भोगों के रूप, रस और शब्द में कामिष्ट यज्ञ करते हैं। ये रागादि उपाधियाँ मल हैं। इसका मैंने अनुभव किया। अतएव यज्ञ एवं हवन से मुक्ति हुई। इतना कहकर उरूवेल काश्यप ने बुद्ध के चरणों में माथा टेक दिया और बोला "भगवान् मेरे शास्ता हैं और मैं उनका शिष्य हूँ।" तब राजा बिम्बिसार, श्रेणिक एवं समागत लोगों के मन से संभ्रम की अवस्था दूर हुई और लोगों ने बुद्ध को पहचान लिया। फिर सभी भगवान् बुद्ध के चरणों में लेट गये। बिम्बिसार एवं उनके सहयोगियों ने तभी दीक्षा ग्रहण कर ली। दूसरे दिन राजा बिम्बिसार ने बुद्ध को शिष्यों के साथ पधारने का निमंत्रण दिया। उसने आगे कहा—मेरी पाँच इच्छाएँ पूर्ण हो गईं। कुमारावस्था में मेरे मन में पाँच कामनाएँ उत्पन्न हुई थीं, वे हैं:[11]

1. राज्याभिषेक 2. मगध में यथार्थ बुद्ध का शुभागमन 3. बोधिसत्व के विराजने पर श्रेणिक द्वारा उनकी सेवा 4. बुद्ध-द्वारा धर्मोपदेश 5. उनको जानना।

---

9. विश्व इतिहास की झलक, प्रथम खंड, पं. जवाहर लाल नेहरू, पृ. 57-58.
10. आदित्य सुत्त (संयुक्त निकाय), 34, 1, 56.
11. महावग्गो, 1, 4, 1, 8.

राजा बिम्बिसार ने प्रेम के वशीभूत श्रद्धापूर्वक उनके निवास के लिये अपना प्रसिद्ध 'वेणुवन' दान में दे दिया और उसमें एक बौद्ध-विहार का निर्माण भी करा दिया।[12] यह बौद्ध-विहार विश्व का सबसे पहला एवं बड़ा बौद्ध-विहार सिद्ध हुआ। बिम्बिसार की दीक्षा बुद्ध के धर्म-प्रचार की दृष्टि से अत्यंत लाभकारिणी सिद्ध हुई। वस्तुतः बुद्ध के लिये वह दीक्षा धर्म चक्र संचालन के लिये विद्युत का काम करने लगी। इसका पहला प्रभाव यह हुआ कि पूरे मगध में विद्युत गति से बौद्ध धर्म फैल गया एवं बुद्ध ने अपने धर्म का सिक्का उस धरती पर जमा लिया। राजगृह और बुद्ध के सम्बन्ध में कुछ लिखने के साथ यह लिखना अनिवार्य है कि इसी धरती पर उनके दो प्रधान शिष्यों का उदय हुआ। वे शिष्य थे—सारिपुत्र एवं मोद्गलायन।

राजगृह में विक्षेपवादी दर्शन के दार्शनिक संजय का आश्रम था। उसी आश्रम में सारिपुत्र एवं मोद्गलायन छात्र के रूप में रहते थे। ये दोनों बाल-ब्रह्मचारी थे। एक दिन सारिपुत्र की अश्वजीत नामक बौद्ध भिक्षु से भेंट हुई। उस भिक्षु ने बताया कि वह दीक्षा पाकर कृतार्थ था। अश्वजीत ने जो धर्मपर्याय बतलाया वह इस प्रकार है—"हेतु (कारण) से उत्पन्न होने वाली जितनी वस्तुएँ है, उनके हेतु हैं। यह तथागत बतलाते हैं। उसका निरोध है, उसको भी बतलाते है। यही महाश्रवण का वाद है।"[13]

सारिपुत्र एवं मोद्गलायन दोनों ने दार्शनिक संजय को छोड़ दिया और आश्रम से विलग होकर भगवान् बुद्ध से दीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर प्रवज्या ग्रहण करने के पश्चात् दोनों से बुद्ध ने कहा—"दुख के क्षय के लिये अच्छी तरह ब्रह्मचर्य का पालन करो।" सारिपुत्र एवं मोद्गलायन दोनों भिक्षुओं का महत्व बौद्धधर्म में अत्यधिक है। ये श्रेष्ठतम बौद्ध भिक्षु माने गये हैं। स्वयं बुद्ध ने श्रावस्ती की एक सभा में ऐसा उद्घोष किया था।[14]

सारिपुत्र की साधुता एवं ज्ञान पर बुद्ध को कितना विश्वास था; वह इससे जाना जा सकता है कि भगवान् बुद्ध ने इससे ही अपने पुत्र राहुल को दीक्षा दिलायी तथा उसका नामकरण सारिपुत्र ने ही किया था। इसी भिक्षु की देखरेख में राहुल की बौद्ध-शिक्षा पल्लवित होकर फली-फूली एवं सुदृढ़ हुई। अपने समय का सारिपुत्र अद्वितीय धर्मोपदेशक था। देवदत्त ने भगवान् बुद्ध का विरोध किया था। वह बौद्ध

---

12. आदित्त परियाय सुत्त और विनय पिटक, 1, 1, 17.
13. ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह। ते सञ्चयो निरोधो एवं वादि महासमजोति।। भगवान गौतम बुद्ध, भदन्त बोधानन्द महास्थविर, पृ. 50.
14. चुल्ल वग्गो संघ भेदक खन्धक, 7, 2, 8.

धर्म का काँटा था। उसने विद्रोह कर पाँच सौ भिक्षुओं को भटकाने का काम सफलता पूर्वक कर लिया। संघ के भिक्षु-शिष्यों को भटकते देख बुद्ध चिंतित हो गये। देवदत्त के इस कर्म के प्रतिकार में सारिपुत्र एवं मोद्गलायन दोनों उठ खड़े हुये। देवदत्त उन पाँच सौ भिक्षुओं के साथ गया शीर्ष पर चला गया था और उन्हें प्रभावित कर उसने एक नये संघ की स्थापना कर ली थी। मोद्गलायन एवं सारिपुत्र दोनों वहाँ गये और शास्त्रार्थ द्वारा देवदत्त को परास्त किया एवं भिक्षुओं को अपने पक्ष में करते हुये देवदत्त द्वारा बनाये गये संघ को समाप्त कर दिया।[15]

मोद्गलायन ने लगभग 55 (पचपन) वर्षों तक बौद्ध धर्म एवं संघ की सेवा की। वह इतना तेज था और उसकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि मात्र सात दिनों की साधना में ही उसने 'अर्हत' को प्राप्त कर लिया था। सामान्यत: आतंकी समाज के लिये आतंक पैदा करते हैं, पर यह भी एक विचित्र बात है कि धार्मिक आतंकियों एवं बौद्धधर्म-विरोधियों के लिये मोद्गलायन अपनी बौद्धिक प्रखरता के फलस्वरूप आतंकी बन गया था। बौद्धधर्म विरोधियों का राजगृह में उसने करीब-करीब दमन कर दिया था, पर बेचारा स्वयं इसका शिकार बन गया। किसी द्रोही ने उसकी हत्या कर दी। भगवान् बुद्ध ने उसके लिये धातु पर चैत्य बनवाया।[16]

महाकाश्यप बौद्ध धर्म का तीसरा रत्न था। इस ब्राह्मण गृह-पति का पहला नाम पिप्पली था। बौद्धदीक्षा के बाद यह काश्यप नाम से विख्यात हुआ। वह विद्वान था। वैदिक साहित्य और दर्शन पर उसकी अच्छी पकड़ थी।[17] भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन महीने के बाद इसने लगभग पाँच सौ भिक्षुओं की एक सभा कराई जिसका धर्माचार्य वह खुद बना। इस महासम्मेलन को बौद्धों की प्रथम संगीति के नाम से जाना जाता है। इसका उद्देश्य बौद्ध-धर्म को सुव्यवस्थित करना था। वह कितना महान् था, इसे लक्ष्य करने के लिये यह जानना चाहिये कि उसके नाम पर एक महाकाश्यपीय सम्प्रदाय ही चल पड़ा। और तो और दीक्षा देने के बाद भगवान् बुद्ध ने काश्यप के शरीर पर से उसकी रेशमी चादर उतार ली और उसकी देह पर अपना चीवर रख दिया। महाकाश्यप की पत्नी कपिलायिनी भी पाँच सौ नारियों के साथ दीक्षा लेकर बौद्ध-धर्म में दाखिल हो गई।[18]

अपने धर्म के प्रचार में, उसे सुदृढ़ करने के लिये बुद्ध ने लगभग छियालीस

15. **विनय पिटक**, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 465-466 तथा **बुद्धचर्या**, पृ. 7, 2, 1.
16. **दीघ निकाय**, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 465.
17. **थेरीगाथा** (अट्ठकथा), पृ. 30.
18. **संयुक्त निकाय**, पृ. 15.

वर्षों का समय लगाया।[19] राजगृह में बुद्ध के वर्षावास के संबंध में प्रमाणों से सिद्ध होता है कि धर्म-प्रचार के सिलसिले में उन्होंने दूसरे से लगातार चौथे वर्ष एवं सत्रहवें तथा बीसवें वर्ष में वर्षावास राजगृह में ही किया था। दार्शनिक संजय के 250 (ढाई सौ) शिष्यों ने बुद्ध के आश्रम में जाकर प्रवज्या ले ली। इस घटना से राजगृह गूँज उठा। कोलाहल मचने लगा। गृहस्थ परिवार के बच्चे इसके प्रभाव में आकर सिर मुड़ाने लगे। घर-द्वार छोड़कर सन्यासी बनने लगे। लोगों के कथन थे—यह गौतम अपुत्र बनाने के लिये उतरा है। विधवा बनाने के लिये आया है। और कुल का नाश करने के लिये पहुँचा है।[20] इस निन्दनीय कार्य को प्रोत्साहित करने में कर्मकाण्डी अधिक रुचि ले रहे थे। भिक्षुओं ने जब शिकायत की तो बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओं! इस तरह के निन्दा-वाक्य केवल एक सप्ताह तक रहेंगे। अपने आप एक सप्ताह के बाद समाप्त हो जाएंगे।" वास्तव में हुआ भी वही, निन्दकों ने घुटने टेक दिये और बौद्धधर्म अपनी राह पर अप्रतिम गति से बढ़ता गया।

अवन्ति के राजा चण्डप्रद्योत को जब ज्ञात हुआ कि राजगृह के लोगों को महात्मा बुद्ध ने अपने धर्मोपदेश की सुधा का पान करा दिया है; तो उसने अपने विद्वान् ब्राह्मण पुरोहित कात्यायन को राजगृह भेजा। कात्यायन अवन्ति नरेश का संवाद वाहक, दूत बनकर बुद्ध को अवन्ति आने का निमंत्रण दे गया था।[21] राजगृह आकर स्वयं कात्यायन ने प्रवज्या ग्रहण कर ली। उसने भगवान् बुद्ध को अवन्ति नरेश का आग्रह पूर्ण आमंत्रण सुनाया तथा वहाँ चलने के लिये निवेदन किया। बुद्ध ने अवन्ति (उज्जैन) जाने से इन्कार कर दिया, किंतु उन्होंने महाकात्यायन को वहाँ धर्मोपदेश देने के लिये अधिकृत किया।

महात्मा बुद्ध एवं उनके धर्म की ख्याति धीरे-धीरे काफी फैल गई। दूर-दूर तक इसकी रोशनी पहुँच चुकी थी। बुद्ध के पिता शुद्धोधन ने जब यह जाना कि उनके पुत्र को अलौकिक ज्ञान प्राप्त हुआ है और लोग ज्ञानामृत पी रहे हैं तो उन्होंने बुद्ध को कपिलवस्तु आने का निमंत्रण राजमंत्रियों द्वारा नौ बार भेजा; पर कोई कपिलवस्तु वापस नहीं गया। जाने वाला हर मंत्री (संदेशवाहक) बुद्ध से प्रवज्या लेकर संघ का कार्य करने लगा। अंत में शुद्धोधन ने अपने निजी सहायक कालउदायी को भेजा। उसने भी राजगृह जाकर बुद्ध से दीक्षा ले ली, किंतु कुछ दिनों के बाद

---

19. अंगुत्तर निकाय (अट्ठकथा), पृ. 2, 4, 5.
20. महावग्गो, पृ. 1, 4, 2/5.
21. अंगुत्तर निकाय, पृ. 1, 1,10

उसने उन्हें अपनी जन्मभूमि कपिलवस्तु ले जाने में सफलता प्राप्त कर ली।

राजगृह के वेणुवनकलंदक-निवाप में बुद्ध ने अपने पुत्र राहुल को काय कर्म, वचन-कर्म एवं मनः कर्म के परिशोधन का मंत्र बतलाया था।[22] एक समय राजगृह में ही रोचक घटना घटी। राध नाम का एक ब्राह्मण था, जो वैदिक कर्मकाण्डियों का पक्षधर था। वह उनके साथ मिलकर बौद्ध धर्म के विरोध में दुष्प्रचार करता था। बाद में उसकी मनसा बदली और वह बौद्ध धर्म में दीक्षित होना चाहता था। संघ के तमाम भिक्षुओं ने उसके दाखिले का विरोध किया।[23] राध अनशन पर बैठ गया।[24] बुद्ध को इसकी जानकारी मिली। उन्हें ज्ञात हुआ कि हठयोग के सहारे प्राण त्याग पर राध अडिग है। तब उन्होंने सारिपुत्र को बुलाकर कहा—"सारिपुत्र! तुम्हें इस ब्राह्मण का किया कुछ उपकार याद है! सारिपुत्र ने उत्तर में भगवान् से कहा—हाँ भगवन्! मुझे राजगृह में भिक्षा के लिये घूमते समय इस ब्राह्मण ने कलछी भर भात दिलवाया था।"[25] इतना सुनकर बुद्ध ने कहा—'साधु सारिपुत्र! सत्यपुरुष कृतज्ञ होते ही हैं। उन्होंने सारिपुत्र को प्रवज्या देने की विधि बतला दी और उसने तदनुकूल धर्मोपदेश देकर राध को कृतार्थ किया। यह राध आगे चलकर प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु हुआ। भिक्षु संघ में इसका चालीसवाँ स्थान था।

राजगृह के शीत वन में एक श्रेष्ठी ने भगवान् बुद्ध को भिक्षुओं के साथ आकर भोजन करने का निमंत्रण दिया था। उस श्रेष्ठी का बहनोई श्रावस्ती निवासी था। उसका नाम अनाथपिण्डक था। उसने राजगृह में भगवान् बुद्ध से धर्मोपदेश प्राप्त किया और उन्हें श्रावस्ती पधारने के लिये आमंत्रित भी किया। जब वे श्रावस्ती पहुँचे तो अनाथपिण्डक ने अभूतपूर्व भव्य स्वागत किया तथा करोड़ों की लागत से बने जेतवन का विहार संघ के लिये उन्हें दान में दे दिया।[26] राजगृह में एक और आश्चर्य में डालने वाली घटना घटी। पिण्डोल नामक बौद्ध भिक्षु ने एक गृहस्थ से चंदन की लकड़ी पाने के लिये लालच के वशीभूत ऋद्धि प्रतिहार्य (यौगिक चमत्कार) का प्रदर्शन किया। राजगृह में यह चर्चा होने लगी कि बौद्ध भिक्षु इतने लालची हो गये हैं कि तुच्छ वस्तु के लिये भी ऋद्धि प्रतिहार्य का प्रदर्शन करते फिरते हैं। जब बुद्ध को इस घटना की जानकारी हुई तो उन्होंने चन्दन के उस

---

22. मज्झिम निकाय, 2, 2, 1.
23. महावग्गो, 1, 5, 5, 1.
24. — वही, 1, 5, 5, 1.
25. — वही, 1, 5, 5, 1.
26. अंगुत्तर निकाय, 1, 2, 1, 7.

पात्र को तुड़वा दिया तथा बौद्ध भिक्षुओं को हिदायत दी कि वे योगबल का चमत्कारिक प्रदर्शन न करें। योगबल के प्रदर्शन का अधिकार उन्होंने अपने पास सुरक्षित रख दिया। राजगृह के एक मेले में बुद्ध ने अपने कुछ शिष्यों को गीत गाते देखा। यह समय राजगृह में उनके चतुर्थ वर्षावास का था। वे दुखी हुए तथा गीत गाने और सुनने दोनों पर प्रतिबंध लगा दिया।[27] इतना ही नहीं एकाध घटना और द्रवित करने वाली है। राजगृह में कुछ ऐसे भी भिक्षु थे जो स्नान के समय जल-विहार करते थे। स्नान के समय तैल-लेपन-मर्दन भी चलता था। स्नानोपरांत शरीर पर अंगराग एवं पाउडर के प्रयोग पर भी उनकी आस्था बनी हुई थी। लोक-जिह्वा से चली बात बुद्ध के कानों में पहुँची। लोग कहने लगे कि उनके शिष्य भी विलासी जीवन-यापन करते है। तब बुद्ध ने सभी श्रृंगारी प्रसाधनों एवं उनके प्रयोग पर रोक लगा दी।[28]

राजगृह में बुद्ध सत्रहवाँ वर्षावास व्यतीत कर रहे थे। उनका निवास वेणुवन-कलंदक में था। तभी राजगृह में भीषण अकाल पड़ा। वहाँ के निवासी बौद्ध संघ को भोजन देने में असमर्थ हो गये।[29] बुद्ध ने इस प्रतिकूल परिस्थिति एवं आपदा के समय संघ के भिक्षुओं के लिये नूतन विधान किया, जिसके अंतर्गत उदेश भोज, शलाक, पाक्षिक उपोसथिक, प्रदिप्रतिक का समाहार है। संघ के अन्दर अन्य जिन नई व्यवस्थाओं का प्रारंभ बुद्ध-द्वारा किया गया, उनका उल्लेख इस प्रकार है— शयनासन, प्रज्ञापक, भाण्डारिक, चीवर प्रतिग्राहक, चीवर भाजक, चवागू-भाजक, फल-भाजक, खाद्य-भाजक, अल्प-मात्रक, विसर्जक, शाटिक-ग्रहापक, आरामिक, प्रेषक एवं श्रावणोर प्रेषक आदि।[30]

कलंदक निवाप से कुछ दूर पर एक परिव्राजक जिसका नाम सुकुलदायी था मोर निवाप नामक स्थान में रहता था। वहाँ जाकर बुद्ध उसे अपना धर्मोपदेश देते थे ताकि वह उनका धर्म स्वीकार कर ले। वह करीब-करीब सहमत भी हुआ, लेकिन अंततः मित्रों के दबाव में उसने बौद्ध धर्म नहीं स्वीकारा। एक दिन इसी कलन्दक निवाप से भगवान् बुद्ध पिण्डपात के लिये राजगृह की ओर जा रहे थे। उन्होंने मार्ग में सिगाल नामक एक गृहस्थ को स्नान करने के पश्चात् दिशाओं को प्रणाम करते देखा। बुद्ध ने दिशाओं को नमस्कार करने का उद्देश्य पूछा। उसने

---

27. चुल्ल वग्गो, 5, 1, 5, विनय पिटक, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 421.
28. चुल्ल वग्गो, 5, 1, 1-6.
29. —वही, 6, 1.
30. विनय पिटक, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 475-76.

बताया कि उसे पिता ने ऐसा करने का आदेश दिया था। तब गौतम बुद्ध ने छह दिशाओं के नमन करने का रहस्य बतलाया जो इस प्रकार नामित है–(1) माँ-बाप (2) आचार्य (3) धर्मपत्नी (4) मित्र (5) सेवक (6) साधु-ब्राह्मण की सेवा। उस गृहस्थ को और अधिक प्रभावित करने के लिये उन्होंने पंचशील का उपदेश दिया। इतना ही नहीं, पाप के कौन चार स्थान हैं, उनका संकेत देते हुये बुद्ध ने कहा कि वे चार स्थान है:– द्वेष, मोह, राग और भय। इनमें पाप का निवास है। गृहपति को यह भी उपदेश दिया कि आदमी को छह विकारों से दूर रहना चाहिये। वे विकार है–संपत्ति-अर्जन, मद्य-सेवन, चौराहे की सैर, नाच-गान तमाशे में रुचि, दुष्टों की संगति एवं आलस्य। मित्र और शत्रु की व्याख्या करते हुये उन्होंने बताया कि उपकारी, समान दुख-सुखी, हितवादी एवं अनुकम्पक मित्र तथा पर, धनहारी, बातुनी, खुशामदी एवं विनाश-स्रष्टा शत्रु होते हैं। बुद्ध के इन लम्बे उपदेशों का प्रतिफल यह हुआ कि गृहस्थ सिगाल उनका शिष्य बन गया।[31]

जब बुद्ध कलंदक निवाप में निवास कर रहे थे तभी उनके शाक्य कुल के कतिपय जिज्ञासु उनके दर्शनार्थ आये थे।[32] दर्शन के पश्चात् एक अति महत्वपूर्ण प्रश्न उन लोगों ने बुद्ध से पूछा। प्रश्न था–महाराज! आपके शाक्य कुल के सर्वश्रेष्ठ श्रमण कौन हैं? उत्तर में उन्होंने मैत्रायणी पुत्र का नाम बताया। श्रेष्ठी और गृहपतियों के एक निवेदन को मानते हुये बुद्ध ने दासों तथा कर्जदारों को प्रवज्या ग्रहण करने पर प्रतिबंध लगा दिया। वे क्रमशः मालिक एवं महाजन की अनुमति पर ही प्रवज्या ले सकते थे। राजगृह में विशाख नाम का एक गृहस्थ था जो बुद्ध का धर्मोपदेश सुनकर विरक्त हो गया और उसने प्रवज्या ले ली। उसकी पत्नी धर्मदिन्ना भी पति का अनुसरण करती भिक्षुणी बन गई। यह बुद्ध के अलौकिक प्रभाव की प्रखर दीप्ति है। समग्रतावादी व्यक्तित्व का चमत्कार है। महामानव, महापुरुष, धर्मप्रणेता के व्यक्तित्व की महिमा है।

कलन्दक निवाप में निवास करने के समय बुद्ध ने अपने शिष्य अचिरावत[33] के सहयोग से अजातशत्रु के छोटे भाई जयसेन को बौद्ध भिक्षु बनाने का प्रयास किया। इस काम में जयसेन का मामा भूमिज[34] का भी सहयोग था; किंतु प्रयास विफल हुआ; जयसेन बौद्ध भिक्षु नहीं बन सका।[35] कलन्दक निवाप का बौद्ध साहित्य

31. दीघ निकाय (सिगालोवाद सुत्त), 3, 8.
32. मज्झिम निकाय, 1, 3, 4.
33. – वही, 2, 3, 3.
34. विनय पिटक, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 14-15.
35. बौद्ध धर्म और बिहार, हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', पृ. 103.

में बहुत महत्व है। इसी स्थान पर बुद्ध ने अपने प्रधान शिष्य सारिपुत्र को विषय त्याग एवं स्मृति-स्थान का महत्व बतलाया था।[36]

राजगृह के गृद्धकूट पर्वत पर भी बुद्ध आये थे। ऋषिगिरि पर्वत के सन्निकट पर्णकुटीर निर्मित कर अनेक बौद्धभिक्षु निवास करते थे। ऐसा माना जा सकता है कि यह बुद्ध का बीसवाँ वर्षावास था। पावस ऋतु की समाप्ति के पश्चात् भिक्षु प्राय: भ्रमण में चले जाते थे। उन्हीं भिक्षुओं में एक धनिय नामक भिक्षु था जो कुम्भकार जाति का था। एक बार वर्षाकाल के बाद वह भ्रमण में नहीं गया था। संयोगवश जलावन चुनने वाली स्त्रियों ने उसकी कुटिया को उजाड़ दिया। उस भिक्षु ने पुन: अपनी कुटिया बना ली। फिर एक सप्ताह के बाद उसकी कुटिया का वही हाल हुआ। इस बार धनिय ने ठोस कुटिया बना ली। क्या गरीब गृहस्थ परिवार की स्त्रियाँ बौद्ध भिक्षुओं से घृणा करती थी, ऐसा माना जाए! एक दिन बुद्ध गृद्धकूट पर्वत से शिष्यों के साथ नीचे उतर रहे थे। उन्होंने धनिय की आकर्षक ठोस कुटिया देखी। उन्हें विस्मय हुआ और उन्होंने कुटिया उजड़वा दी। कुटिया का मोही बौद्ध भिक्षु धनिय मौन नहीं रहा, उसने पुन: अच्छी ठोस कुटिया उसी तरह बना ली। भगवान् बुद्ध और उनके एक भिक्षु के बीच यह कार्य कैसा है?

धनिय की कुटिया की दीवारें लकड़ी के तख्ते से बनी थीं और वे तख्ते राजा बिम्बिसार के गुदाम के थे। एक दिन राजा को मंत्री वर्षकार ने गुदाम का निरीक्षण किया और देखा कि तख्ते गायब हैं। मंत्री ने राजा से शिकायत की और भिक्षु धनिय को राजदरबार में बुलाया गया। राजा ने पूछा—धनिय मैंने तुम्हें तख्ते कब दिये थे? उत्तर में उसने कहा—महाराज! जब आपका राजतिलक हो रहा था, तब आपने घोषणा की थी कि श्रमण-ब्राह्मण को मैं काष्ठ देता हूँ। इसका वे उपयोग करें। यह उत्तर सुनकर राजा मौन रह गया। इस घटना की जानकारी बुद्ध को हुई। तब उन्होंने एक नियम प्रतिपादित किया। वह यह कि जो भिक्षु पाँच मासे मूल्य का सामान बिना माँगे लेगा, उसे संघ से निकाल दिया जाएगा। वह चोरी की पराजिका कहलाती है। बौद्ध धर्म में मैथुन पराजिक भी इसी तरह का एक विधान है।

बुद्ध गृद्धकूट पर्वत पर थे। शक्र ने बौद्ध धर्म की प्रशंसा की थी। उनके मुख से प्रशंसा सुनकर गन्धर्व पुत्र पंचशिख वहाँ बुद्ध से मिलने आया था।[37] एक दिन भगवान् बुद्ध वैदिक पर्वत की इन्द्रशाप-गुफा में विहार कर रहे थे, तभी स्वयं शक्र

---

36. मज्झिम निकाय, 3, 5, 9.
37. दीघ निकाय, 2, 6.

उनसे मिलने आये। इसी गुफा में गन्धर्व पुत्र ने बुद्ध को वीणा-वादन सुनाया था।

राजगृह दानियों का केंद्र रहा है और इस संबंध में एक कथा प्रचलित है। बौद्ध भिक्षु भदंत एक दिन राजगृह में चिल्ला-चिल्लाकर बोल रहा था—शास्ता (बुद्ध) के लिये सर्वोत्कृष्ट दान दो। वह मार्ग पर घूम रहा था। उसकी पुकार सुनकर दानियों ने सोना, चाँदी एवं अन्य रत्नाभूषण दान में दिये। भिक्षुभदंत ने इन दानित सामग्रियों को ग्रहण नहीं किया। वह सर्वोत्कृष्ट दान देने की आवाज लगाता रहा। लोग आश्चर्य भ्रमित थे कि आखिर वह मूल्यवान वस्तु को क्यों ठुकरा रहा है? तभी जंगल की ओर से एक निर्धन महिला आयी और उसने अपना अधोवस्त्र दान में दे दिया और वह निर्वस्त्रा होकर ओट में छिप गई। उसके पास लज्जानिवारण के लिये मात्र वही अधोवस्त्र था, जो उसने दान में दे दिया था। बौद्ध भिक्षु भदन्त ने उस दान को ग्रहण किया और अपने को भाग्यवान भी प्रमाणित किया। इससे लक्ष्यार्थ यही आता है कि अपना सर्वस्व दान ही महादान है, सर्वोत्कृष्ट दान है।[38]

बौद्धों की एक देवी का नाम हारीति है। वह हिन्दुओं की शीतला माता की तरह प्रसिद्ध एवं पूज्य है। राजगृह के क्षेत्र में आज भी वह शीतला माता मानकर पूजी जाती है। एक छोटी कथा हारीति से संबंधित एवं प्रचलित है। गौतम बुद्ध राजगृह में रह रहे थे। वहीं एक हारीति नाम की राक्षसी रहती थी। उसे पाँच सौ संतानें थी। वह राक्षसी प्रतिदिन पड़ोस से किसी-न-किसी बच्चे को चुरवाती थी और उसे मारकर उसका मांस-भक्षण कर जाती थी। उसके आतंक से लोग आहत और आतंकित हो गये। एक दिन लोगों ने बुद्ध से मिलकर हारीति से त्राण दिलाने के लिये निवेदन किया। भगवान् ने निकट भविष्य में त्राण दिलाने का वचन दिया। एक दिन बुद्ध ने हारीति के सबसे छोटे पर सर्वाधिक प्रिय बच्चे को चुरवा कर कहीं एकान्त स्थान में रखवा दिया था। हारीति बच्चे के अपहरण से व्याकुल हो उठी। वह जानती थी कि यह भगवान् का अवतार लोक-व्यथा को खत्म करने के लिये हुआ है। वह उनके निकट पहुँचकर रोने लगी और चरणों पर गिरकर उसने बच्चे को बचाने के लिये आग्रह किया। बुद्ध की सस्मित आकृति पर आभा छिटक रही थी। आभामंडित मुखमंडल को देखकर हारीति प्रभावित थी। बुद्ध ने कहा—तुम्हें तो पाँच सौ बच्चे हैं। मात्र एक के खोने पर तुम इतना व्याकुल हो। जिसे एक बच्चा है उसे भी पकड़कर मार देती हो! तुम ही सोचो कि उसे कितना कष्ट होगा! तुम्हारा बच्चा मिल जाएगा! तुम प्रतिज्ञा करो—अब से किसी

---

38. द्रष्टव्य, डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव का निबंध 'राजगृह'।

बच्चे को नहीं मारोगी! किसी को क्षति नहीं पहुँचाओगी! उसने बुद्ध को वचन दिया कि वह आगे किसी बच्चे को नहीं मारेगी। उसे उसका बच्चा मिल गया। उसने आँखों की उष्ण अश्रु-धार से बुद्ध के पदों का प्रक्षालन किया। वह उनकी सेविका बन गई। तत्पश्चात वह हारीति राजगृह-क्षेत्र में संतान-रक्षिका के रूप में विख्यात होकर पूजी जाने लगी। उसकी मूर्ति लाहौर के संग्रहालय में सुरक्षित है।[39]

एक बार सुमागधा पुष्करिणी के तट पर बने मोर निवाप आश्रम में गौतम बुद्ध टहल रहे थे। उदम्बरिका आश्रम में तीन हजार शिष्यों के साथ रहने वाले निग्रोध परिव्राजक ने एक बार बुद्ध के प्रश्नों के उत्तर देते हुए कहा:—"आप किस तरह अपने श्रावकों को विनीत करते हैं? आपका वह कौन सा धर्म है?"[40] अंतत: निग्रोधशास्त्रार्थ में बुद्ध से पराजित हो गया।

गृद्धकूट पर्वत पर आटानाटीय रक्षा की आवृत्ति की गई थी।[41] इसमें तंत्रमंत्र के प्रयोगों से संबंधित विषयों की चर्चाएँ हुई तथा अनेक दृश्य भी दिखाये गये।

अंग जनपद के सोन कोटिविंश नामक श्रेष्ठि पुत्र ने भगवान् बुद्ध से राजगृह में ही उपसंपदा ली थी।[42]

एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के तपोदाराम में निवास कर रहे थे।[43] वहाँ उनका एक शिष्य भिक्षु समिद्धि भी था। एक रात ब्रह्ममुहूर्त अर्थात् भोर में वह गर्म झरने में स्नान करने गया। स्नानोपरांत जब वह वहाँ से चला तो उसने एक देव पुरुष की छाया देखी। उसे लगा कि वह उससे पूछता है कि भद्देकरत्त के उद्देश्य और विभंग क्या है? भिक्षु निरुत्तर हो गया। छाया रूपी देव पुरुष कुछ और कहकर विलीन हो गया। तब बुद्ध कहीं जाने को तैयार थे। भिक्षु ने भद्देकरत्त का अर्थ पूछा। उन्होंने इसका अर्थ 'अतीत का अनुमान' बताया। वह इसका अर्थ नहीं समझ सका तो महाकात्यायन ने इसकी व्याख्या की और उसे समझाया।

अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए बुद्ध राजगृह के कलन्दक निवाप में पहुँचे। उनके आगमन के पूर्व उनका चचेरा भाई द्रोही देवदत्त वहाँ पहुँचा हुआ था। उसने ऋषि प्रतिहार्य द्वारा अपने जादू का प्रभाव वहाँ फैला दिया। अजातशत्रु भी उसके प्रभाव से प्रभावित था। वह देवदत्त से इतना प्रभावित और आकर्षित था कि प्रतिदिन

39. मासिक सरस्वती (प्रयाग), दिसंबर 1935.
40. दीघ निकाय (उदम्बरिक सिंह निषाद सुत्त), 3, 2.
41. — वही, 3, 9.
42. महावग्गो, 5.
43. मज्झिम निकाय, 3, 4, 3.

सन्ध्या काल में पाँच सौ रथों को सजाकर उसके पास जाया करता था।[44] देवदत्त ने ही अजातशत्रु को पिता बिम्बिसार के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा दी थी। बौद्ध साहित्य के अनुसार उसने अंत में पिता बिम्बिसार की हत्या भी कर दी तथा मगध का राजा बन बैठा।[45]

देवदत्त षड्यंत्रकारी था। मगध सम्राट की हत्या कराने के बाद वह बुद्ध की ओर मुड़ा और उनकी हत्या का षड्यंत्र करने लगा। उसने एक हत्यारे को उनके पास भेजा। हत्यारा बुद्ध के निकट पहुँचकर उनके तेज से हतप्रभ हो गया और उसने शरण मांग कर शरण ले ली। आध्यात्मिक शक्ति की महिमा प्रबल होती है तथा उसका तेज प्रभामंडल के तेज से भिन्न नहीं होता। बुद्ध के व्यक्तित्व ने हत्यारे को यह बता दिया। इस योजना की असफलता के बाद देवदत्त स्वयं बुद्ध की हत्या के लिये षड्यंत्रकारी घात लगाने लगा। एक दिन गौतम बुद्ध गृद्धकूट पर्वत के पादमूल में चिन्तन की मुद्रा में भ्रमण कर रहे थे। तभी देवदत्त ने पर्वत की चोटी पर से एक बड़े चट्टान खंड को बुद्ध की ओर लुढ़का दिया। यह प्रहार हत्या के उद्देश्य से किया गया था। चट्टान उनके निकट आते-आते रुक गयी, पर उसका एक छोटा टुकड़ा उनके पैर में आ लगा। पैर में थोड़ी चोट पहुंची। बुद्ध को कोई घबराहट नहीं थी। भिक्षुओं ने प्रतिवाद किये, पर बुद्ध ने उन्हें रोकते हुए कहा–"तथागत की अकाल मृत्यु नहीं हो सकती। साधकों के आत्म-बल की सीमा नहीं होती है।" बुद्ध की हत्या के लिए देवदत्त की तीसरी चाल भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। राजा अजातशत्रु का नालागिरि नामक पागल हाथी था। एक दिन बुद्ध जब राजगृह के राजमार्ग से भिक्षाटन के लिए जा रहे थे; तब उन्हें मारने के लिए वह हाथी छोड़ा गया। बुद्ध हाथी को आते देखकर शान्त मुद्रा में खड़े हो गये। उन्हें भय एवं चिन्ता-मुक्त देखकर द्रष्टा आश्चर्य में पड़ गये। हाथी उनके निकट जाकर प्रेमपूर्वक खड़ा हो गया। उन्होंने उसे प्रेम के मधुर भाव से आप्लावित कर दिया। बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध की साधना की महिमा का ऐसा उल्लेख है। हाथी ने अपने सूँड़ से बुद्ध का चरण-रज उठा लिया और पीछे की ओर मुड़ गया। बोध गया की वेष्टन-वेदिका पर इस दृश्य को दर्शाया गया है।

बुद्ध जब कलन्दक निवाप में रह रहे थे तो एक दिन समिय नामक परिव्राजक उनसे मिलने गया।[46] उसके कुछ प्रश्न थे जिनके उत्तर के लिए वह खाक छान

---

44. मज्झिम निकाय, 3, 4, 3.
45. चुल्लवग्ग, 7, 1, 3.
46. सुत्त निपात (समिय सुत्त), पृ. 32.

रहा था। इस संदर्भ में वह पुरण कस्सप, मक्खलिगोसाल, अजितकेशकम्बल, पकुध कच्चायन, संजयवेलट्ठिपुत्त एवं निग्गंठुनाथ सुत्त जैसे विद्वान् महात्माओं से मिल चुका था। फिर भी असंतुष्ट था, क्योंकि उसे संतोषप्रद उत्तर नहीं मिले थे। इसी संदर्भ में राजगृह आकर उसने बुद्ध से भेंट की तथा बुद्ध ने उसके प्रश्नों के उत्तर दिये। वह अर्हत प्राप्त करना चाहता था, किन्तु चार महीने की परीक्ष्यमाण अवधि के बाद उसे अर्हतों में स्थान मिला।

एक भ्रमण के क्रम में भगवान् बुद्ध एक रात भार्गव कुम्हार के घर पर रुके थे। वह उन्हें पहचान नहीं सका। तक्षशिला का ब्राह्मण शासक पुक्कसाति बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के लिए घर छोड़ चुका था। वह बुद्ध को ढूंढ़ रहा था। मार्ग में शाम हो जाने पर पुक्कसाति अर्थात् पुष्कर ख्याति उसी भार्गव कुम्हार के यहां दूसरी कोठरी में ठहरा हुआ था। दूसरे दिन यात्रा प्रारंभ करता। भार्गव और बुद्ध के बीच वार्तालाप को उसने सुना और बुद्ध की ओर मुखातिब होकर कहा– "ठीक है आबुत्स! आप सुखपूर्वक ठहर सकते हैं। आइये, अन्दर आइये!" पुष्कर की प्रतिभा अद्वितीय थी। बुद्ध उसे दीक्षित करने के लिए ललक उठे। उन्होंने उसे दीक्षा लेने की बात कही। तब तक पुष्कर बुद्ध को पहचान नहीं रहा था। उसने कहा–"आबुत्स! मैं शाक्य कुल पुत्र श्रमण गौतम की कीर्ति सुनकर उसके धर्म में दीक्षित होने के लिए आया हूं। उन्हीं का धर्म मेरा धर्म है। वही मेरे गुरु हैं।" तत्पश्चात् बुद्ध ने राजा पुष्कर से पूछा–"आपको मालूम है, श्रमण गौतम आज कल कहाँ हैं? क्या कभी उन्हें देखा है? पुष्कर ख्याति ने कहा–सुना तो था कि आजकल भगवान् श्रावस्ती में विहार कर रहे हैं। मुझे उन्हें देखने का मौका नहीं मिला। बुद्ध की वाणी मुखर हो उठी। उन्होंने कहा–"भिक्षु मैं शाक्य कुल पुत्र श्रमण गौतम हूं। आओ तुम्हें धर्मोपदेश देता हूं।" बुद्ध ने उसे संक्षेप में 'धातु-विभंग' का अर्थोद्देश्य समझाया। उन्होंने आदेश दिया–"जाओ पात्र चीवर परिपूर्ण होकर आओ। अपरिपूर्ण पात्र चीवर युक्त भिक्षु को हम दीक्षा नहीं देते।"

पुष्कर ख्याति को लगा कि अलभ्य लाभ मिल रहा है। वह पात्र एवं चीवर-संग्रह में लग गया। योग अच्छा न था, बेचारा दुर्योगवश एक पगली गाय द्वारा मारा गया। उसकी मृत्यु की सूचना पाकर वेणुवन में गौतम बुद्ध ने कहा था–"अनागामी हुआ।"

महात्मा बुद्ध अपने बीसवें वर्षावास में राजगृह प्रवास के दरम्यान अस्वस्थ हो गये थे। उन्हें पेचिस रोग था। उनके कष्ट के संबंध में शिष्य आनंद ने राजवैद्य

जीवक से कहा—"आबुस जीवक! गौतम बुद्ध का शरीर रुग्न हो गया है। औषधि के रूप में जुलाब लेना चाहते है।"[47] जीवक ने औषधि तैयार कर उनकी चिकित्सा की।

महात्मा बुद्ध राजगृह के जीवक आम्रवन में ठहरे हुये थे। राजवैद्य जीवक उनकी चिकित्सा करता था। उनकी सम्यक् देखभाल के लिये उसने एक बौद्ध विहार बनवाकर संघ को दान में दे दिया था। यह बौद्ध विहार उसके बगीचे में ही था, जिसमें बुद्ध रहते थे।

जीवक ने अवन्ति के शासक चंडप्रद्योत का इलाज भी सफलतापूर्वक किया था। रोग मुक्त होने पर अवन्ति नरेश ने जीवक के लिये उपहार में एक दुशाल भेजा। जीवक ने उसे ग्रहण कर भगवान् बुद्ध को प्रदान कर दिया। यही नहीं, जीवक ने समय-समय पर प्राप्त होने वाले अनेक उपहार संघ को समर्पित कर दिये थे। जीवक के अनुरोध पर ही महात्मा बुद्ध ने श्रमणों को गृहपति चीवर धारण करने की अनुमति दी थी। इसके पूर्व पांसु कुलिक थे।[48]

दीघ निकाय से पता चलता है कि एक रात अजातशत्रु अपने मंत्रियों एवं वैद्य जीवक के साथ प्रासाद पर बैठकर विचार विनिमय में तल्लीन था।[49] वह किसी सिद्ध पुरुष का सत्संग चाहता था। उसी की तलाश थी। अनेक नामों के प्रस्ताव आये, पर सबको निरस्त कर अजातशत्रु ने जीवक के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। जीवक ने गौतम बुद्ध का नाम प्रस्तावित किया था। वह असंख्य लोगों के साथ जीवक आम्रवन में बुद्ध से मिलने पहुँचा। बुद्ध वहीं अपने बारह (1200) सौ शिष्यों के साथ ठहरे थे। उसने बुद्ध को प्रणाम कर आसन ग्रहण किया और पूछा—हे भगवन्! ये जो भिन्न-भिन्न व्यवसाय है, जैसे—हस्ति आरोहण, अश्वारोहण, रथिक, धनुर्धर, चेलक (युद्धध्वज धारण) चलक (व्यूह रचना), पिंडदायिक (पिंड काटने वाले) उग्रराज पुत्र (वीर राजपुत्र), महानाग (हाथी से युद्ध करने वाले), शूर, चर्मयोधी (ढाल से युद्ध करने वाले), दास-पुत्र, आलारिक (बावर्ची) कल्पक (हजाम), नहापक (स्नान कराने वाला), सूद (पाचक), मालाकार, रजक, नलकार (टोकड़े बनाने वाला), कुम्भकार, गणक मुद्रिक (गिनने वाला) और दूसरे इसी प्रकार के भिन्न-भिन्न शिल्प व्यवसाय हैं, उनसे लोग इसी शरीर में प्रत्यक्ष जीविका करते हैं, उससे अपने को सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं। पुत्र, स्त्री को सुखी और

47. दोसाभिसन्नो खो आबुसो जीवक, तथागतस्य कायो। इच्छति तथागतो विरेचनं पातुंति।
48. बौद्ध धर्म और बिहार, श्री हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'.
49. दीघ निकाय (समुज्ज फल सुत्त), 1, 2.

तृप्त करते हैं। मित्र अमात्यों को सुखी और तृप्त करते हैं। ऊपर को ले जाने वाला, स्वर्ग को ले जाने वाला, सुख विपाक वाला, स्वर्ग मार्गीयदान श्रमणों को स्थापित करते हैं। क्या भगवन्! इसी प्रकार श्रामण्य (भिक्षुपन) का फल भी इसी जन्म में प्रत्यक्ष बतलाया जा सकता है?" बुद्ध ने भिक्षु के आरंभिक शील, मध्यमशील, महाशील, इन्द्रिय संयम, स्मृति, संतोष और समाधि प्रज्ञा का विस्तृत विवेचन किया और बताया कि उनकी प्रत्यक्ष प्राप्ति संभव है। अजातशत्रु संभवतः संतुष्ट नहीं हुआ। इसीलिये उदासी का बोझ ललाट पर लिये उसने वहाँ से प्रस्थान किया।

स्थिति परिवर्तित होती गई। मगध राज अजातशत्रु वज्जियों की राजधानी वैशाली पर आक्रमण करना चाहता था। उसकी साम्राज्यवादी लिप्सा बहुत प्रबल थी। वह बुद्ध का विचार जानना चाहता था। वैशाली विजय भी तो साधारण बात नहीं, टेढ़ी खीर थी। उसने वरिष्ठ परामर्श दाता मंत्री वर्षकार को उनके पास भेजा। बुद्ध उस समय राजगृह में ही थे। वर्षकार बुद्ध के आश्रम में पहुँचा। उसने बुद्ध को नमस्कार किया तथा बैठ गया। उनके समक्ष मगध राज की मंशा व्यक्त कर दी। अजातशत्रु वज्जियों की राजधानी वैशाली पर विजय चाहता है, यह जानकर बुद्ध स्तंभित हो गये। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनंद से विचार-विमर्श किया, तत्पश्चात् इस विन्दु पर अपना अभिमत व्यक्त किया।

बुद्ध ने मंत्री वर्षकार से कहा—"ब्राह्मण जब तक वज्जि सन्निपात बहुल हैं, जब तक वे एक दो बैठक करते हैं, जब तक वे अनुज्ञप्त और प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त नहीं करते, जब तक वे वृद्धों को मानते तथा पूजते हैं, जब तक वे कुलांगनाओं का सम्मान करते हैं, जब तक वे अपने चैत्यों की पूजा करते हैं, जब तक वे अर्हतों का संरक्षण करते हैं, वर्षकार! तब तक उन वज्जियों को कोई परास्त नहीं कर सकता। ये सात अपरिहार्य धर्म वज्जियों के मूल हैं।" [50]

अजातशत्रु ने तत्काल वैशाली पर आक्रमण करने की योजना स्थगित कर दी; किंतु उसके मंत्री की आंखें वैशाली पर गड़ी हुई थी। जिन सात अपरिहार्य धर्मो की चर्चा उसने बुद्ध से सुनी थी, उसके समूल विनाश के लिये वह वैशाली जाकर पिल पड़ा। अपने काम में वह सफल हुआ। फूट की अग्नि वज्जिसंघ में लपट मारने लगी और अंततः अजातशत्रु की दाल गली। युद्धोपरांत उसने वैशाली पर कब्जा कर लिया।

(1) **धम्म दिन्ना** : बौद्ध धर्म के उत्थान में राजगृह बौद्ध भिक्षुणियों के योगदान

---

50. दीघ निकाय, पृ. 3, 3.

भी स्वर्णक्षरों में अंकित करने योग्य हैं। भिक्षुणियों में अग्रणी धम्मदिन्ना भिक्षु विशाख की पत्नी थी। पति को बौद्ध भिक्षु होते देख उसने भी प्रवज्या ले ली और भिक्षुणी हो गई। यद्यपि वह अपने पति के बाद इस धर्म में आयी थी, किंतु वह अपने पति विशाख से आगे बढ़ चुकी थी।

एक धर्म-चर्चा के संदर्भ में इसका प्रमाण मिलता है कि भिक्षुणी धम्मदिन्ना अपने भिक्षु पति विशाख से अधिक धर्म ज्ञान रखती थी।[51] विशाख ने धम्मदिन्ना से पूछा—"आर्य! सत्काय की पुनरावृत्ति तो सभी करते हैं, पर भगवान् की दृष्टि में सत्काय धर्म क्या है?" उत्तर में धम्मदिना ने बताया—"पंच उपादान स्कन्धों को सत्काय कहा गया है; यथा—रूप वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।"

विशाख ने क्रम-क्रम से अन्य प्रश्नों को भी रखा और वह उत्तर देती गई। विशाख ने आगे सत्काय समुदाय, सत्काय निरोध, सत्काय निरोध गामिनी प्रतिपद उपादान स्कन्ध, सत्काय दृष्टि, आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग से संबंधित प्रश्न किये और उसे समुचित उत्तर धम्मदिन्ना द्वारा दिये गये। भगवान् बुद्ध ने इस भिक्षुणी की बहुत प्रशंसा की हैं।[52] धम्मदिन्ना का ही नाम धम्मदिन्न है।

(2) **चित्रा** : चित्रा राजगृह के एक ऐश्वर्यशाली पिता की पुत्री थी। एक बार नगर द्वार पर उसे बुद्ध के उपदेश-श्रवण का अवसर मिला और बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा जगी। वह महाप्रजापति गौतमी से दीक्षा लेकर बौद्ध धर्म में शामिल हो गई। यद्यपि वह रुग्ण रहती थी, पर अवधूत-व्रत के सेवन में उसने कटौती नहीं की और अन्तत: उसे अर्हत-पद प्राप्त हुआ।

(3) **मैत्रिका** : इसने युवावस्था पार करने के बाद गृद्धकूट पर्वत पर अवधूत-व्रत की साधना की तथा अर्हत-पद प्राप्त कर लिया।

(4) **दन्तिका** : यह श्रावस्ती की रहने वाली महिला थी। राजगृह को तीर्थ-स्थल समझती थी। कहा जाता है कि एक दिन उसने एक महावत को हाथी पर बैठकर उसे हाँकते देखा। वह चिंतन करने लगी। यदि हाथी को वश में किया जा सकता है तो वासना का दमन क्यों नहीं किया जा सकता। वह गृद्धकूट पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगी। हाथी उसका प्रेरक था। उसने योगबल से चित्तवृत्ति का दमन कर दिया।

(5) **शुक्ला** : थेरीगाथा की चौंतीसवीं बौद्ध भिक्षुणी शुक्ला ने धम्मदिन्ना से

51. दीघ निकाय, 3, 3.
52. मज्झिम निकाय, 1, 5, 4.

बौद्धधर्म की दीक्षा ली थी। इस धर्म को बढ़ाने में शुक्ला का सहयोग भी समादर के योग्य है।

(6) **सोमा** : यह मगध सम्राट के राजपुरोहित की पुत्री थी। यह भी बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर भिक्षुणी बन गई थी।

(7) **भद्रकुण्डलकेशा** : यह राजगृह के कोषाध्यक्ष की पुत्री थी। बौद्ध धर्म में इसका अत्यंत प्रशस्त स्थान है। इसने बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्र से शास्त्रार्थ किया था। उसमें पराजित होने के बाद यह बौद्ध धर्म में आयी थी। इसके पहले वह जैन धर्मावलम्बिनी थी। इसने बुद्ध से दीक्षा ली थी। इसका व्यक्तित्व महान् एवं प्रतिभा तीव्र थी; तभी तो वह लगभग पचास (50) वर्षों तक घूम-घूमकर अंग, मगध, कोशल वज्जि एवं काशी में बौद्ध धर्म का प्रचार करती रही।

(8) **क्षेमा** : यह राजा बिम्बिसार की सबसे छोटी पत्नी थी। बुद्ध से ज्ञान लाभकर वह भिक्षुणी बन गई। इसके साथ इसकी सहेली विजया भी भिक्षुणी बनी। ऐसा कहा जाता है कि कोशल राज प्रसेनजीत इसके उपदेश से बहुत प्रभावित थे और उन्हें ज्ञान-लाभ हुआ था।

(9) **शुभा** : शुभा राजगृह के एक स्वर्णकार की बेटी थी, जिसने बुद्ध के उपदेश से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म स्वीकार किया था; दीक्षा ली थी।

(10) **शुभा** (द्वितीय) : यह भी राजगृह की महिला थी। एक सुसम्पन्न ब्राह्मण परिवार में इसका जन्म हुआ था। इसने भी गौतमी से दीक्षा ली थी। एक आततायी कामी युवक ने इसके साथ दुर्व्यवहार करने की चेष्टा की थी; तभी इसने अपनी आँखें निकाल कर उसके हाथों पर रख दी।

भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हो गया। अनेक लोग उनकी अस्थि प्राप्त करने के लिये पहुँचे। मगध सम्राट अजातशत्रु ने भी उनकी अस्थि प्राप्त करने के लिये अपना दूत भेजा। अस्थियाँ प्राप्त हुई। अजातशत्रु ने राजगृह में श्रेष्ठ-चैत्य बनवाकर अस्थियों को स्थापित किया।[53]

बुद्ध के महापरिनिर्वाण (मृत्यु) के कुछ महीने बाद राजगृह में बौद्धों की प्रथम संगीति (सभा) सम्पन्न हुई जिसका आयोजक उनका प्रधान शिष्य काश्यप था; किंतु सारे सहयोग एवं समस्त व्यवस्थाएँ राजा अजातशत्रु की थीं। इसमें बुद्ध के सभी वचनों-वाणियों का संग्रह किया गया। यह संगीति (सभा) सात महीने

---

53. दीघ निकाय, 1, 1, 7.

तक चली।[54] इसमें भाग लेने वाले 500 (पाँच) सौ भिक्षुओं के ऊपर होने वाले व्यय का संभार मगध सम्राट अजातशत्रु ने वहन किया। इस संगीति (सभा) का महत्व इससे आँका जा सकता है कि बुद्ध की मृत्यु के बाद पाँच सौ वर्षों तक चलने वाले बौद्ध धर्म की आयु पाँच हजार वर्ष की हो गई।[55]

54. महावंश, 3, 37.
55. —वही, 3, 37.

अष्टम् अध्याय

राजगृह का वैभव

राजगृह (राजगीर) एक ऐसा महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल है जिस पर सदियों से पुरातत्ववेत्ताओं की दृष्टि केन्द्रित होती रही है। पहली बार, 19वीं शताब्दी के आसपास इसके पुरातन खंडहरों एवं भग्नावशेषों पर ध्यान गया जिसका उदयाचली श्रेय अंग्रेज इतिहासकार हेमिल्टन बुकानन महोदय को है। इन्होंने सन् 1946-47 के आसपास राजगृह का सर्वेक्षण किया तथा अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। किन्तु इस रिपोर्ट से इसके भग्नावशेषों तथा पुरातात्विक स्थलों पर पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ सका; उसके सारे अवयव प्रकाशित नहीं हो सके। राजगृह का उत्तरी भाग विपुल तथा वैभार पर्वत से सटा हुआ है। उक्त प्रतिवेदन से मात्र यही भाग उजागर होता है। सर्वांगीण रूप में राजगृह को प्रकाशित, उजागर करने के लिए उसके आन्तरिक भाग में प्रवेश कर सर्वेक्षण करना अनिवार्य था, जो हेमिल्टन बुकानन नहीं कर सके थे। उनका प्रतिवेदन 'ईस्टर्न इण्डिया' के प्रथम खंड में प्रकाशित किया गया था। बुकानन और किट्टो ने कम-से-कम इतना संकेत अवश्य दिया कि इसकी घाटी में बौद्ध अवशेष हैं। कनिंघम एक ऐसे पुरातत्ववेत्ता निकले जिन्होंने चीनी यात्रियों के वर्णनों को आधार बनाकर बताया कि राजगृह में पुरातन और नवीन दो नगर थे। कनिंघम ने राजगृह को पहचानने का कार्य सन् 1861-62 एवं 1872-73 में किया। उन्हें चीनी यात्री ह्वेनसांग के राजगृह वर्णन से प्रेरणा मिली थी। उनके प्रतिवेदन से पता चला कि गृद्धकूट पर्वत के आसपास बौद्ध स्तूप एवं बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के भवनों के अवशेष हैं। फलतः खुदाई से इन्हें पहचानने-जानने में सुविधा हुई।[1]

कनिंघम के बाद काफी पैनी दृष्टि देकर राजगृह को उजागर करने वाले अंग्रेज सर्वेक्षक वेग्लर महोदय हैं, जिन्होंने राजगृह के भग्नावशेषों को ठीक से पहचाना

---

1. The Cyclopean fortification walls girting the five hills with breaks also attracted the attention first of Canningham in 1901-02: **Historical Researches in Bihar**, 1912-1985, by Dr. B.P. Sinha, p. 3.

तथा प्रकाशित किया। भारतीय पुरातत्व विभाग ने खंडहरों के उत्खनन का कार्य चार चरणों में किया, अर्थात् 1905-06, 1913-14, 1954-55, एवं 1960-61 ई. में खुदाई से राजगृह के पुरावशेष प्रकाश में आये। इसके लिए श्रेय पाने वाले जो पंक्तिबद्ध विद्वान हैं, उनमें ब्लॉच, जेक्शन, डी.आर. साहनी, ए. घोष तथा डी.आर. पाटिल के नाम प्रसिद्ध हैं। इस संदर्भ में विल्सन का विचार भी जान लेना चाहिए: Wilson and Marshall (1905-06) made extensive survey of the fortification walls which in total length in twelve or thirteen miles. (HRB p.3).

कनिंघम ने मनियार मठ, जो तब जैन मंदिर कहलाता था, की खुदाई करायी थी। उक्त खुदाई से गोलाकार ईंटें एवं मूर्तियां प्राप्त हुईं। ईंटों की दीवारें भी निकली, जिन पर मूर्तियाँ निर्मित थीं। इसका उल्लेख एच. आर. बी. के पृष्ठ 3 पर किया गया है। इस संबंध में ब्लॉच महोदय की पंक्तियों का उल्लेख कर देना भी अनिवार्य प्रतीत होता है।[2] इस क्षेत्र में पुन: उत्खनन-कार्य वर्ष 1938 में आरंभ हुआ। उत्खनन से शिव, गणेश, विष्णु तथा नाग की मूर्तियां प्राप्त हुई, जिनसे प्रमाणित होता है कि वह निर्माण चौथी से पाँचवी शताब्दी का है जिसका क्रमश: रूपान्तर-परिवर्द्धन 1500 ई. तक होता रहा।

प्राचीन राजगृह

ऊपर संकेत किया गया है कि जनरल कनिंघम ने चीनी यात्री फाहियान एवं ह्वेनसांग के यात्रा विवरणों को आधार मानकर राजगृह को दो भागों में विभक्त किया है। वे घाटी में स्थित भाग को प्राचीन और पर्वत के ऊपरी मैदानी भाग को नवीन राजगृह कहते हैं। उनके इस कथन को भारतीय पुरातत्ववेत्ता भी संपुष्ट करते हैं। यह प्राचीन राजगृह पंच पर्वतों के मध्य विद्यमान है। उत्तरी गर्म जल प्रपात से दक्षिणी वाणगंगा तक यह लगभग एक किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में चार प्राकृतिक यातायाती द्वार हैं, जिनसे बखूबी भ्रमण किया जा सकता है। बिम्बिसार के शासन काल में इस परिसर, प्रक्षेत्र को दीवारों से घिरवाया गया था। ऐसा करके पर्वत मालाओं के साथ-साथ दीवारों द्वारा भी प्राचीन राजगृह को सुरक्षित किया गया था।

---

2. Bloch in 1905-06 made excavation of the site after demolishing the standing Jaina Temple. Bloch's excavation made it quite clear that the monument was not a Buddhista Stupa as Cannigham had earlier suggested but was really a Hindu monument of a peculiar construction with a interesting religious background unique in itself. HRB. p. 3.

प्राचीन राजगृह कई घाटियों के मध्य अवस्थित है जिन्हें आज विभिन्न नामों से जाना जाता है। जल के सोते इन्हें पृथक करते हैं। घाटी का पानी वैभार एवं सोन पर्वत तथा वाणगंगा से होकर राजगृह से बाहर निकलता है। आधुनिक राजगृह की घाटी से ही गया की ओर सड़क जाती है। यह घाटी समतल नहीं है। इस घाटी की खुदाई ने प्राचीन इतिहास को अतिशय संबल प्रदान किया। राजगृह की मात्र पुरातनता ही प्रकाशित नहीं हुई, वरन् अनेक ऐतिहासिक चीजें भी उपलब्ध हुईं, जिनसे राजगृह को भली-भाँति जाना-पहचाना गया। इस उत्खनन से पाषाण-भवन, बिम्बिसार का कारागृह, मनियार मठ एवं उत्तरी प्रवेश-द्वार के भग्नावशेष मिले।[3]

उत्तरी द्वार : प्राचीन राजगृह का उत्तरी प्रवेश-द्वार गर्म जलकुण्ड से दक्षिण दिशा में निर्मित था। यह पाषाण खण्डों से बनाया गया था। इसके दोनों ओर मिट्टी के बांध थे। इससे आंतरिक सुरक्षा दृढ़ होती थी। इस प्रवेश द्वार के पूर्वी भाग में जीवक-वन का अवशेष मिला है। किन्तु ठीक इसके पश्चिम में मनियार मठ का अवशेष प्राप्त हुआ है। ये सारी चीजें दृश्य हैं। आगे कुछ कहा जाय, इसके पूर्व इन ऐतिहासिक धरोहरों के संबंध में विलक्षण जानकारी प्राप्त कर लेना उचित मालूम होता है। एच. आर. बी. के पृष्ठ चार पर कुछ उद्धरण हैं जिनसे प्राचीन राजगृह की काया प्रकाशित होती है। ये उद्धरण इस प्रकार हैं:

(क) On the southern face of the vaibhara hill are two rock-cut caves. The western one is known as 'sonebhandar cave'. Canningham who had noticed the cave, believed it to be the Site of saptaparni cave, where the first Buddhist Council was held.

(ख) Stein observed it significant similarity with the Barbar caves of Ashoka and Dasaratha and agreed with Fergussion and Burgess that the excavated caves chambers are of the Maurya time.

ब्लॉच महोदय का दृष्टिकोण अपने आप में विलक्षण है। उन्होंने भीतर की दीवारों पर अंकित अभिलेखों को अध्ययन का आधार बनाया। इससे जाहिर हुआ कि दीवार पर के अभिलेख, जो आज प्राप्त हैं, वे मुनि वीरभद्र द्वारा उत्खनित हैं।[4] इसी संदर्भ

3. At a short distance South-East Maniar Matha on raised land is the stone structure which has been identified by Mr. Jackson (1913-14) as Bimbisara jail where Bimbisara was kept as a prisoner by Ajatshatru.

4. Bloch read the inscription on the inner wall standing that the Cave was excavated by Muni Virbhadra and on paleographical grounds, the inscription is placed in the 3rd or 4th century A.D. H.R.B., p. 3.

में एक दूसरे विद्वान का मत भी दृष्टव्य है।[5] इसी के सन्निकट 'सतधरवा' झरना है, जो सरस्वती के निकट से प्रवाहित होता है।

जीवक वन : जीवक राजा बिम्बिसार के वैद्य (राज वैद्य) थे, यह पालि साहित्य से प्रमाणित है। जिस वन में उनका आश्रम था, वह जीवक वन के नाम से विख्यात है। बिम्बिसार प्राय: गर्म जल के झरने में स्नान कर राज वैद्य से जांच कराया करते थे। आहत महात्मा बुद्ध को भी जीवक ने इसी वन में उपचार कर उन्हें स्वास्थ्य लाभ कराया था।

मनियार मठ : प्राचीन राजगृह की गोद में अवस्थित यह स्थल अद्यतन उपलब्ध अवशेषों के कारण अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। सन् 1861-62 में जनरल ए. कनिंघम ने इस स्थल के टीले को निरखा-परखा था। स्थानीय लोगों के बीच युगों से चली आ रही किंवदन्ती के अनुसार कहा जाता है कि इस टीले के नीचे एक कुआं था जिसमें राजा बिम्बिसार की रानियां प्रति दिन अपने पुराने आभूषणों को डाल देती थीं तथा नूतन आभूषण धारण किया करती थीं। उन आभूषणों की रक्षा मनियार नामक एक सर्प किया करता था। इसलिए इसे मनियार मठ कहा जाता है। यह मठ स्वर्ण-भण्डार के मार्ग में पड़ता है। प्रचलित कथा के अनुसार राजा बिम्बिसार की बत्तीस रानियाँ थीं, जिनमें एक कोशला देवी भी थीं। एक दूसरी किंवदन्ती यह है कि जब बिम्बिसार को कारागृह में डाल दिया गया, तो रानी कोशला जैन मुनि की शरण में गयीं। रानी ने अपने रत्नाभूषण उतार दिये तथा उन्हीं को सुरक्षार्थ प्रदान कर दिया। वे स्वर्णाभूषण यहीं पर सुरक्षार्थ रखे गये थे, इसलिये यह 'स्वर्ण भण्डार' नाम से विख्यात है। परंतु इतिहासकार इन किंवदन्तियों को इतिहास का अंग नहीं मानते। वे मनियार मठ को गुप्तकालीन जैन गुफा कहते हैं। कनिंघम महोदय ने अपने सर्वेक्षण के संदर्भ में एक पंजाबी लुटेरे को इस टीले को खोदते देखा था। संभवत: वह स्वर्ण प्राप्ति के लोभ से ऐसा कर रहा होगा। जैन साहित्य बताता है कि वह बिम्बिसार की रानी चेलना का स्वच्छ कुआं था जिसका उपयोग वह करती थी। कनिंघम को उस टीले पर एक जैन मंदिर मिला था। उन्होंने उसी के निकट साढ़े इक्कीस फीट गहरा एक कुआं देखा जिसकी त्रिज्यात्मक गोलाई दस फीट थी। वह कूप पक्की ईंटों से आवृत्त था।

---

5. The Cave adjacent to the 'Sonebhandar' is the other rock-cut chamber which A. Ghosh believed to be excavated in the 3rd or 4th century A.D. as the 'Sonebhandar' Cave. But this other cave has no polish, no inscription and no arc shapped roof. H.R.B., p. 4.

वहाँ उन्हें दो छोटी-छोटी मूर्तियां भी मिलीं। पहली मूर्ति में पलंग पर माया देवी के साथ बुद्ध आकारित थे। दूसरी मूर्ति जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की थी। इन दो मूर्तियों के अतिरिक्त एक भद्दा शिव मंदिर भी मिला।

ब्लॉच महोदय ने सन् 1905-06 में मनियार मठ की पूरी खुदाई करायी। खुदाई के समय मठ पर अवस्थित जैन मंदिर को हटा दिया गया। टीले की पूरी खुदाई की गयी। अध्ययनोपरांत स्पष्ट हुआ कि भवन ड्रम के आकार का था तथा छत खपरैल एवं शंकुल थी। भवन के निचले भाग में ताखें बनाकर मूर्तियां सजाकर रखी हुई थीं। ये मूर्तियां पकी मिट्टी की बनी थीं। ये ताखें चतुष्कोणी स्तंभ से विभक्त हैं। भवन वृत्ताकार है और सतह (नींव) से उसकी ऊँचाई लगभग साढ़े इक्कीस फीट है। इसके अधोभाग में चूना-सुर्खी से निर्मित मूर्तियां मिली हैं जिनमें गणेश, शिव, विष्णु, षट्भुज नटराज एवं नाग-नागिन की मूर्तियां प्रमुख हैं। नाग-नागिन की मूर्ति को मानवाकृति दी गयी है। इन मूर्तियों की रूप सज्जा एवं कलात्मक विशिष्टता वहीं है जो नालंदा महाविहार के महायानी स्तूपों एवं चूना-सुर्खी से निर्मित मूर्तियों की हैं। इतिहासकार इन मूर्तियों को गुप्तकालीन मानते हैं।

इन मूर्तियों को गुप्तकालीन ही माना जाना चाहिए। मनियार मठ को कनिंघम ने बौद्ध स्तूप बताया था, किन्तु ब्लॉच महोदय उसे शिव मंदिर कहते हैं। ड्रम के आकार के भवन को वे लिंग का प्रतीक मानते हैं। इनके अलावा जॉन मार्शल ने भी सर्वेक्षण किया और बताया कि वस्तुत: वह शिव मंदिर ही था। इसका तुलनात्मक अध्ययन कश्मीर के बारामूला तथा मदुरा के (तिरपुर कुरम में बने) शिव लिंगों से भी किया गया।

डॉ. ए. घोष के नेतृत्व में पुन: सन् 1938 एवं 1950 में उत्खनन सम्पन्न हुआ। पूर्व में उत्खनित एवं विदित लिंगाकार (ड्रमनुमा) भवन से सटा उत्तर में एक ईंट निर्मित भवन इस उत्खनन में मिला। इसे संभावित रूप में गुप्तकालीन बताया गया। उत्तर में इसका प्रवेश द्वार सीढ़ीनुमा था। इसके अंदर एक गर्भ-गृह था। इसके चारों कोनों में बड़े-बड़े प्रकोष्ठ बनाये गये थे। एक छोटे पंचायतन मंदिर का अवशेष भी वहां है। संभव है, इसे बाद में जोड़ा गया हो। लिंगाकार भवन से जोड़ने की योजना के तहत ही इसमें सीढ़ियां बनायी गयी थीं। अत: अद्यतन सर्वेक्षण एवं अध्ययन से यह प्रमाणित हो चला है कि यह शिव मंदिर ही था।

मनियार मठ के अंदर प्रवेश करने वालों के पद-प्रक्षालन हेतु नांद रखे गये थे। अवश्य उनमें जल का इन्तजाम रहता होगा। यह तथ्य भी उसे शिव मंदिर ही प्रमाणित करता है। यहाँ के उत्खनन से अनेक नागफणीय मूर्तियां मिली हैं। ये मिट्टी की

बनी हैं। मथुरा के लाल पत्थर की नागफणीय मूर्तियां भी यहां मिली हैं जिन पर कुछ नाम अंकित हैं, जो इस प्रकार हैं: मणिनाग भगिनी, सुभगिनी। एक अन्य मूर्ति पर 'नागशालीभद्र' अंकित है।

इन मूर्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन बताता है कि वास्तव में यह नाग देवता का मंदिर था। नाग देवता शिव ही हैं। अत: यह शिव मंदिर था। चूंकि मनियार मठ शिव मंदिर था, इसलिए मानना पड़ेगा कि इसका निर्माण गुप्तकाल में विभिन्न चरणों में हुआ होगा। यह नाग मंदिर 1500 ई. तक अस्तित्व में था। इसके बाद यह जीर्ण हो गया। और, उसी टीले पर जैनियों ने अपना मंदिर बनवा दिया। इसकी पूर्ण खुदाई लम्बित है। डॉ. ए. घोष बताते हैं कि मनियार मठ के धरातल में पाषाण-भवनों के अवशेष अब भी दबे पड़े हैं। संभावना बनती है कि वे पाषाण भवन हर्यक वंशी शासकों के भवन थे जिनका निर्माण उनके समय में हुआ होगा। डॉ. घोष मनियार मठ के संबंध में कहते हैं कि उसका निर्माणारंभ पहली शताब्दी में हुआ तथा गुप्तकाल तक उसका विस्तार एवं पुनरुद्धार होता रहा।

यहां दो जैन गुफाएं हैं जिनकी ऊँचाई 1.52 मीटर है। इनकी छतें झोपड़ीनुमा हैं और दोनों में एक-एक द्वार तथा गवाक्ष (खिड़की) है। पश्चिम भारत में निर्मित बौद्ध विहार गुफाएं भी प्राय: इसी प्रकार की हैं। परन्तु उड़ीसा के उदयगिरि एवं खण्डगिरि की गुफाएं आकारीय दृष्टि से भिन्न हैं। उन जैन गुफाओं की दीवारों पर ब्राह्मीलिपि में दो लेख खुदे हैं जिनका अर्थ है: "यह गुफा भैरव देव मुनि के निवास तथा ध्यानस्थ होने के लिए निर्मित हुई थी।" इसमें जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महात्मा महावीर की मूर्ति भी बनायी गयी है।

ब्रिटिश सरकार ने गुफाओं को तुड़वाकर अंदर से पुरातात्विक महत्व की वस्तुएं निकालने की योजना बनायी थी। ब्रिटिश पुरातत्ववेत्ता गुफाओं के द्वार को अंदर छिपी महत्वपूर्ण वस्तुओं तक पहुँचने का मार्ग मानते थे। उसे तोड़ने के लिए वे तोप का सहारा लेना चाहते थे। भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने इसका सर्वेक्षण करके बताया कि गुफा द्वार को तोड़ने से गर्म जल के झरने सूख जायेंगे और राजगृह की ऐतिहासिक छवि पर इसका बुरा असर पड़ेगा तथा पर्यटन भी कम हो जायेगा। धार्मिक विश्वास को संजोने वाले गर्म जल प्रपात के सूखने के भय से ब्रिटिश सरकार ने गुफा द्वार को तोड़ने की योजना स्थगित कर दी।

दूसरी गुफा पूर्व में है। उसके अवशेषों से पता चलता है कि वह दो मंजिलों की रही होगी। गुफा के ऊपर ईंट की एक दीवार के अवशेष हैं जो उसकी तत्कालीन सुरक्षा की व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। पर्वतीय श्रृंगों से कोई पत्थर-खण्ड

लांघ कर गुफा-प्रांगण में न आ जाय, इसलिए भी इस दीवार का निर्माण कराया गया होगा। यह गुफा भग्नाकृत तो है ही; इसका अगला भाग पूर्णत: विखंडित एवं जीर्ण है, इसके ऊपर जाने के लिए पत्थरों को काट-छांटकर सीढ़ियाँ बनायी गयी थीं। इस गुफा की दक्षिणी दीवार पर जैन मूर्तियां खोदी गयी थीं, जो दृश्य हैं। ये मूर्तियां जैन पार्श्वनाथ एवं महावीर की हैं। लगता है, इन दोनों जैन गुफाओं का निर्माण एक ही समय में साथ-साथ हुआ था। कनिंघम एवं उनके सहयोगी इन दोनों गुफाओं को बुद्ध तथा आनंद की गुफा मानते हैं, परन्तु अब यह प्रमाणित हो चला है कि ये गुफाएं जैनियों की हैं, बौद्धों की नहीं। किंवदन्ती है कि यहाँ पर जैन सम्प्रदाय के चार तीर्थंकर निवास करते थे। वे हैं: ऋषभदेव, अजितनाथ, शंभु और अभिनंद। इन चार तीर्थंकरों की मूर्तियों के अलावा, हाथी, घोड़े, सांड़ एवं बन्दर की मूर्तियाँ भी बनी हुई हैं। इन भग्नित साक्ष्यों से इतना तो अवश्य स्पष्ट होता है कि राजगृह की घाटी में उन दिनों जैन धर्म का अस्तित्व था।

रणभूमि : सोन भण्डार से रणभूमि 1.5 किलो मीटर की दूरी पर पश्चिम में स्थित है। पगडंडी के द्वारा वहाँ तक पहुँचा जा सकता है। स्थानीय लोग इसे राजा जरासंध का 'अखाड़ा' (कुश्ती या युद्ध का स्थल) कहते हैं।[6] यह भी जन-जिह्वा पर अंकित है कि पाण्डुपुत्र भीम एवं जरासंध के बीच इसी स्थान पर द्वन्द्व युद्ध, अर्थात् मल्लयुद्ध (duel) हुआ था। यहां की मिट्टी हल्की एवं उजली है। स्थानीय लोग यदा-कदा इस स्थान पर आकर अखाड़े की मिट्टी अपनी देह में लगाते हैं, इस विश्वास पर कि उनकी देह बलिष्ट होगी तथा उनमें शक्ति संवर्द्धन होगा। यह रणभूमि वैभार और सोन पर्वत के बीच पड़ती है। जेठियन गाँव जाने का मार्ग इधर से होकर है। इस घाटी को भी उस काल में रक्षा दीवार से घेरा गया था।

बिम्बिसार की जेल : मनियार मठ से एक कि.मी. दक्षिण में पाषाण-निर्मित भवन का खण्डहर है जिसे लोग राजा बिम्बिसार की जेल कहते हैं। सन् 1913-14 में बी. एच. जैक्शन ने इसका पता लगाया था। देखने से पता चलता है कि यह भवन कभी वर्गाकार रहा होगा। वर्तमान काल में यह दो सौ मीटर वर्गाकार भूमि में फैला है। भारतीय पुरातत्व विभाग ने इसे सुरक्षित कर दिया है। इसकी प्रत्येक भुजा आठ फीट छह इंच की है। ऊँचाई मात्र पांच-छह फीट रह गयी है। इसके

---

6. Just above the hot springs on the Vaibhara hill these are the 'Pippalika' Caves and the Stone Platform known as 'Jarasandha ka Baithaka'. These have been associated with the Buddha by the Chinese Pilgrim. Cunningham was the first to identify the stone platform with the Pippala house. **CASR**, III, 142.

एक कोने में एक वृत्ताकार चबूतरा बना हुआ है। इस स्थान से गृद्धकूट पर्वत की चोटी दिखायी देती है। किंवदन्ती को आधार मानकर जैक्शन महोदय भी इसे बिम्बिसार की जेल कहते हैं।

अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार को कैद करके यहीं रखा था। बिम्बिसार की इच्छा सदा गृद्धकूट पर्वत देखने की रहती थी क्योंकि भगवान बुद्ध वहां रहते थे, संभवत: इसीलिए अजातशत्रु ने उस स्थान पर कारागृह बनवाया था ताकि उसके बन्दी पिता उस पर्वत को देख सकें।

राजगृह की पुरानी रक्षा-दीवार : सोन एवं उदयगिरि पर्वत के मध्य रिक्त स्थान में रक्षा-दीवार निर्मित की गयी थी, जिसके अवशेष दृश्य हैं। इसके निचले हिस्से से वाणगंगा की पवित्र धारा प्रवाहित होती है। यों आंवागमन के लिए इस पर आज पुल है, पर प्राचीन काल में यह अवरुद्ध था, यहां कोई मार्ग नहीं था।

राजगृह की घाटी में इन खण्डहरों के अतिरिक्त एक अन्य खण्डहर का पता सन् 1913-14 में जैक्शन महोदय को चला, जिसे 'पटदेवी-स्थान' कहा जाता है। प्राय: अहिर (ग्वाले जाति के लोग) यहां पूजा अर्पित करते हैं। उनकी मान्यता है कि पटदेवी की पूजा से पशु-वंश की रक्षा होती है। इस स्थान के संबंध में बुकानन महोदय ने भिन्न मान्यता स्थापित की है। उनका कथन है कि यह स्थान किसी पुराने भवन का खण्डहर नहीं हैं। इन खण्डहरों के अतिरिक्त एक और खण्डहर हैं जिसे राजा कमदार खान मियां का खण्डहर कहते हैं। कहा जाता है कि वह सत्रहवीं शताब्दी के आसपास यहाँ का शासक था, पर इस विंदु पर इतिहासकार एकमत नहीं हैं।

राजगृह में छाता पर्वत की घाटी में जीवक-आम्र-वन था; उसका अवशेष मौजूद है। इसके दक्षिण में 'मद्रकुक्षी का विहार' था। इसकी पुष्टि पालि साहित्य से होती है। जनश्रुति के अनुसार महात्मा बुद्ध इसी आम्र-वन में रहते थे। इस स्थान को भी उनकी साधना भूमि होने का गौरव प्राप्त है। देवदत्त ने (जो उनका प्रतिद्वंद्वी एवं चचेरा भाई था) उन्हें यहीं पर बाण मारकर घायल कर दिया था। यहाँ एक विहार का खण्डहर और उपवन है। बिम्बिसार ने बुद्ध के निवास के लिए विहार बनवाया था। आज बिहार राज्य की सरकार ने इसके आगे एक उद्यान लगाया है जिसका नाम 'जय प्रकाश उद्यान' है।

बिम्बिसार की रथशाला : आज इसका मात्र खंडहर ही दृश्य है जिससे इंगित होता है कि यह स्थान वाणगंगा के मार्ग में पूर्व की ओर था, जिसका निर्माण पत्थर खंड से किया गया था। पर्यटक आज भी इस स्थान पर रथ के पहिये के चिह्न

देख सकते हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसे 'बिम्बिसार-पथ' कहा था। इस स्थान पर रथ के चक्कों के चलने के घिसे-पिटे चिह्न हैं जिन्हें यंत्रों से देखकर स्पष्ट कहा जा सकता है कि कभी यहां रथ-चलते रहे होंगे। फलतः इसे राजा बिम्बिसार की रथशाला मानने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

शिला-लेख : पाश्चात्य सर्वेक्षक श्री किट्टो ने सन 1847 में सर्वेक्षण किया था और सर्वेक्षण के क्रम में उन्हें एक शिला-अभिलेख प्राप्त हुआ। वस्तुतः यह एक पुरातात्विक उपलब्धि सिद्ध हुआ। एक प्रस्तर-खंड पर मात्र दो पंक्तियां उत्कीर्ण हैं जिन्हें पढ़ना कठिन है। विद्वानों का अनुमान है कि यह लिपि उत्तर भारत में आठवीं-नौवीं शताब्दी में प्रचलित थी। लिपि का स्वरूप स्पष्ट नहीं है।

वाणगंगा की घाटी में ही श्री वेग्लर को (1872-73) में एक पुराने कुएं का भग्नावशेष मिला था। इस कुएं के ऊपरी भाग की ईंट पर कुछ अक्षर खुदे हुए हैं जो ई. सन् 950 के लगभग के हैं। इन ऐतिहासिक अभिलेखों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि यह घाटी दशवीं शताब्दी में लोगों के निवास का स्थान बन चुकी थी; लोग यहाँ रहने लगे थे।

राजगृह के अन्यान्य खंडहर : ऊपर कतिपय भग्नावशेषों एवं खंडहरों के विवरणात्मक परिचय दिये गये हैं। किन्तु यहां यह कह देना अनिवार्य है कि ऊपर उल्लिखित के अतिरिक्त अन्य अनेक अवशेष भी राजगृह की घाटी में बिखरे पड़े हैं, जिनका अन्वेषण कोई जिज्ञासु शोधकर्त्ता कर सकता है। कुछ भग्नावशेष तो मानो अपना परिचय देने के लिए शोधकर्त्ता को खोज रहे हैं। और कुछ स्थानीय सीमा में आबद्ध होकर किंवदन्तियों के सहारे नामित और जीवित हैं। समस्त भग्नावशेषों के ऐतिहासिक सत्यापन के लिए जितने धन, समय, जिज्ञासा एवं धैर्य की आवश्यकता है, वह आज के प्रशासकीय एवं सामाजिक परिवेश में संभव प्रतीत नहीं होती। किन्तु निराश नहीं होना चाहिए।

भारत एक महान और विशाल देश है। कभी-न-कभी कोई युग अपने पूर्वजों के कृत्यों को पहचानकर उन्हें उजागर करेगा।

हां, राजगृह के रत्नागिरि के निकट एक वक्र दीवार का भग्नावशेष है। कुछ लोग इसे रक्षा-दीवार, तो कुछ युद्ध-अभ्यास-स्थल कहते हैं। कुछ की दृष्टि में युद्ध से पलायन करने पर यह दीवार व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करती थी। दीवार की वक्र-बनावट इस तथ्य की पुष्टि करती है। इसके निकट लगभग एक दर्जन जल-कूप हैं, संभवतः जो सैनिकों के उपयोग के लिए निर्मित हुए होंगे। दो तरह की किंवदंतियां इस संबंध में प्रचलित हैं : पहली तो यह कि ये साधकों की

सुविधा के लिए निर्मित हुए थे; और, दूसरी यह कि राजनीतिक सुरक्षा की दृष्टि से इनका निर्माण किया गया था।

मनियार मठ से उत्तर पाषाण-परिधि-बंध में एक सरोवर है। इसे बथान कहा जाता है। परन्तु चिंतन धारा कहती है कि कभी यह जगह गोशाला रही है।

सोन भण्डार से बायें उत्तर दिशा में एक भवन का अवशेष है। यह 36 मी. वर्गाकार क्षेत्र में है। इसकी दीवार 1.52 मी. चौड़ी है। इसके निकट एक 1.2 मी. ऊंची पाषाण-प्रतिमा है, जिसे लोग बलराम की मूर्ति बतलाते हैं। जरासंध के शासन काल में बलराम (श्रीकृष्ण के भाई) भी राजगृह आये थे। इस भवन को लोग बलराम जी का मंदिर भी बताते है।

अन्य कितने भग्नावशेष भी हैं जिनके बाहरी आकार को लक्ष्यकर हम उन्हें बौद्ध विहार कह सकते हैं।

लगभग दो सौ वर्षों से राजगृह का सर्वेक्षण कार्य चल रहा है और अनेक विद्वान पुरातत्ववेत्ताओं ने खंडहरों, भग्नावशेषों के अध्ययनोपरांत विवरण प्रस्तुत किये हैं। पर अत्यंत आश्चर्य में डाल देने वाली बात यह है कि आज तक किसी अध्येता ने यह नहीं बताया कि राजगृह के नागरिकों के लिए आवासीय सुविधा कैसी थी, वे कहां-किधर बसे हुए थे; पार्श्व के गांव कहाँ थे और जनपद की आम आबादी किधर थी, आदि? यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है जिस पर आगे होने वाले सर्वेक्षणों के आधार पर प्रकाश डाला जाना चाहिए। अब तक की समस्त खोजें मूलत: धर्म एवं राजनीति पर केन्द्रित रही हैं। धार्मिक एवं राजनीतिक बातों का पता लेने में सब तल्लीन रहे; नागरिकों एवं उनके आवासीय स्थल की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। साहित्य से इस पहलू पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। क्या कहा जाय? राजगृह में केवल राजधानी थी और राजा के साथ राजकर्मी मात्र रहते थे, या इस राजधानी में आज की तरह नागरिकों को निवास की सुविधा भी थी? ऐसे प्रश्नों का उत्तर कौन देगा? इस विंदु पर अगला अनुसंधान किया जाना चाहिए। भारतीय पुरातत्व विभाग को चाहिए कि वह इस अप्रकाशित अंग की खोज करा कर प्रकाशित करे। पालि एवं प्राकृत ग्रंथों की चुप्पी तथा चीनी यात्रियों के विवरण से प्रतीत होता है कि राजगृह में आम नागरिक-निवास नहीं था। यहाँ टोले-कस्बे, गांव नहीं थे; मात्र राजधानी थी और राजा के साथ राजकर्मी रहते थे। कहीं से कोई संकेत नहीं मिलता है कि नागरिक भी उनके साथ राजगृह में बसते थे। ब्लॉच महोदय एवं जैक्शन् राजगृह की भौगोलिक बनावट का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इसकी बनावट आम नागरिकों के आवास-स्थल जैसी नहीं थी। अत: कहा

जा सकता है कि प्राचीन राजगृह राजकीय कर्मचारियों, बौद्ध एवं जैन धर्मावलंबी संतों के उपयोग के लिए अधिक उपयुक्त एवं सुयोग्य था। यहां से राजनीति एवं धर्म का संचालन होता था।

अजातशत्रु के शासन के अंत के पश्चात् राजगृह की राजनीतिक महत्ता जाती रही। वह मात्र धर्म की दृष्टि से अपनी महत्ता बरकरार रख सका। अजातशत्रु के शासन काल में ही घाटी से उत्तर के मैदान में नव राजगृह का निर्माण प्रारंभ हो गया था; स्वभावत: पुराने राजगृह का महत्व घट रहा था। बाद में हुआ भी वैसा ही। इस नव आयाम को प्रभा प्रदान की वेणु-वन ने, जो इसी के परिसर की श्री-शोभा का अंग बना। अजातशत्रु ने नव-राजगृह पर अपने व्यक्तित्व की छाप प्रतिष्ठित कर दी!

नव राजगृह : सर्वेक्षण और उत्खनन : नव राजगृह के संबंध में पालि साहित्य प्राय: मौन और मूक है। इसके संबंध में जानकारी प्राप्त करने के मात्र दो स्रोत हैं। पहला स्रोत चीनी यात्रियों के यात्रा-वृत्तान्त हैं। दूसरा स्रोत् है, पुरातात्विक अवशेष एवं उत्खनन से उपलब्ध सामग्रियां। चीनी यात्री फाहियान पांचवी शताब्दी में भारत आया था। उसके यात्रा-वृत्तांत से पता चलता है कि बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु ने राजगृह की पर्वत माला के उत्तरी मैदान में नव राजगृह का निर्माण कराया था। फाहियान का विवरण यह भी बतलाता है कि अंग-विजय के बाद बिम्बिसार ने ही इस उत्तरी मैदान को पहले घेरवा दिया था। उसमें मात्र एक प्रवेश-द्वार था। परन्तु दुहरी चहारदीवारी बिम्बिसार की कृति नहीं, अजातशत्रु की कृति है। उसने इस भाग को दुहरी चहारदीवारी से घेरवाया था। यद्यपि अजातशत्रु भगवान बुद्ध से उम्र में छोटा था, पर उनका समकालीन तो था ही। वह बुद्ध का आदर भी करता था। पावस में महात्मा बुद्ध घाटी छोड़कर नव राजगृह में ही निवास करते थे। नव राजगृह का इतिहास भी राजनीति तथा धर्म की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो गया।

मिट्टी का किला : सर्वप्रथम बुकानन महोदय ने नव राजगृह का सर्वेक्षण किया था। उनके सर्वेक्षण से प्राप्त सामग्रियां तो पूर्णत: उपलब्ध नहीं हैं, पर नव राजगृह में दुहरी दीवार की बातों की पुष्टि उस सर्वेक्षण से होती है। इस भाग में उपलब्ध भग्नावशेषों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'मिट्टी का किला' है जो पंचकोणीय बनावट का है। इसमें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पांच मी. के गोलाकार गुम्बज हैं। इसके बाहर एक सौ फीट चौड़ा एक गड्ढा है। वहीं से मिट्टी लेकर इस किले को निर्मित और मजबूत किया गया। किले की लम्बाई ढाई मील है। इसके अंदर बारह सौ

गज में बाजार के बसने की व्यवस्था है। इसके अंदर एक दीवार का अवशेष मिलता है जो कभी चूना-सुर्खी तथा पत्थर-खंड से निर्मित हुई थी। इस दीवार का आयत 15-18 फीट (मोटा) तथा वर्तमान ऊंचाई ग्यारह फीट है। इस पाषाण-दीवार में भी थोड़ी-थोड़ी दूरी पर अर्द्ध-वृत्ताकार गुम्बज बनाये गये हैं। इसमें यत्र-तत्र रिक्त स्थान भी हैं, जो प्रायः प्रवेश-द्वार के रूप में उपयोग में आते रहे होंगे। इसके उत्तरी भाग का बड़ा खाली हिस्सा मुख्य प्रवेश-द्वार प्रतीत होता है। इस मुख्य द्वार के दोनों ओर अर्द्धवृत्ताकार गुम्बज बने हुए हैं। दोनों के बीच की दूरी ग्यारह फीट है। इसका आंतरिक क्षेत्रफल अस्सी एकड़ है। यह आंतरिक रक्षा दीवार इस प्रकार बनायी हुई है कि यह वैभार और विपुल, इन दोनों पर्वतों को, अर्द्धवृत्ताकार रूप में घेरती प्रतीत होती है। यही नया राजगृह था, जिसे अजातशत्रु ने बसाया था, पर प्रथम घेरेबंदी के सहारे बिम्बिसार ने भी इस स्थल पर दृष्टि डाली थी।

सन् 1905-06 में दयाराम साहनी ने इस क्षेत्र में उत्खनन कराया था। उत्खनन के दौरान ईंट एवं पाषाण के योग से बने भवन के अवशेष मिले हैं। कुछ लेखन के भग्नांश भी मिले थे, जिनके आधार पर इसके निर्माण का काल प्रथम से द्वितीय शताब्दी ई.पू. बैठता है। खुदाई के क्रम में उक्त भवन के निचले हिस्से से पंच मार्क्ड सिक्के, मिट्टी की मूर्तियां एवं बौद्ध मूर्तियां निकली थीं। इतना ही नहीं, मिट्टी की एक मुहर पर ब्राह्मी लिपि में अंकन भी मिला था। यह गुप्तकालीन सिद्ध हुआ। इस प्रकार, श्री साहनी द्वारा सम्पन्न उत्खनन से सुनिश्चित हो जाता है कि गुप्तकाल तक यह राजगृह अस्तित्व में था।

स्तूप : मि. बुकानन ने (1812 ई. में) इस स्थान पर मिट्टी का एक टीला देखा था। इस टीले को मि. किट्टो स्तूप कहते हैं। मि. कनिंघम उसे स्तूप तो मानते हैं, पर वह यह भी कहते हैं कि वह अजातशत्रु द्वारा बनवाया गया था। फाहियान तथा ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांतों में भी इसका उल्लेख है। किन्तु फाहियान इसे अजातशत्रु द्वारा और ह्वेनसांग अशोक द्वारा निर्मित मानते हैं। 1905-06 के उत्खनन से इस टीले के अंदर से मौर्यकालीन मृण-मूर्तियां तथा ईंट से निर्मित भवन के अवशेष मिले हैं। तीन मुहरें (मिट्टी की) भी मिली हैं जिन पर ब्राह्मीलिपि में अंकित हैः 'ये धम्मा'। मुहरों पर स्तूप भी चिह्नित है। ब्राह्मीलिपि आठवीं—नौवीं सदी में प्रचलित थी। इन तथ्यों से यह भी प्रमाणित होता है कि यह स्तूप कई बार बना और टूटा।

ह्वेनसांग की जीवनी के अनुवादक मि. बील व्हील की मान्यता है कि ह्वेनसांग ने राजगृह के एक स्तूप का वर्णन किया है जिसके निकट अशोक ने एक अन्य

स्तूप बनवाया था, जिस पर हाथी का चिह्न है। परन्तु अभी तक राजगृह में ऐसा स्तूप नहीं मिला है। ऐसा अशोक-स्तूप अब तक अप्राप्त है।

वेणु वन : वेणुवन, नव राजगृह का सर्वाधिक धार्मिक पवित्रता सम्पन्न तथा महत्वपूर्ण स्थल माना जाता है। यह गर्मजल प्रपात एवं वैभार पर्वत के उत्तर में स्थित है। वहां एक नाला भी है जिसे सतधारा कहा जाता है। वह वैभार पहाड़ एवं गर्म जल के झरने से निकला है। इसकी पश्चिमी पुलिया को पार कर वेणुवन जाने का मार्ग है। आज वन्य-जंतु-विहार के रूप में विकसित यह वेणुवन कंटीले तारों के घेरे से घिरा सुरक्षित है। इसके मध्य भाग में एक तालाब है जिसे 'कारन्दा' नाम से पुकारा जाता है। चीनी यात्री ने इसकी भी चर्चा की है। बौद्ध-साहित्य एवं चीनी-यात्री वृत्तांत से जाहिर होता हैं कि महात्मा बुद्ध शरद ऋतु में इस तालाब के किनारे आश्रम में निवास करते थे। इसीलिए इस स्थान पर बुद्ध की एक मूर्ति स्थापित की गयी है। मूर्ति आसन की मुद्रा में है। वह साधक बुद्ध की साधनावस्था की परिचायक है।

बौद्ध-साहित्य के अनुसार इस वन का नाम 'तपोदा' था। यों, यहाँ के सरस्वती गर्मजल प्रपात को तपोदा कहा जाता है, परन्तु एक अन्य अर्थ यह भी चलता है कि महात्मा बुद्ध गर्म-जल-कुंड में स्नान करने के लिए यहां निवास करते थे, इसी लिये यह 'तपोदा' नाम से विख्यात है।

सन् 1905-06 में जिस टीले का उत्खनन हुआ था वह वेणुवन के उत्तर में है। उक्त उत्खनन से स्तूप एवं भवन के भग्नावशेष मिले थे। इनके अतिरिक्त उत्तरी कृष्ण-मार्जित-मृदभाण्ड, मिट्टी की मुहरें तथा काले पत्थर से निर्मित 'बोधिसत्व' की मूर्तियां भी मिली थीं। यह भी सिद्ध हुआ कि वेणुवन के स्तूप का निर्माण भी कई बार हुआ। ह्वेनसांग का विवरण बतलाता है कि अजातशत्रु ने वेणुवन में एक स्तूप बनवाया था। वेणुवन के टीले का पूर्ण उत्खनन अभी भी बाकी है। यह कार्य अधूरे में रुका पड़ा है। भारतीय पुरातत्व विभाग ने अपने आधिपत्य का एक बोर्ड लटका कर उस स्थान को सुरक्षित (शासनाधीन) घोषित कर दिया है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि नव राजगृह का निर्माण अजातशत्रु के समय में प्रारंभ हुआ। निर्माण चलता रहा। हाँ, यह भी माना जाता है कि ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी तक बौद्धों के कारण यह स्थान विख्यात रहा। एक बात बहुत महत्वपूर्ण है कि अब तक के उत्खनन से कोई ऐसा पुरातात्विक अवशेष वहां नहीं प्राप्त हुआ है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि नव राजगृह में जैन धर्मियों का अस्तित्व था। अतः, बेहिचक माना जाना

चाहिए कि यह नव राजगृह मूलतः बौद्ध धर्म एवं धर्मावलम्बियों का केन्द्र था।

राजगृह की पर्वत माला एवं पुरातत्व : राजगृह के पंच पर्वत पर एक नहीं अनेक प्राचीन तथा नवीन मंदिर हैं। यहां कितनी मूर्तियां एवं यतियों, तपस्वियों के तपस्या-स्थल भी हैं। यह पंच-पर्वत किसी एक धर्म के अनुयायियों का तीर्थ स्थल नहीं, वरन सभी धर्मो के धर्मावलम्बियों का संगम-स्थल है। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, शैव, हिन्दू तथा मुसलमान सभी इसे तीर्थ-स्थान मानते हैं। पूरे साल यह स्थान देशी तथा विदेशी पर्यटकों के आगमन के फलस्वरूप आकर्षण का केन्द्र बना रहता है। अनेक धर्मावलम्बी भी यहां आते हैं। यहां गर्म जल का झरना है। जिसे स्वास्थ्य एवं धर्म दोनों का आश्रय प्राप्त है।

विभिन्न शोध- पत्रों के अध्ययन एवं अवलोकन तथा प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों एवं उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर राजगृह के कुछ वैशिष्टयों का आकलन लेखक का अभीष्ट है।

तत्कालीन व्यवस्थानुसार राजगृह के पंच पर्वत की घाटी में (तलहटी में) एक अभिनव नगर बसाया गया जिसमें पत्थर की दीवारों से घेर कर बावन कुण्ड बनाये गये। आज भी उनमें बाईस देखे जा सकते हैं। इनके नाम हैं:

(1) सरस्वती कुण्ड, (2) प्राचीष्यातर जी कुण्ड, (3) शालिग्राम कुण्ड, (4) भूत कुण्ड, (5) राम कुण्ड (इससे जल की गर्म एवं शीतल दो धारायें फूटती हैं), (6) गणेश कुण्ड, (7) सोम कुण्ड, (8) लता कुण्ड, (9) व्यास कुण्ड, (10) मार्कण्डेय कुण्ड, (11) गोदावरी कुण्ड, (12) गंगा-यमुना कुण्ड, (13) अनंतमणि कुण्ड (14) किशीथता कुण्ड, (15) सप्तधारा कुण्ड (इससे सात धारायें प्रवाहित होती हैं), (16) ब्रह्म कुण्ड (इससे एक सहस्र धारायें निकलती हैं) शेष नाम अनुपलब्ध है।[7]

राजगृह की चर्चा वैभार पर्वत की चर्चा किये बिना अधूरी रहेगी। इसी पर्वत के उत्तर-पूर्वी छोर पर उष्ण जल प्रपात प्रवाहित है। यह जल प्रपात उसी पर्वत के प्रभाग से निःसृत एवं प्रवाहित है। यहां पर एक कुण्ड तथा सात झरने हैं। शिशिर की ठिठुरन से आक्रांत पर्यटक गर्म जल के झरने में स्नान कर आनंदानुभूति प्राप्त करते हैं। इसके जल में गन्धक का अंश है। वैज्ञानिक अध्ययन, यह भी संपुष्ट करता है कि इस झरने के जल में रेडियो धर्मिता है। चाहे जो हो, गर्म

---

7. जैन सिद्धान्त भास्कर (The Jaina antiquary Vol. 46-1993 No. 1-2), श्री देव कुमार जैन, ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, आरा (बिहार)

जल स्वास्थ्य संवर्द्धन एवं आरोग्यता की दृष्टि से उपादेय है। गर्म जल के झरने के कारण भी राजगृह की महत्ता बढ़ती है।

जलाशय जल-कुण्ड : कुछ नवीन दृष्टिकोण भी सामने आये हैं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ नयी-नयी दृष्टियाँ भी प्रकाशित होती चलती हैं। आज की मान्यता कल संशोधित हो जाती है। पुरातत्ववेत्ता शोध तथा उत्खनन के सहारे प्रतिपादित करते हैं कि राजगृह की धरती के अन्तर में एवं बाहर (ऊपर) अनेक विशेषताएं अध्ययन के लिए लम्बित हैं। नयी खोज के सहारे नयी बातें भी सामने आयी हैं। जिस गर्म जल के झरने का उल्लेख ऊपर किया गया है, वह वस्तुत: पर्वत की कोख से नि:सृत चमत्कारिक स्रोतस्विनी है। पालि ग्रंथों में यह 'तपोदाराम' विहार' नाम से उल्लिखित है।

राजगृह में ऐसे गर्म जलाशयों की कुल संख्या सोलह है। इनमें सप्तधारा, ब्रह्मकुण्ड तथा सूर्यकुण्ड अधिक प्रसिद्धि-प्राप्त हैं। सूर्यकुण्ड जलाशय विपुलाचल पर्वत की तलहटी में है। प्राय: इन कुण्डों पर मंदिर बने हुए हैं। जो धर्म बोध के परिचायक है।

पीपल गृह : गर्म जल कुण्ड के निकट से सीढ़ीनुमा रास्ता वैभार पर्वत के ऊपर जाने के लिए बना हुआ है। इस पर्वत पर हिन्दू, जैन एवं बौद्ध मंदिरों के पुरातन अवशेष तो उपलब्ध हैं ही, नव निर्मित मंदिरों को भी यहां देखा जा सकता है। एक भग्नित पुरातन 'पीपल गृह' भी यहां है। यह पाषाण निर्मित है। जनश्रुति के अनुसार यह 'मचान' है। लोग इसे जरासंध की 'बैठकी' (बैठकखाना) भी कहते है। पालि साहित्य एवं चीनी यात्रियों के वृत्तान्तानुसार यह 'पीपल गृह' है। यह एक आयताकार पाषाण-खंडहर है। इसका क्षेत्रफल 25.9 मी. x 24.7 मी. है। ऊंचाई 8 मीटर है। इसके अंदर दो गुफायें हैं। जॉन मार्शल का कहना है कि यह राजा बिम्बिसार के समय में निरीक्षण टावर रहा होगा। अन्दर की गुफायें रक्षा-कक्ष के रूप में प्रयुक्त होती रही होगी। पालि-साहित्य बताता है कि यह पाषण-भवन बौद्ध सन्यासी महाकाश्यप के लिए निर्मित हुआ था। बुद्ध के निर्वाणोंपरान्त राजगृह में होने वाली बौद्धों की प्रथम संगीति का अध्यक्ष महाकाश्यप ही था। महात्मा बुद्ध भी अपने जीवन काल में महाकाश्यप से मिलने यहां आया करते थे। किन्तु ह्वेनसांग को भिन्न मान्यता है। उसका कहना है कि किसी असुर ने अपने निवास के लिए इसे बनवाया था। जब वह बौद्ध हो गया, तो उसने दान में इसे महाकाश्यप को दे दिया। बंगाल की विवरणी (1895 ई.) में इस खंडहर की गणना की गयी है।

सप्तपर्णी गुफा : वैभार पर्वत पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुफा सप्तपर्णी है। यह महादेव और जैन मंदिर के पश्चिम में स्थित है। ऊपर से लगभग तीस फीट नीचे उतरने पर वैभार पर्वत के ऊपरी भाग में यह गुफा मिलती है। एक ही साथ वहाँ छह गुफायें पंक्तिबद्ध हैं। परन्तु मात्र एक का अवशेष दृष्टिगोचर होता है। अन्य चार की स्थिति संतोषप्रद है। इन गुफाओं के सामने 36.57 मी. का चबूतरा है। यह पूर्व में 10.36 मी. तथा पश्चिम में 3.65 मी. में फैला हुआ है। इसके दोनों प्रभागों में निराधारीय पाषाणी दीवारें निर्मित हैं। यद्यपि यह बात विचित्रतापूर्ण है, पर संभव है भूतल के अंदर या बाहर कहीं कोई अदृश्य या सूक्ष्म आधार हों, जिन पर वे टिकी हुई हैं। यह एक वास्तुकार का चमत्कारिक प्रदर्शन भी हो सकता है। जनश्रुति है कि इसी सप्तपर्णी गुफा के निकट राजगृह में बौद्धों की प्रथम संगीति हुई थी, जिसमें पांच सौ भिक्षुओं ने भाग लिया था। यह आयोजन राजगृह में भगवान् बुद्ध के निर्वाण के छह माह बाद किया गया था। इस प्रथम संगीति का कर्त्ता (प्रधान पुरुष) महाकश्यप था। इसी के सहयोग से यह सम्पन्न हुआ। ऐतिहासिक मान्यता के अनुसार यह सप्तपर्णी गुफा बौद्धों की प्रथम महासंगीति से संबद्ध है।

जैन मन्दिर : वैभार पर्वत पर कतिपय नव निर्मित जैन मंदिर हैं। एक प्राचीन जैन मंदिर का भग्नावशेष भी प्राप्त हुआ है। यह मंदिर, महादेवी मंदिर के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। इस संदर्भ में जैन-ग्रंथ में एक रोचक कथा मिलती है। कथा इस प्रकार है कि महावीर के कैवल्य-प्राप्ति की सूचना सर्वप्रथम इन्द्र को प्राप्त हुई। इन्द्र ने कुबेर को बुलाकर आदेश दिया कि वह शीघ्र एक विशाल व्याख्यानशाला निर्मित करायें। उन्होंने अतिशीघ्र निर्देशानुसार संसाधनों से एक वृहत् सभामण्डप का निर्माण करा दिया। उसमें चार द्वार थे जिनमें सुन्दर स्तंभ बने हुए थे। सभा भवन के बीच में एक वेदी बनायी गयी थी। वह वेदी 'गन्धकुटी' नाम से विख्यात हुई। उसके ऊपर रत्नाभूषित स्वर्ण-सिंहासन प्रतिष्ठित था। वहां कमल फूल भी था। 'गन्धकुटी' के चारों ओर बारह बड़े कमरे थे, जिनमें धर्मोपदेश सुनने वाले देवी-देवताओं, साधु-संतों, पशु-पक्षियों के बैठने के आसन थे। सिंहासन पर भगवान महावीर विराजते थे। वहां से श्रोताओं को उपदेश सुनने में सुविधा होती थी। प्रवचन काल में दुन्दुभी बजने लगी। उसकी ध्वनि दूर तक पहुंची। इस दिव्य ध्वनि को सुनकर सभा की बातें काफी प्रचारित हुईं। फलतः, भगवान महावीर के उत्तम उपदेश की प्राप्ति की लालसा तो लोगों में जागी, किन्तु भगवान स्वयं बहुत दिनों तक मौन रहे। मौन का कारण ढूंढ़ने पर पता चला कि उनके उपदेश को सुनकर उसे हृदयंगम करने वाला एक भी व्यक्ति सभा में उपस्थित नहीं था।

भगवान महावीर की वीतरागिता का स्थान राजगृह का पार्श्ववर्ती प्रभाग है। आज भी विपुलाचल पर्वत पर दिगंबर एवं श्वेताम्बर जैनों के मंदिर हैं। पर्वत पर चार दिगंबर जैन मंदिर हैं। इसके नीचे एक मंदिर है, जिसके ऊपर काले रंग का एक कमल पुष्प बना हुआ है और उस पर महावीर स्वामी की चरण पादुकाएं बना कर प्रतिष्ठित की गयी हैं। कुछ ऊपर की ओर बढ़ने पर तीन और मंदिर मिलते हैं। पहले मंदिर में महात्मा चन्द्रप्रभु की पादुकाएं हैं, जो दर्शनीय हैं। मंदिर को देखने से उसकी पुरातनता सुप्रकट है। बीच के मंदिर में चन्द्रप्रभु स्वामी की श्वेत मूर्ति वेदी पर सुशेभित है। वेदी के निचले हिस्से में एक वृक्ष है। वहीं निकट एक और उजली मूर्ति है, जो सन् 1548 की बनी सिद्ध होती है। यह मूर्ति भी चन्द्रस्वामी की सिद्ध होती है। अंतिम मंदिर में एक वेदी है, जिस पर महात्मा महावीर की उजली मूर्ति प्रतिष्ठित है। बगल में सुब्रतनाथ की श्याम मूर्ति है और उन्हीं के चरण भी अंकित हैं। देखने से पता चलता है कि मूर्ति तो प्राचीन है, पर चरण नवीन।

रत्नगिरि पर अन्य दो मंदिर भी हैं। उनमें एक प्राचीन तथा दूसरा नवीन है। यह नया मंदिर ब्र.पं. दाबाई ने बनवाया था। इसमें भी सुब्रतनाथ की श्यामवर्णी मूर्ति है। पुराने मंदिर में महावीर स्वामी की चरण पादुकाएं बनी हुई हैं, जिनका रंग काला है।

उदयगिरि पर भी एक मंदिर है। उसमें शांतिनाथ और पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमाएं सुप्रतिष्ठित हैं, साथ-साथ आदिनाथ स्वामी के चरण चिह्न भी अंकित हैं। महावीर स्वामी की एक खड्गासनी श्याम वर्णी प्राचीन प्रतिमा भी है। इस नये मंदिर के निर्माता कलकत्ता निवासी सेठ रामेश्वर जी हैं। स्वर्णगिरि पर दो मंदिर हैं। एक का निर्माण फिरोजपुर निवासी लाला तुलसी राम ने कराया था। इस मंदिर में भी शांतिनाथ स्वामी की श्याम वर्णी प्रतिमा है। इस मूर्ति के साथ-साथ नेमिनाथ एवं आदिनाथ स्वामी के चरण-चिह्न भी अंकित हैं। यहां एक खड्गासनी मूर्ति भी स्थापित है। पुराने मंदिर में भी भगवान महावीर के चरण-चिह्न नव-चिह्नित हैं। यह लघु आकार का मंदिर है।

वैभारगिरि पर भी एक मंदिर है। यहां कुछ भिन्न और विलक्षण स्थिति है। यहां चौबीसी प्रतिमाएं भी हं। महावीर स्वामी, नेमिनाथ स्वामो तथा सुब्रत स्वामी की श्याम घर्ण की प्रतिमाएं भी उसमें उपलब्ध हैं। नेमिनाथ स्वामी के चरण-चिह्न भी अंकित हैं। पर्वत के निचले भाग में दो मंदिर हैं। धर्मशाला के बाहर विशाल बगीचे में एक मंदिर का निर्माण कराया गया है। इसका निर्माण लाला न्यादरमल

धर्मदास जी ने एक लाख रुपयों की लागत से फरवरी 1925 में करवाया था। इसमें पांच वेदियां हैं। पहली वेदी के मध्य में नेमिनाथ स्वामी की काली प्रतिमा प्रतिष्ठित है। 1950 में निर्मित पद्मासनी मूर्ति तीन फीट ऊंची है। उसके दाहिने भाग में शांतिनाथ स्वामी और बायें भाग में महावीर स्वामी की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। ये दोनों प्रतिमाएं विक्रम की बीसवीं शताब्दी की हैं। वेदी के परिसर में कई धातु निर्मित लघु आकारीय प्रतिमाएं हैं जो 1989 की बनी हुई हैं। उनमें दो राज प्रतिमाएं भी हैं। दूसरी वेदी पर चन्द्रप्रभु स्वामी की तीन बड़ी प्रतिमाएं हैं। इस वेदी के अंदर धातु की चतुर्मुखी प्रतिमा भी है। मध्य भाग की वेदी सबसे बड़ी है। इसमें स्वर्णिम दिव्यता है तथा कलात्मक चमत्कार भी। इस वेदी के बीच में मुनि सुव्रतनाथ की श्याम वर्णी प्रतिमा है। दाहिनी ओर अजितनाथ तथा बायीं ओर संभवनाथ की प्रतिमाएं हैं। इन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा 1929 में हुई थी।

पांचवी वेदी के मध्य में कमल पर महावीर स्वामी की प्रतिमा है। इस मूर्ति का रंग बादामी है। इसके साथ ही आदिनाथ एवं शीतलनाथ की प्रतिमाएं भी हैं।

धर्मशाला के भीतर गिरिडीह निवासी सेठ हजारीमल किशोरीलाल द्वारा एक छोटा मंदिर बनवाया गया है। मंदिर के अंदर वेदी पर मध्य वाली प्रतिमा महावीर स्वामी की है। इसका प्रतिष्ठापन सन् 1841 में हुआ था। इसकी बगल में पारर्वनाथ स्वामी की दो प्रतिमाएं हैं। इस वेदी में अन्य कतिपय प्रतिमाएं भी हैं।[8]

शिवालय (महादेव मंदिर) : वैभार पर्वत के जैन मंदिर के पूर्व-दक्षिण बिंदु पर एक भग्न शिवालय का अवशेष मिलता है। उसके गर्भ-गृह का आयत 3.5 मी. है। इसके मध्य में एक शिवलिंग तथा प्रवेश-द्वार पर नारी प्रतिमा सुशोभित है। गर्भ-गृह के अग्रभाग में एक मण्डप का अवशेष है। यह मण्डप ग्रेनाइट पत्थर के स्तंभ पर टिका है। पांच की संख्या में छह पंक्तियों में स्तंभ है। यह शिवालय गुप्तकालीन माना जाता है।[9] वैभार पर्वत जैनी तथा शैव दोनों का तीर्थ स्थल है।

ऊपर जिन तथ्यों का उल्लेख है, उनसे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि राजगृह भारत का एक ऐसा ऐतिहासिक स्थल है, जो धर्म-समभाव का संदेश देता है।

---

8. भगवान महावीर और उनका तत्व-दर्शन, ले. आचार्य रत्न श्री 108 भूषणजी विद्यालंकार, पृ. 521-22.

9. This break temple may be at least as old as the 6th century A.D. South of that is Mahadeva Temple noticed by Broadley and described by Ghosh with the extent Sanctuary and the stone posts of Verandah. It is also quite old and in my opinion it is a 6th-7th century structure and not of 11th-12th century as believed by Patil.

सर्वधर्म समभाव का संदेश देने वाला यह स्थान हमें सहिष्णुता के साथ जीने के आयामों से परिचित करता है। वैभार पर्वत के अवशेष राजगृह के नवीन साक्ष्य ही पेश नहीं करते, प्रत्युत् उसकी प्राचीनता के साक्ष्य भी पेश करते हैं। राजगृह जैन, बौद्ध एवं हिन्दू धर्म का केन्द्र था। आज भी हर धर्म के लोग, पर्यटक आदि राजगृह आते हैं। वे इसे अपना तीर्थ मानते और आशा-आशंका की पूर्ति के लिए मनौती मानकर आते-जाते रहते हैं।

छाता पर्वत : यह पर्वत रत्नगिरि पर्वत के साथ मिला हुआ है। अस्तित्व की दृष्टि से यह दो-में-एक है; अर्थात्, युग्म पर्वत (Combined Hill) है। आधुनिक राजगृह में इसका बहुत महत्व है। इसके शीर्ष (चोटी) पर विश्व-शांति-स्तूप बनवाया गया है, जिसका व्यय-भार पूर्णत: जापान ने वहन किया था। इसके दर्शनार्थ देशी एवं विदेशी पर्यटक निरंतर आते रहते हैं। इसकी चोटी पर चढ़ने के लिए एक पुराना मार्ग है, जो संभवत: बिम्बिसार ने बनवाया था। जापान द्वारा इस पर्वत के शीर्ष पर बनवाये गये विश्व-शांति-स्तूप पर चढ़ने के लिए आधुनिक तरीके उपलब्ध हैं। विद्युत चालित रज्जु-मार्ग से लोग ऊपर आसानी से पहुंच जाते हैं। बाहरी पर्यटकों की भीड़ के समय प्राय: इसका उपयोग किया जाता है।

विश्व-शांति-स्तूप का निर्माण जापान ने भगवान बुद्ध की स्मृति को ताजा कराने के लिए कराया था। इसकी अगुवाई, इकाई गुरूजी ने की, जो बौद्ध थे। इस स्तूप के दार्शनिक एवं भौतिक, दोनों महत्व हैं। स्तूप का गोला है विश्व के आकाश, एवं शिखर का कलश अक्ष के प्रतीक हैं। स्तूपीय गोल आकार विश्व के गोलीय अस्तित्व का भी प्रतीक है। नीचे से ऊपर की ओर पतले स्वरूप में बढ़ते कंगूरे आध्यात्मिक उत्थान की ओर बढ़ते कदमों के प्रतीक हैं, जहां एक बिन्दु पर चित्त केंद्रित हो जाता है। स्तूप का चक्र ब्रह्माण्ड के नियामक एवं मापक का अर्थ-बोध भी व्यक्त करता है। इस चक्र के साथ सूर्य की अवधारणा भी जुड़ जाती है। स्तूपाकृति में अधखिले कमल का स्वरूप भी देखा जाता है! इस तरह यह विश्व-शांति-स्तूप भारत की व्यापक एवं कल्याणी चिन्तनधारा का संवहन करता हुआ राजगृह के वक्ष पर स्थित है। इन तथ्यों का उल्लेख राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हमारे प्रेरणा पुञ्ज' में किया है।

गृद्धकूट पर्वत : धर्म एवं इतिहास की दृष्टि से इस पर्वत का वही महत्व है जो वैभार का है। कहा जाता है कि शिशिर के आगमन के साथ ही भगवान बुद्ध गृद्धकूट पर्वत पर आ जाते थे। उनके आगमन से गृद्धकूट पर्वत की श्री वृद्धि होती

थी। मगधपति बिम्बिसार भी उनसे मिलने इस पर्वत पर आते थे। राजा ने पर्वत की चोटी पर चढ़ने के लिए पत्थरों को काट-छांट कर मार्ग बनवाया था। वह मार्ग आज भी दृश्य है। किन्तु संभव है कि तब यह मात्र राजकीय मार्ग रहा हो।

यह छाता पर्वत से पूर्व में अवस्थित है। ऐसा भी कहा जाता है कि गृद्धकूट पर्वत छाता पहाड़ का पूर्वी अंश है। रत्नगिरि, छाता पर्वत तथा गृद्धकूट पर्वत एक-दूसरे के पार्श्ववर्ती हैं। गृद्धकूट की दो चोटियां हैं तथा दोनों पर प्राकृतिक गुफाएं विद्यमान हैं। बिम्बिसार ने इस पर्वत की चोटी पर महात्मा बुद्ध के निवास के लिए एक पाषाण-भवन का निर्माण कराया था। उस भवन के अवशेष आज भी मिलते हैं। गृद्धकूट की चोटी पर की प्राकृतिक गुफाओं को ह्वेनसांग ने भी देखा था और उनका वर्णन भी उसने किया है। उन गुफाओं में प्रवेश के लिए चट्टानों को काट-छांट कर अब सीढ़ीनुमा मार्ग बनाया गया है। ह्वेनसांग ने इन दो में से एक गुफा में कुछ मूर्तियां भी देखी थीं, जिनमें सात बुद्ध की मूर्तियां और एक मैत्रेय की मूर्ति थी। मिट्टी की ये सारी मूर्तियां दीवार से लगा कर रखी हुईं थीं। गुफा के अर्द्धभाग में कुछ श्लोक लिखे हुए थे, जो आज भी उपलब्ध हैं।

गृद्धकूट की अन्य चोटी पर कुछ भवनों के भग्नावशेष हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि यह पर्वत मूलतः बौद्धों का केन्द्र था। नालंदा (बिहार) के पुरातात्विक संग्रहालय में संग्रहित एवं सुरक्षित अनेक मूर्तियां इसी गृद्धकूट पर्वत पर से ले जाकर रखी गयी हैं। अतः मानना होगा कि यह गृद्धकूट पर्वत राजगृह का गौरव स्तंभ है। यह पर्वत तब भी राजगृह को गौरवान्वित करता था और आज भी उसे महिमामंडित करने में अपनी सामर्थ्य का परिचय दे रहा है। राजगृह की पर्वत-माला वस्तुतः गले के हार के समान सुशोभित है। प्राचीन इतिहास के पृष्ठों को स्वर्णिम करने में राजगृह तथा उसकी पर्वतमाला का कम योगदान नहीं है।

नवम् अध्याय

राजगृह : एक पर्यालोचन

(1) **राजधानी का स्थल** : हर देश की अपनी राजधानी की एक विशिष्ट गरिमा होती है। राजा अपने राज्य की राजधानी बहुत सोच-समझकर सुनिश्चित करता है। उसका कारण यह है कि राजधानी का स्थल वस्तुत: समस्त प्रशासकीय यंत्रों का केन्द्र होता है। राजगृह को भी मगध की राजधानी होने का असीम गौरव प्राप्त हुआ। इतिहास के पृष्ठों के अवलोकन एवं अध्ययन तथा पुराणों एवं साहित्य के स्रोतों से यही ज्ञात होता है कि बृहद्रथ ने सर्वप्रथम अपनी राजधानी राजगृह में बनायी थी। तत्पश्चात् महाबली शासक जरासंध ने भी अपने शासन काल में राजगृह में ही राजधानी रखी। इतना ही नहीं, जरासंध के बाद भी बहुत दिनों तक इस वंश के अन्य राजे राजगृह में अपनी राजधानी रखते रहे। इस स्थान के भौगोलिक वैशिष्ट्य के उल्लेख के क्रम में शब्द मौन हो जाते हैं। महत्ता इस बात की भी है कि हर्यक वंश के संस्थापक सम्राट भट्टीय ने भी अपनी राजधानी राजगृह में रखी थी। राजे बदलते रहे, हर्यक वंश में भट्टीय के बाद बिम्बिसार और उसके बाद उसका पुत्र अजातशत्रु राजा बने, पर इन सभी राजाओं की राजधानी राजगृह रही।

किसी स्थान को राजधानी का दर्जा यों ही नहीं मिलता; उसके चयन के कुछ आधार होते हैं। सबसे पहले उसकी सुरक्षा देखी जाती है, अर्थात् सुरक्षात्मक दृष्टि से उसका विश्लेषण किया जाता है। तत्पश्चात् यातायात की सुविधाओं पर भी ध्यान दिया जाता है। यह भी देखा जाता है कि वह स्थान विशेष राज्य के केन्द्र में है या नहीं। इन सारे विन्दुओं पर राजगृह चुनौतियों से मुक्त रहा। पांच पहाड़ों से घिरे रहने के कारण यह सर्वाधिक सुरक्षित था। आज तो नहीं, लेकिन तब इसके बगल से सुमागधी नदी प्रवाहित होती थी, जिससे यातायात के सुविधाजनक मार्ग प्रशस्त होते थे। राजगृह को प्रकृति ने भी कम आशीर्वाद नहीं दिया था। इसके पास में घने जंगल थे, जहां कीमती लकड़ियां एवं उपयोगी वन-पशु उपलब्ध थे। राजनीतिक आपदा के समय वे जंगल सेनानियों के छिपने

और प्रशिक्षण में काम दे सकते थे। राज-कर्मचारियों एवं राजकुल के लोगों के लिए जल के स्वास्थ्यवर्धक फव्वारे एवं झरने थे। शीतल एवं उष्ण जलकुण्ड उपलब्ध थे। पीने के लिए प्रपात का स्वच्छ जल प्राप्त था। राजगृह के निकट मगध की मिट्टी अन्न के रूप में सोना उगल रही थी, अच्छे सुगंधित धान उपजते थे। राजगृह की औसतन स्थलीय ऊंचाई भी अधिक थी। भला इन सारी विशेषताओं को सहेजने वाला राजगृह राजधानी न होता तो अन्य कौन-सा स्थान होता? घर बनाने के लिए सुन्दर लकड़ियां, सुरक्षित रहने के लिए पर्वत-माला, राजनीतिक आपदा के समय शरण लेने के लिए विस्तृत जंगल, प्यास मिटाने के लिए झरने का स्वच्छ सुन्दर जल, पेट भरने के लिए सुगंधित चावल जहां उपलब्ध हों, वहां की आबादी को घना होना ही था। मगध की राजधानी की दृष्टि से राजगृह, और कहा जाय तो सम्पूर्ण मगध, आबादी की दृष्टि से काफी घना था। राजगृह की गौरव-गरिमा युगों तक राजधानी के रूप में विख्यात रही।

(2) **राजगृह की पहचान के स्रोत** : राजगृह की पहचान किसी एक स्रोत से नहीं अनेक स्रोतों से होती है। माना कि, इसका इतिहास बिखरा हुआ है, उसके स्रोत एक नहीं अनेक हैं; किन्तु कुल मिलाकर ऐतिहासिक पहचान देने वाली काफी सामग्रियां उपलब्ध हो जाती हैं। हाँ, इतिहासकार को मालाकार का काम करना पड़ता है। मालाकार जैसे एक-एक फूल को पिरोकर माला तैयार करता है, वैसे ही राजगृह का इतिहास लिखने वाला सारे उपलब्ध स्रोतों का मंथन कर इतिहास प्रस्तुत करता है। राजगृह को जानने और जानने के लिए इतिहासकार को सामग्रियों को टोहना पड़ता है। राजगृह के सम्बन्ध में पालि साहित्य बोलता है, अनेक सामग्रियां देता है। चीन के दो यात्रियों फाहियान और ह्वेनसांग के यात्रा विवरण राजगृह का अमूल्य लेखा प्रस्तुत करते हैं। भारतीय पुराण, रामायण, महाभारत, ब्राह्मण ग्रंथ एवं गीता आदि से भी राजगृह के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इन सारे ग्रंथों में राजगृह के परिचय की बिखरी वाणी भरी पड़ी है। इतना ही नहीं, आज अनेक शोधकर्ताओं ने शोध प्रबन्ध लिखे हैं, जिनसे राजगृह का इतिहास मुखर हुआ है। पुरातत्व विभाग द्वारा आयोजित उत्खननों से जो सामग्रियां प्राप्त हुई हैं, तथा जो भग्नावशेष देखने में आये हैं उनसे भी राजगृह का इतिहास उजागर हुआ है। बूंदो के संयोग से जैसे सागर बनता है, वैसे ही बिखरी सामग्रियों के संकलन से आज राजगृह का इतिहास परिपुष्ट हो चला है।

(3) **नामकरण** : राजगृह के अनेक नामों में एक नाम वसुमति भी है। यों वसु का अर्थ पृथ्वी है; पर बाल्मीकि रामायण के अनुसार ब्रह्मा के एक पुत्र का

यही नाम है। राजगृह एवं मगध में प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार ब्रह्मापुत्र वसु ने इसे बसाया था। फलतः इसका नाम वसुमति पड़ा। परन्तु बाल्मीकि रामायण की पंक्तियों से (जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है) साफ जाहिर है कि वसु नाम का कोई राजा था। वह अत्यंत उदारचेता एवं संत प्रकृति का था, जिसके कारण लोग उसे महात्मा कहते थे। वाल्मीकि रामायण के सन्दर्भ से स्पष्ट हो जाता है कि उसी वसु के नाम पर इसका नाम वसुमति पड़ा। किन्तु यह नाम अधिक दिनों तक प्रचलित एवं प्रख्यात नहीं हो सका, कुछ पन्नों में ही सिमटा रहा।

महाभारत एवं पुराण से जाहिर है कि बृहद्रथ एक राजा था, जिसने राजगृह को बसाया और वहां पर अपनी राजधानी बनायी थी। उसके शासन काल में ही 'ब्रहद्रथपुर' नाम प्रचलित हुआ। यह नाम प्रतापी नरेश जरासंध के समय में भी कायम रहा; बल्कि कहना चाहिए, उस काल में इस नाम का अधिक प्रसार हुआ।

राजगृह का पुराना नाम कुशाग्रपुर भी है। इस नाम के सन्दर्भ में एक आख्यान चलता है। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि कुशाग्र जरासंध का सौतेला भाई था। दूसरी मां से जन्मा कुशाग्र राजगृह का राजा भी था; उसी के नाम पर इस स्थान का नाम कुशाग्रपुर पड़ा। जरासंध महाभारत कालीन पात्र है, जो श्रीकृष्ण का समकालीन था। कुछ इतिहासकार कुशाग्र को बुद्ध का समकालीन मानते हैं। बुद्ध और श्रीकृष्ण के समय में काफी अन्तराल है। जरासंध अथवा श्रीकृष्ण का समकालीन कुशाग्र, बुद्ध का समकालीन कतई नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में कुशाग्र को श्रीकृष्ण एवं जरासंध का समकालीन माना जाना चाहिए। कुछ लोग कुशाग्र के नाम पर कुशाग्रपुर नाम का समर्थन करते हैं; पर कुछ ऐसे भी हैं जो यह कहते हैं कि वहाँ कुश (एक प्रकार की घास) बहुत होता था, इसलिए इसका नाम कुशाग्रपुर पड़ा। राजगृह शब्द का अर्थ होता है: राजा का घर अर्थात राजा की राजधानी। वास्तविकता यह है कि राजधानी बनने के बाद इस स्थान का नाम राजगृह पड़ा।

इसका एक दूसरा नाम गिरिव्रज भी है। गिरि एवं व्रज दोनों संस्कृत के शब्द हैं जिनका प्रयोग हिन्दी में तत्सम रूप में होता है। गिरि का अर्थ पर्वत और व्रज का अर्थ समूह (झुण्ड) है। पर्वत समूह की गोद में राजगृह अवस्थित है, इसलिए इसका नाम गिरिव्रज पड़ा।

एक अन्य नाम राजगीर भी है जो राजगृह से रूपान्तरित है। भाषा और बोली में जो अन्तर होता है, वही राजगृह और राजगीर में है। राजगीर नाम का उच्चारण प्रायः अनपढ़ लोग करते दीखते हैं। यह नाम प्रमुख रूप से आसपास के या दूर के देहातों में प्रचलित है। इसकी एक भाषाई व्याख्या भी है। गीर शब्द संस्कृत

का शब्द है। हिन्दी में भी इसका प्रयोग होता है। यह तत्सम शब्द है। इसका अर्थ होता है : वचन वाणी।

'गीर' के पहले 'राज' शब्द लगा हुआ है। राज का अर्थ है राजा; अत: राजगीर शब्द का पूर्णार्थ है : राजा का वचन, राजा की वाणी। यह अर्थ मात्र शब्द की अभिधा-शक्ति से निकलता है। यदि शब्द की लक्षणा-शक्ति से इसका अर्थ किया जाय, तो अर्थ होगा : राजा का आदेश; मतलब जहाँ से राजा का आदेश चले, वह स्थान राजगीर होगा। इससे भी स्पष्ट है कि राजगृह में चूँकि राजाओं की राजधानी थी, इसलिए इसका नाम राजगीर पड़ा। इन सारी बातों के बावजूद, सर्वाधिक प्रचलित नाम राजगृह ही है और राजधानी का अर्थ-बोध कराने के लिए इसी शब्द का प्रयोग भी होना चाहिए।

(4) **राजगृह के मूल निवासी :** राजगृह के मूल पुरातन निवासियों की चर्चा किये बिना उसका इतिहास अधूरा रहेगा। पहली बार राजगृह की धरती पर आकर आखिर कौन बसे थे? अनेक इतिहासकारों की दृष्टि में राजगृह के मूल निवासी दस्यु थे; इसकी पुष्टि कुछ साहित्यिक एवं पौराणिक ग्रंथों से होती है। किन्तु मेरी अवधारणा इससे भिन्न है। वहाँ के निवासी दस्यु अनार्य नहीं थे; सिन्धु घाटी में जो लोग बसे हुए थे, उनकी नागरिक सभ्यता काफी बढ़ी-चढ़ी थी। सिन्धु घाटी के निवासी भी आर्य थे। हाँ, वे लोग ऋग्वैदिक आर्यों से पहले आकर भारत में बसे थे। ऋग्वैदिक आर्यों का आगमन सिन्धु घाटी में बसने वाले आर्यों के बाद हुआ था। सिन्धु घाटी से ही आकर लोग राजगृह में पहली बार बसे थे। राजगृह के मूल पुरातन निवासी ऋग्वैदिक आर्य नहीं; सैन्धव आर्य थे। ऋग्वैदिक आर्यों से उनके रहन-सहन, खान-पान, रस्म-रिवाज एवं आचार तथा विचार भिन्न थे। यही कारण था कि ऋग्वैदिक आर्य उन्हें आर्य नहीं मानते थे। दोनों में प्राय: संघर्ष होता था। लेकिन इतना तो माना ही जाना चाहिए कि सिन्धु घाटी के निवासी आर्य थे और उन्हीं का एक गिरोह राजगृह में आकर बसा था। जनसंख्या की वृद्धि के साथ क्षेत्रीय फैलाव होता है; जैसे-जैसे इनकी संख्या बढ़ती गयी, ये पूरे मगध में छा गये। अत: मगधवासी सैन्धव आर्य थे, ऋग्वैदिक आर्य नहीं। सिन्धु घाटी के उत्खनन से कृष्ण-मार्जित-मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं, और ये ही मृद्भाण्ड बिहार के गया जिले के सोनपुर के उत्खनन से भी प्राप्त हुए हैं। राजगृह में भी ऐसे ही मृद्भाण्ड मिले हैं। अत: यह पुरातात्विक प्रमाण, एक ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण है जो सुनिश्चित कर देता है कि राजगृह के मूल निवासी दस्यु अनार्य नहीं, सैन्धव आर्य थे।

(5) मगध की शक्ति सम्पन्नता : मगधवासी वीर, शक्तिशाली, उद्यमी एवं महत्वाकांक्षी थे। उनमें अपार ऊर्जा थी। वे लड़ाकू थे। उनकी वीरता और पुरुषार्थ के सामने भारत के अनेक जनपद नतमस्तक होते थे। मगध की धरती के सुपुत्र और प्रतापी शासक जरासंध ने मथुरा पर अनेक चढ़ाइयां की थीं। उसके भय से कुछ काल के लिए श्रीकृष्ण सहित अनेक यदुवंशियों ने मथुरा छोड़कर द्वारिका में शरण ली थी। छह जनपदों का संघ, जिसे वज्जि संघ कहते हैं, भी मगध के भय से कांपता था और अंतत: उसे युद्ध में मगध से परास्त भी होना पड़ा था। वैशाली ही नहीं, कोशल एवं अंग के शासकों को भी राजगृह के शासकों ने क्रम-क्रम से पराजित किया।

आखिर, मगधवासी इतने शक्तिशाली क्यों थे? इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। लेकिन भूगोल और जलवायु के स्तर पर इसकी समीक्षा की जा सकती है। राजगृह (नवादा-गया) मकर रेखा के नीचे पड़ता है। यह क्षेत्र अधिक उष्ण है। यहां गर्मी अधिक पड़ती है। गर्म देश के लोग अधिक बलिष्ठ, वीर और साहसी होते हैं। उनमें आपदा सहने की भरपूर ताकत होती है। वे युद्ध में पांव जमाकर लड़ते हैं। ठंडे देश के सेनानियों की अपेक्षा गर्म देश के सेनानियों में युद्ध-क्षेत्र में डटने की अधिक क्षमता होती है। यदाकदा खान-पान की तथा अन्य सामग्री के अभाव में वे पीछे हटना नहीं जानते, जबकि ठंडे देश के सैनिक इनके अभाव में जल्द ही युद्ध से मुँह मोड़ लेते हैं। मगधवासियों को शक्तिशाली होने का यह प्राकृतिक अवदान प्राप्त है।

(6) धर्म : राजगृह को धर्मों का संगम-स्थल भी कहा जा सकता है; क्योंकि अनेक धर्मों एवं सम्प्रदायों से वहाँ की पावन धरती अभिभूत थी। वहाँ की मिट्टी ने किसी भी धर्म को नहीं दुत्कारा। इसके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। हर्यक वंश के संस्थापक भट्टीय के समय में गोविन्द स्वामी नामक प्रसिद्ध वैदिक ब्राह्मण हुए थे। उनके आश्रय और नेतृत्व में राजगृह की धरती पर कर्मकाण्ड, वैदिक धर्म का पल्लवन हो रहा था, जिसका समादर भट्टीय भी करता था। इतना ही नहीं, उसके पहले भी बृहद्रथ के वंश के प्रतापी शासक जरासंध ने ब्राह्मणों को काफी तरजीह दी थी। वह स्वयं क्षत्रिय था, किन्तु ब्राह्मणों के प्रति उसके मानस में अपार श्रद्धा थी। इसी श्रद्धा के वशीभूत हो, छद्मवेशधारी ब्राह्मण के रूप में सामने आने पर श्रीकृष्ण एवं अर्जुन को जरासंध ने अभय दान दिया था। उसमें सर्वस्व समर्पण की भावना आ गयी थी। जरासंध से भट्टीय तक, ब्राह्मण धर्म अर्थात् वैदिक धर्म को प्रश्रय मिलता रहा।

राजगृह की धरती पर बौद्ध धर्म से पहले जैन धर्म खड़ा हुआ। इस धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने राजगृह को अपना कर्मस्थल बनाया। वह स्थान वास्तव में जैन धर्म के प्रचार का केन्द्र था। रानी की बात में आकर बौद्ध धर्मावलम्बी बिम्बिसार ने भी जैन धर्म स्वीकार किया था। इस धर्म को राजकीय सहयोग मिला, जिसके फलस्वरूप वह काफी फला-फूला। महावीर स्वामी से पहले जैन धर्म के बाइसवें तीर्थंकर मुनि सुब्रतनाथ का जन्म इसी धरती पर हो चुका था एवं इसी की गोद में उन्हें ज्ञानोपलब्धि हुई थी। भगवान् बुद्ध को भी मगध की धरती ने ही खाक छानने के बाद ज्ञानोपलब्धि करायी।

बोधगया मगध का अंग है। ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान् बुद्ध ने राजगृह को अपना केन्द्र स्थल बनाया। बौद्ध धर्म को राजकीय सहयोग मिला। कारण यह कि स्वयं राजा बिम्बिसार उनके प्रभाव में बौद्ध हो गया था। यंह एक सर्वविदित तथ्य है कि जब किसी धर्म को राजकीय आश्रय प्राप्त होता है, तब उसके विकास का सबल मार्ग प्रशस्त हो जाता है। राजगृह ने बुद्ध के लिए क्या नहीं किया? उन्हें क्या नहीं दिया? निवास के लिए वेणुवन दिया; राजवैद्य महान जीवक ने दान में जीवक आम्र वन प्रदान किया; गिरिव्रज पर्वत के ऊपर रहने के लिए राजा ने आश्रम बनवा दिया। शरद ऋतु में उनके निवास के लिए सरोवर के किनारे आश्रम बनवाया गया। बौद्ध भिक्षुओं को राज्याश्रय प्राप्त हुआ। प्रतिद्वन्द्वी देवदत्त से घायल कर दिये जाने पर प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक ने बुद्ध की चिकित्सा की। राजा बिम्बिसार उनका दास बन गया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि बिम्बिसार का नहीं, राजगृह पर बुद्ध के धर्म का शासन था। अत: यह कहना अत्यन्त समीचीन होगा कि अहिंसा, करुणा एवं दया का सम्बल लेकर चलने वाला बौद्ध धर्म देश और विदेश में पांव जमाने के लिए मगध के राजाओं से प्रचुर सहयोग प्राप्त कर रहा था।

हाँ, तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर यह कहा जायेगा कि जैन धर्म उस धरती पर बौद्ध धर्म के बहुत पहले आया, परन्तु प्रबल अस्तित्व की दृष्टि से जैन धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इसका भी एक कारण था। बौद्ध धर्म चूंकि अति और अना के बीच का मध्यममार्गी धर्म था। इसलिए बहुसंख्यक लोग इसी की ओर झुके। भारत की धरती मध्यममार्ग को अधिक प्रश्रय देती है; इसे इतिहास सिद्ध करता है।

इन धर्मों के अतिरिक्त राजगृह में आजीविक सम्प्रदाय का भी विकास हुआ। इस सम्प्रदाय का आचार्य मक्खलि गोसाल था।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व को इतिहासकार धार्मिक संक्रमण का काल कहते हैं,

क्योंकि एक धर्म के बाद दूसरे धर्म का आविर्भाव हो रहा था। धर्म के मिटने और बनने की अबाध प्रक्रिया चल रही थी। राजगृह में वैदिक, जैन, बौद्ध, आजीविक तथा अन्य धर्म और सम्प्रदाय पल्लवित हुए, किन्तु कहीं कोई टकराव दृष्टिगत नहीं हुआ; धार्मिक संघर्ष का कहीं कोई उल्लेख इतिहास अथवा तत्कालीन दस्तावेजों में नहीं मिलता है। यह भी विदित है कि यह धार्मिक संक्रमण केवल राजगृह में ही नहीं था, विश्व के पैमाने पर इसका स्वर गूँज रहा था। ईरान में जरथुष्ट तथा चीन में कनफ्यूशियश और लाओत्से जैसे धर्माचार्य अपने-अपने धर्मों का प्रचार प्रसार कर रहे थे। परवर्ती काल में सूफी एवं सिक्ख धर्म के आलोक से भी राजगृह आलोकित हुआ। सूफी संत मकदूम साहब राजगृह की एक गुफा में रहते थे। उन्होंने अपने धर्म की वीणा से प्रेम की रागिनी छेड़ी और राजगृह के लोगों ने भी सूफी संत के राग और मानव-प्रेम को काफी सत्कारा। सिक्ख धर्म के संस्थापक नानक देव का भी पदार्पण राजगृह में हुआ था। वहाँ उन्होंने कतिपय गर्म जलकुंड देखे। उन्होंने शीतल स्रोत की आवश्यकता महसूस की ताकि अतृप्त मानव को तृप्ति मिल सके। उनके आदेश पर एक शिलाखंड को हटाया गया और उसके हटते ही नीचे से शीतल जल की धारा फूट पड़ी। इसकी तात्विक व्याख्या सिक्ख धर्म से संबंधित पुस्तक में की गयी है।

आज आजाद भारत में धर्म-निरपेक्षता को प्रश्रय दिया जाता है क्योंकि भारत की सामाजिक संस्कृति की संरक्षिका धर्म-निरपेक्षता ही है। इसके बिना भारत की एकता सुदृढ़ नहीं रह सकती, जैसा कि इस देश का आकार बन चुका है। भारत में जो आज हो रहा है, धर्म के मामले में, जो इस देश की सरकार आज कर रही है, वह काम राजगृह ने बहुत पहले कर दिखाया है। इस संदर्भ में आज के भारत से तब के राजगृह की गरिमा अधिक प्रशंसनीय है क्योंकि शीर्षस्थ सभ्यता-समृद्धि के बाद भी, आज इस देश में धार्मिक टकराव हो रहे है; परंतु इतिहास साक्ष्य भरता है कि राजगृह में ऐसा अवसर कभी नहीं आया कि साम्प्रदायिक टकराव हुए हों। राजगृह की धार्मिक सहिष्णुता अनुकरणीय है। यह स्थान धर्मों के पल्लवन की दृष्टि से आदर्श प्रस्तुत करता है। धर्मों एवं सम्प्रदायों के महंतों को राजगृह से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जिस धर्म-निरपेक्षता का वृक्ष आजाद भारत की धरती पर लगाया गया है, वह बहुत पहले ही राजगृह में लग चुका था।

(7) **भट्टीय :** भट्टीय, बृहद्रथ वंश के अंतिम शासक रिपुंजय का मंत्री था। उसने राजा रिपुंजय की हत्या का दी। वह राजगृह का राजा बना। वह हर्यक कुल का था, इसीलिए उसे हर्यक कुल का संस्थापक सम्राट माना जाता है। वह क्षत्रिय

था। वैसे, हत्यारा होने के कारण उसका चरित्र कलंकित सिद्ध होता है, किन्तु उसके समकालीन वैदिक ब्राह्मण गोविन्द स्वामी ने उसे 'देव' की उपाधि दी थी। सम्राट अशोक के शिलालेख से पता चलता है कि सत्कर्मी एवं आदर्श पुरुष को ही देव की उपाधि दी जाती थी। यदि इसका ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाय, तो कहा जा सकता है कि बृहद्रथवंशी राजा रिपुंजय अवश्य अयोग्य रहा होगा और उसके राज्य में अव्यवस्था के कारण त्राहिमाम् की स्थिति रही होगी, तभी लोकहित में भट्टीय ने उसकी हत्या की होगी। उसकी हत्या के बाद भट्टीय के शासन में लोक-जीवन मधुमय हो गया होगा। यही कारण है कि गोविन्द स्वामी जैसे वैदिक ब्राह्मण आचार्य ने भट्टीय को देव की उपाधि से विभूषित किया।

(8) **गोविन्द स्वामी :** गोविन्द स्वामी राजगृह के अद्वितीय रत्न थे। वे ब्राह्मण जाति के थे और वैदिक कर्मकांड में उन्हें अपार आस्था थी। वेदानुयायी गोविन्द स्वामी वैदिक धर्माचारों को विकसित देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने एक आश्रम (शिक्षालय) खोल रखा था, जिसमें देश और विदेश के मेधावी तथा संस्कारी छात्र वेदाध्ययन करते थे। गोविन्द स्वामी की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि राजा भट्टीय भी उनका पूर्ण समादर करता था। मगध सम्राट अजातशत्रु का मंत्री वस्सकार इन्हीं का पुत्र था। अपनी मृत्यु को निकट देख कर गोविन्द स्वामी ने राजगृह के शासक भट्टीय से कहा था कि वह वस्सकार की देखभाल करेगा और भट्टीय ने ऐसा किया भी, जिससे उसकी सहिष्णुता का तो पता चलता ही है, ब्राह्मणत्व के प्रति उसका आदर का भाव स्पष्ट होता है।

(9) **बिम्बिसार :** बिम्बिसार हर्यक वंश के संस्थापक शासक भट्टीय का पुत्र था। मात्र पन्द्रह वर्ष की आयु में उसका राज्याभिषेक हो गया था। उसका शासन काल वस्तुतः मगध के लिए अनेक उपलब्धियों का काल था। बिम्बिसार दूरदर्शी और योद्धा था। उसमें प्रबल तथा सूक्ष्म राजकीय सूझ-बूझ थी। उसके पिता भट्टीय से अंग के राजा ब्रह्मदत्त ने मगध का पूर्वी भाग छीन लिया था, जिसे उसने युद्ध के बल पर पुनः वापस ले लिया। यही नहीं; उसने पूरे अंग पर कब्जा कर लिया और अपने पुत्र को युवराज बनाया।

बिम्बिसार अपने को अधिक शक्तिशाली बनाना चाहता था, ताकि मगध की प्रभुसत्ता अक्षुण्ण रहे। फलतः उसने अनेक जनपदों एवं राजाओं से रिश्ते कायम किये। विदेहराज की पुत्री छलना से उसने विवाह करके रिश्ता कायम किया। वैशाली नरेश की पुत्री से भी विवाह कर बिम्बिसार ने उस जनपद से रक्त-संबंध स्थापित किया। यही नहीं, उसने कोशल नरेश की पुत्री कोशला देवी से भी विवाह किया।

दहेज में उसे काशी मिली, जहां की आय से रानी के श्रृंगार प्रसाधन का व्यय-भार वहन किया जाता था। इन वैवाहिक रक्त-सम्बन्धों से तीन जनपद बिम्बिसार के मित्र बन गये। विदेह, वैशाली तथा कोशल की शक्ति मगध की शक्ति में अप्रत्याशित वृद्धि करने में सफल हुई। यों बौद्ध ग्रंथ में उल्लेख है कि मगध-अधिपति बिम्बिसार के पांच सौ रानियां थीं, किन्तु यह अतिश्योक्ति है। ऐसे तो किसी राजा का प्रेम एक घाट पर बंधकर नहीं रहता है, उसे अनेक रानियाँ उपलब्ध हो सकती हैं, परन्तु बिम्बिसार की मूलतः तीन ही रानियां थीं जो विदेह, वैशाली और कोशल की कन्याएं थीं।

बिम्बिसार अपने शासन कार्य को चलाने में अपने मंत्री पर अधिक विश्वास करता था। उसका मंत्री वस्सकार था जिसने राजा बिम्बिसार को काफी सहयोग दिया था। बिम्बिसार ने ही पुराने राजगृह को बसाया था। बिम्बिसार में सहनशीलता, धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता प्रचुर मात्रा में थी; वह बौद्ध था। उसकी आत्मा बौद्ध धर्म में विश्वास करती थी, परन्तु अपनी एक रानी के कहने पर वह जैन धर्म का आदर भी करने लगा था।

इन सारे गुणों के बावजूद बिम्बिसार ने एक ऐसी राजनीतिक भूल की थी कि जिसके कारण उसे जीवन का उत्तरार्द्ध काल कारागृह में बिताना पड़ा। उसका पुत्र अजातशत्रु बचपन से ही उद्धत और महत्वाकांक्षी था। बिम्बिसार इस बात को जानता था। फिर भी उसने उसे युवराज बनाया। यह बिम्बिसार की भारी भूल थी। राजशक्ति का मोह किसे नहीं सताता? हाँ, संन्यासी उससे मुंह मोड़ सकता है, साधारण आदमी नहीं। राजसत्ता कितनी प्यारी और सुविधादायिनी होती है, इसे युवराज बन कर अजातशत्रु ने भांप लिया था। अपने पिता मगधपति बिम्बिसार को बौद्ध धर्म की ओर अधिक झुकते देखकर अजातशत्रु के कान खड़े हो गये और उसने अपने पिता क़ो कैद में डाल दिया। कारागृह में बिम्बिसार को यातनाएं सहनी पड़ीं। बिम्बिसार ने ऐसी भूल या तो पुत्र-मोह के कारण की होगी, नहीं तो अपनी रानी (अजातशत्रु की माता) वासवी के प्रभाव में आकर ऐसा कार्य किया होगा। लगता है, कैकेयी का जैसे दशरथ पर अधिक प्रभाव थां, उसी भाँति अजातशत्रु की माता वासवी का बिम्बिसार पर अधिक प्रभाव था, बिम्बिसार के अजातशत्रु के अतिरिक्त अन्य कई पुत्र भी थे। वह आसानी से किसी अन्य को आगे बढ़ा सकता था।

बिम्बिसार की मृत्यु कारागृह में हुई। उसकी मौत से संबंधित दो आख्यान मिलते हैं। प्रथम तो यह कि अजातशत्रु ने उसकी हत्या करवा दी। दूसरा संदर्भ बतलाता

है कि बिम्बिसार ने स्वयं आत्महत्या कर ली। बौद्ध ग्रंथ प्रथम आख्यान का पक्ष लेता है, किन्तु अन्य स्रोतों से पता चलता है कि बिम्बिसार ने कारागृह के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या कर ली। यह दृष्टिकोण अधिक प्रबल मालूम पड़ता है। इसका कारण यह है कि अजातशत्रु प्रारंभ में बौद्धों का घोर विरोधी था। वह बुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त के बहकावे में आकर बुद्ध का विरोध करता था। इसलिए बौद्ध ग्रंथों में बौद्धों ने उसके चरित्र को अतिशय कलंकित करने की चेष्टा की है। चाहे जो हो; बिम्बिसार का अंतिम जीवन अत्यन्त कष्टमय रहा और उसके साथ-साथ उसकी रानियां भी कष्ट में रहीं।

(10) **अजातशत्रु :** यह मगधराज बिम्बिसार का पुत्र था। उसकी ननिहाल विदेह में थी। विदेह कन्या की कोख से बिम्बिसार के कुल में इसका जन्म हुआ। अजातशत्रु बचपन से ही महत्वाकांक्षी एवं उग्र स्वभाव का था। महात्मा बुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त से इसका वैचारिक मेल था। वह प्राय: देवदत्त की बातों को मानता था और उसके बहकावे में आकर कभी-कभी ऐसा भी काम कर बैठता था, जो लोकादर्श की दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता। देवदत्त के इशारे पर ही वह बुद्ध का विरोध करता था। अपने जीवन के प्रारंभिक चरणों में अजातशत्रु बौद्ध धर्म का विरोधी एवं हिंसक था।

बिम्बिसार ने अंग विजय के पश्चात् इसे वहाँ का युवराज बनाया। सत्ता सुख कैसा होता है, इसकी अच्छी अनुभूति अजातशत्रु को अंग के शासन काल में हुई। जिस महत्वाकांक्षा को वह शैशव से पाल रहा था, वह मगध की धरती पर विस्तार ढूँढ़ने लगी। देवदत्त उसका प्रेरक था। महत्वाकांक्षा रूपी अग्नि में देवदत्त की प्रेरणा घी का काम कर रही थी। उसी से प्रेरणा पाकर उसने अपने पिता मगधराज को बन्दी बनाया। वह स्वयं राजगृह (मगध) का राजा बन बैठा।

अजातशत्रु के व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं; एक में वीरता की अग्नि-शिखा प्रदीप्त दीखती है और दूसरे में महत्वाकांक्षा तथा क्रूरता निनादित है। जब कभी अतिशय महत्वाकांक्षा वीरता पर हावी हो जाती है, तो वीरता आदर्श की लीक से विलग होकर बढ़ने लगती है। आदर्शच्युत वीरता में क्रूरता का योग होने लगता है। हुआ भी यही। महत्वाकांक्षी अजातशत्रु ने पिता को बन्दी बना कर कारागार में यातना सहने के लिए स्थान सुनिश्चित कर दिया। सत्ता का लोभ संस्कृति को निगल जाता है। भारत की संस्कृति अजातशत्रु को यह अनुमति नहीं दे सकती थी कि वह अपने पिता को कैद करे। परन्तु आदर्शहीन चारित्रिक दुर्बलता में, जिसकी पीठिका महत्वाकांक्षा है, उससे ऐसा काम करवाया। कहा गया है, King knows no King.

राजा, राजा को नहीं पहचानता; वह ताज को पहचानता है, सत्ता से यारी करता है। अजातशत्रु ने इस कहावत को चरितार्थ किया।

एक अन्य अवधारणा यह भी है कि बौद्ध होने के बाद बिम्बिसार से अजातशत्रु द्वेष रखने लगा था। उसे शायद महसूस हुआ कि पूरा मगध बौद्ध भिक्षुओं का देश हो जायेगा। फलतः, इस आफत से बचने के लिए उसने पिता बिम्बिसार के साथ ऐसा बर्ताव किया।

वीरता उसकी दासी थी। वह चरम विन्दु पर पहुंचा सेनानी था। उसके दो भाई हल्ल एवं बेहल्ल, दोनों, अपार सम्पदा के साथ अपनी ननिहाल वैशाली भाग गये थे। अतः अजातशत्रु ने इन कांटों को मार्ग से हटाने की सफल योजना बनायी। अब तक बुद्ध से उसका संबंध सुधर चुका था। इसमें उसके राजवैद्य जीवक की असीम भूमिका थी। उसका मंत्री वस्सकार अत्यन्त चालाक, कुशल, प्रवीण एवं दूरदर्शी था। उसने भगवान बुद्ध से वैशाली विजय की संभावनाओं को इंगित करने का आग्रह किया। बुद्ध ने जो कुछ कहा उससे वैशाली की प्रभुसत्ता एवं शक्ति की झलक मिलती थी। परन्तु योद्धा अजातशत्रु एवं नीति कुशल मंत्री वस्सकार, दोनों ने तदनुकूल व्यवस्था कर आक्रमण की योजना तैयार कर ली। गंगा के दक्षिणी छोर पर एक व्यापारिक बन्दरगाह था, जिसके संचालन पर वैशाली ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। युद्ध के कारण बनते गये। अजातशत्रु ने गंगा के किनारे पटालि ग्राम में (आधुनिक पटना) सैन्य केन्द्र स्थापित किया। उसकी रणनीति अपरिमेय थी। अपने मंत्री वस्सकार को वैशाली भेजकर उसने वहां की एकता को विखण्डित कर दिया। अजातशत्रु को घोर निर्णायक लड़ाई लड़नी पड़ी, पर अन्ततः उसने छह जनपदों के वज्जि-संघ को परास्त कर दिया। यही नहीं, वह कोशल की ओर मुड़ा। बिम्बिसार के बंदी होने पर कोशल नरेश ने काशी से प्राप्त होने वाली आय का भुगतान मगध को बन्द कर दिया था। अजातशत्रु ने आक्रमण कर कोशल नरेश प्रसेनजित को पराजित कर पुनः काशी को अपने हाथ में ले लिया तथा उसकी पुत्री वाजिरा से विवाह किया। किसी महत्वाकांक्षी योद्धा की जो नीति होती है, उसी के संदर्भ में अजातशत्रु ने ये सारे कार्य किये। उसकी साम्राज्य-विस्तारवादी योजना सतत् सफल होती रही।

उसके शासन काल में राजगृह का चमत्कारिक उन्नयन हुआ। पुराने राजगृह की बगल में उसने नया राजगृह बसाया तथा राजधानी को नये ढंग से चहारदीवारी से घिरवा कर सुरक्षित किया। उसके शासन काल में व्यापार काफी समुन्नत हुआ। व्यापारियों के, जिन्हें तब श्रेष्ठि कहा जाता था, लगभग 18 (अट्ठारह) संघ थे।

मगध समृद्धि के शीर्ष पर था तथा पूरे भारत के जनपद उसके कृपाकांक्षी हो गये थे। तत्कालीन राजाओं में मगध के मित्र बनने की होड़ देखी गयी। सभी अजातशत्रु से भयभीत थे। लौह-युग का आरंभ हो चुका था। मगध को लोहे की जानकारी थी। अजातशत्रु के समय में लौह-आयुध बड़े पैमाने पर बनने लगे थे, जिनकी बिक्री बाहर भी होती थी। फलत: मगध की राजकीय आय में वृद्धि हुई।

अजातशत्रु का एक नाम 'कुणिक' भी था। यह कुणिक अर्थात् अजातशत्रु, पितृहन्ता कहा जाता है और इस कथन की संपुष्टि बौद्ध साहित्य करता है। बौद्ध अजातशत्रु के विरोधी थे, क्योंकि प्रारंभ में वह भगवान बुद्ध का विरोधी था। संभव है, बौद्ध लेखकों ने उसे इसलिए कलंकित करने की चेष्टा की हो। पर इतना तो निर्विवाद है कि उसने पिता को कारागार में डाल कर यातनाएं दीं तथा सौतेली मां को भी दु:ख-दर्द भोगने को विवश किया।

धर्म एवं करुणा में अमोघ शक्ति होती है। कठोर आदमी को भी करुणा की डोर में बंधते देखा गया है। महात्मा बुद्ध एवं पिता का विद्रोही अजातशत्रु, जीवन के उत्तरार्द्ध में सहिष्णु हो गया। वह बुद्ध की करुणा और दया से प्रभावित था। उसने महाकाश्यप के कहने पर बुद्ध के निर्वाणोपरान्त उनकी अस्थि मंगवायी तथा राजगृह में एक स्तूप बनवाकर उसमें उसको प्रतिष्ठित कराया। महाकाश्यप द्वारा आयोजित बौद्धों की प्रथम संगीति राजगृह में ही हुई थी, जिसमें मगधपति अजातशत्रु का प्रभावकारी सहयोग था।

(11) **जीवक** : यह मगध की प्रधान गणिका सालवती का पुत्र था। मगध नरेश बिम्बिसार के एक पुत्र राजकुमार अभय से इसकी गाढ़ी मित्रता थी। उसके सहयोग से जीवक को राजकीय सहायता मिली और वह अध्ययन के लिए तक्षशिला गया। वहां उसने चिकित्सा-विज्ञान में दक्षता प्राप्त की और महान चिकित्सक बना।

वह मगध का राजवैद्य था। उसने गौतम बुद्ध की भी चिकित्सा की थी। बिम्बिसार और अजातशत्रु की चिकित्सा तो वह करता ही था, समय-समय पर राजकीय आदेश पाकर वह बाहर भी इलाज करने जाता था। एक बार बिम्बिसार के कहने पर, वह उज्जैन के राजा की चिकित्सा करने के लिए उज्जैन गया था। इसी तरह, बनारस के एक सेठ की पुत्री की गंभीर बीमारी को उसने इलाज करके ठीक कर दिया। इन दोनों स्थानों से उसे पारिश्रमिक के रूप में काफी धन मिला था। वह काफी धनी हो गया था। उसकी चिकित्सा-कला पर पैसे बरसते थे।

जीवक राजवैद्य था। वह सामान्य लोगों का इलाज भी करता था, पर उसका

पारिश्रमिक इतना अधिक था कि उससे चिकित्सा कराने के लाभ से सामान्य लोग वंचित रह जाते थे। जीवक शल्य-चिकित्सक एवं औषधि-विशेषज्ञ दोनों था।

परिग्रह मनुष्य को व्यभिचार का आमंत्रण देता है। आवश्यकता से अधिक अर्जन कतई वांछनीय नहीं। जीवक के पास इतना धन एकत्र हो गया था कि वह भोगी-ऐयाशी का जीवन व्यतीत करने लगा था। अंतत: बौद्ध धर्म ने उसे अभिभूत कर दिया। अन्त में वह बौद्ध हो गया। बिम्बिसार ने एक आम्र-वन बनवा कर जीवक को प्रदान किया था और वह उसमें रहता था। उसका नाम ही जीवक-आम्र-वन हो गया। अन्त में जीवक ने वह आम्र-वन बुद्ध को दान में दे दिया।

जीवक ने धनी व्यक्ति की जिन्दगी व्यतीत की। वह राजा तो नहीं था, पर राजभोग उसे उपलब्ध था। इसमें उसकी दौलत सहयोगिनी थी। दासों एवं दासियों से उसका आवास भरा रहता था। उसने एक महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि अजातशत्रु को प्रभावित कर उसे बुद्ध का श्रद्धालु बना दिया।

(12) **वस्सकार :** यह वैदिक ब्राह्मण गोविन्द स्वामी का सुपुत्र था। पिता के मरणोपरांत हर्यक कुल के संस्थापक नरेश भट्टीय ने इसकी अच्छी देखभाल की थी, क्योंकि वह उसके पिता से वचनबद्ध था। वस्सकार की प्रतिभा अद्वितीय एवं तर्कशक्ति असीम थी। बौद्धिक कुशाग्रता के बल पर वह राजमंत्री हुआ। बिम्बिसार एवं अजातशत्रु, दोनों के शासन काल में, वह राजमंत्री था। यदि यह कहा जाय कि राजगृह (मगध) को प्रभुसत्ता सम्पन्न तथा गौरवान्वित करने में बिम्बिसार तथा अजातशत्रु से इसका कम योगदान नहीं, तो भी यह अतिश्योक्ति नहीं होगी।

एक राजमंत्री के लिए जिन विशेषताओं की आवश्यकता होती है, उन समस्त से इसका व्यक्तित्व गठित-मंडित था। वैशाली पर अजातशत्रु द्वारा किये जाने वाले आक्रमण के पूर्व वस्सकार वहां पहले पहुंच चुका था। फूट डाल कर वैशाली की एकता को विखण्डित करने वाले इस राजमंत्री ने अपने राजा अजातशत्रु की विजय सुनिश्चित कर दी। आक्रमण तो बाद में हुआ, जीत भी हुई; पर वज्जि संघ को तोड़ कर जर्जर करने का श्रेय वस्सकार को है।

(13) **पर्यटन :** ऐसे तो राजगृह पर्यटकों के लिए अभी भी एक प्रमुख पर्यटन-स्थल है, पर पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए उसके समुचित विकास की दिशा में अभी भी यथेष्ट ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

राजगृह में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं पर्यटकों को आकर्षित करने वाली वस्तु है विश्व-शान्ति-स्तूप। यह छ़ाता पहाड़ पर जापान की सरकार द्वारा निर्मित कराया गया है। इस पर बिजली के डोर के झूले द्वारा चढ़ा जाता है। एक चट्टान पर

से चढ़ने के लिए सीढ़ियोंनुमा रास्ता भी है, जो मगध नरेश बिम्बिसार द्वारा बनवाया गया था। राजगृह के परिसर में घूमने वालों को अनेकानेक चीजें देखने को मिलती हैं, जिनमें प्रमुख हैं : पंच पर्वत, विश्व-शांति-स्तूप्र, उष्ण एवं शीत जल प्रपात, कुण्ड, पुरातात्विक भग्नावशेष, जरासंध का अखाड़ा, मनियार मठ, वेणुवन, जीवक-आम्र-वन, स्वर्णगृह, गुफाएं, सरोवर, आदि।

भारतीय हिन्दी पञ्चांग के अनुसार प्रत्येक तीन वर्ष पर मलमास होता है। इस मलमास की अवधि एक माह की होती है, जिसमें दो महीने का एक माह होता है। हिन्दुओं में ऐसी मान्यता चली आ रही है कि इस अवधि में सारे देवता राजगृह में निवास करते हैं। यह मलमासी माह राजगृह के मेले का माह होता है। असंख्य लोग इस अवसर पर धार्मिक मान्यताओं के वशीभूत आते हैं और उन्हें लगता है कि सभी देवताओं के दर्शन उन्हें एक साथ हो गये।

(14) **संस्कृति** : राजगृह पर्यटन स्थल के साथ-साथ सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भी विख्यात है। यहां के जंगल, पर्वत, उष्ण एवं शीत जल प्रपात आदि जैसा कि ऊपर बताया गया है, पर्यटकों के मनप्राण को मोहित करते हैं। इसकी प्राकृतिक रमणीयता शरदेन्दु शोभा बिखेंरती है। प्रत्येक वर्ष तिला संक्रांति पर्व के अवसर पर यहां राजगृह-महोत्सव का आयोजन होता है।

इस अवसर पर अनेक सांस्कृतिक समारोह होते हैं, जिनमें कवि, कलाकार, नेता, समाजसेवी, नाटककार, संगीतकार एवं लोकनर्तक भाग लेते हैं। प्राचीन वैभव एवं संस्कृति की ओर ध्यान आकृष्ट करने वाला राजगृह इस अवसर पर अत्यन्त छविमान दिखायी देता है।

आज भी धर्म एवं जाति के फंदों को लांघकर लोग इस राजगृह-महोत्सव में भाग लेते हैं। इस महोत्सव का प्रथम आयोजन 1986 में हुआ था। तब से प्रत्येक वर्ष समारोह आयोजित होते हैं, जिनसे पुर्यटन को बढ़ावा मिलता है एवं लोकचेतना जागृत होती है।

राजगृह की धरती पर महावीर एवं बुद्ध की अहिंसा तथा करुणा की धारा प्रवाहित हो चुकी है। अहिंसा एवं करुणा का शुद्ध संबंध संस्कृति से है। फलतः यह स्थान मानवीय मूल्यों का है। भारत की सामाजिक संस्कृति की विधायिका राजगृह की पावन भूमि है। यह भूखण्ड धर्मनिरपेक्षता एवं मानव-प्रेम का संदेश प्रत्येक पीढ़ी को निरंतर देता रहेगा।

परिशिष्ट

राजगृह में जिन बौद्ध सूत्रों की रचना हुई, बौद्ध ग्रन्थों के जिन भागों का वहां निर्माण हुआ और भगवान बुद्ध के तत्वावधान में जिन बातों (कथाओं) की चर्चा हुई, उनकी संकेत-तालिका निम्नांकित है :

महावग्ग •

इस पुस्तक में "खन्धक" शीर्षक के अन्तर्गत "भाणावार" विभाग में कथा नामक प्रकरण है जिसमें छोटी-छोटी कथाएं सूत्र रूप में निबद्ध हैं। यथाक्रम उन सब की संख्याओं के साथ राजगृह (उनकी निर्माण स्थली) का उल्लेख किया जा रहा है।

महाखन्धक

बिम्बिसार एवं बुद्ध-मिलन	(1, 4, 1, 1-15)	यष्टिवन	मगध
सारिपुत्र-मोद्गलायन की प्रव्रज्या	(1, 4, 2, 1-17)	राजगृह, पटना	,,
उपाध्याय-शिष्य प्रस्थापना	(1, 5, 1, 1-5)	,,	,,
समावर्तन, उपाध्याय और व्रत	(1, 5, 2, 1)	,,	,,
समावर्तन, शिष्य और व्रत	(1, 5, 3, 1)	,,	,,
शिष्य की कर्त्तव्य-वर्णना	(1, 5, 4, 1)	,,	,,
ज्ञप्ति, चतुष्कर्म और उपसंपदा	(1, 5, 5, 1-4)	,,	,,
उपसम्पदा-याचक ही उपसंपदा	(1, 5, 6, 1-3)	,,	,,
भिक्षु के लिए चार निश्चय	(1, 5, 6, 1-3)	,,	,,
कुछ वर्ष परीक्षा लेने पर ही उपसंपदा	(1, 6, 1, 1-5)	,,	,,
आचार्य और अंतेवासी का परस्पर कर्त्तव्य	(1, 6, 2, 1-4)	,,	,,
समावर्तन के नियम	(1, 6, 3, 1)	,,	,,
अंतेवासी का कर्त्तव्य	(1, 7, 1, 1)	,,	,,
निश्रय-दान	(1, 7, 2, 1-2)	,,	,,
उपसंपदा देने वाले पांच गुरु	(1, 7, 3, 1)	,,	,,

• प्रकाशक, बम्बई विश्वविद्यालय, बंबई, (प्रथम भाग सन् 1944 और द्वितीय भाग सन् 1952); संपादक, एन. के. भागवत.

छह बातों वाले को उपसंपदा नहीं	(1, 7, 4, 1)	राजगृह, पटना	मगध
अन्य तैर्थिक और उपसंपदा	(1, 7, 5, 1-7)	,,	,,
प्रव्रज्या और उपसंपदा के लिए अयोग्य व्यक्ति	(1, 8, 1, 1-7)	,,	,,
बिम्बिसार के सैनिकों की प्रव्रज्या	(1, 8, 1, 1-4)	,,	,,
अंगुलिमाल डाकू की धर्म प्रवेश कथा	(1, 8, 1, 1-8)	,,	,,
छोटे बच्चों को उपसंदा नहीं	(1, 8, 1, 1)	,,	,,
उपालि की कथा	(1, 8, 1, 11)	,,	,,
अयोग्य व्यक्तियों की कथा	(1, 8, 2, 1-4)	,,	,,

उपोसथ खन्धक

उपोसथ-विधान	(2, 1, 1, 1-4)	गृद्धकूट पर्वत, राजगृह	,,
उपोसथ-कर्म	(2, 1, 2, 1-2)	,,	,,
महाकप्पिन की कथा	(2, 1, 3, 1-3)	मद्रकुक्षि मृगदाव, राजगृह	,,
सीमा की सम्पत्ति	(2, 1, 4, 1)	,,	,,
उपोसथागार आदि के बनाने की सम्मति	(2, 1, 5, 1)	,,	,,
त्रिचीवर विधान की कथा	(2, 1, 6, 1-4)	,,	,,
एक उपोसथ की सीमा	(2, 1, 7, 1)	,,	,,
उपोसथ और उपोसथ कर्म	(2, 1, 8, 1-2)	,,	,,
प्रातिमोक्ष के उद्देश्य से उपोसथ	(2, 1, 9, 1-2)	,,	,,
संघ सम्मत-कर्म आदि	(2, 1, 10, 1-16)	,,	,,
किस आधार पर प्रातिमोक्ष	(2, 2, 1, 1-4)	चोदनावस्तु	,,
उपोसथ के पूर्व करणीय	(2, 2, 2, 1-6)	राजगृह	,,
वर्ग और संघ कब उपोसथ नहीं करे	(2, 2, 4, 1-5)	,,	,,
उन्मत्त के लिए अनुमति-दान	(2, 2, 5, 1-2)	,,	,,
प्रातिमोक्ष-विधान	(2, 2, 6, 1-7)	,,	,,
अन्य तैर्थिकों की उपस्थिति में दोषरहित प्रातिमोक्ष	(2, 3, 1, 1-15)	,,	,,

अन्य तैर्थिकों की सदोष प्रातिमोक्ष	(2, 3, 2, 1-15)	राजगृह	मगध
अन्यं तैर्थिकों की अनुपस्थिति में संदेहयुक्त उपोसथ	(2, 3, 3, 1-15)	,,	,,
अन्य तैर्थिकों की अनुपस्थिति में संकोचयुक्त सदोष उपोसथ	(2, 3, 4, 1-15)	,,	,,
कटूक्तिपूर्वक सदोष उपोसथ	(2, 3, 5, 1-15)	,,	,,
अन्य आवासियों को जाने बिना उपोसथ	(2, 3, 6, 1)	,,	,,
अन्य आवासियों की अनुपस्थिति जाने बिना	(2, 3, 7, 1)	,,	,,
उपोसथ-आपत्ति, अनापत्ति	(2, 3, 8, 1-8)	,,	,,
उपोसथ के दिन जाने या न जाने का विनिश्चय	(2, 3, 9, 1)	,,	,,
किसको प्रातिमोक्ष नहीं	(2, 3, 10, 1-5)	,,	,,
वर्षावास विधान	(3, 1, 1, 1-2)	वेणुवन कलन्दक निवाप	राजगृह
वर्षावास में यात्रा निषिद्ध	(3,1,2,1-2)	,,	,,

चम्म खन्धक

सोण कोटिविंश की कथा	(5, 1, 1-17)	गृद्धकूट पर्वत,	राजगृह
उपानह के रंग और भेद	(5, 2, 1-5)	,,	,,

भेषज्ज खन्धक

गुड़ादि परिभोग-आदेश	(6, 2, 1, 1-3)	राजगृह	,,
संगृहीत और स्वयं पकाये भोजन का निषेध	(6, 2, 2, 1-6)	,,	,,
निर्जन स्थान में भोजन विधान	(6, 2, 3, 1-4)	वेणुवन	,,
श्रद्धादत्त भोजन जो अतिरिक्त न हो, ग्रहण की अनुमति	(6, 2, 4, 1-4)	,,	,,
गुप्त स्थान में वस्तिकर्म आदि का निषेध	(6, 2, 5, 1-3)	राजगृह	,,
वेलट्ठकधान की कथा	(6, 2, 10, 1-10)	राजगृह का मार्ग	,,
पारसीय ग्राम निर्वाण-कथा	(6, 2, 11, 1-6)	पाटलिपुत्र	,,

महामात्य वर्षकार की कथा	(6, 2, [illegible], 1-8)	पाटलिपुत्र	राजगृह

चीवर खन्धक

जीवक-कौमारभृत्य-कथा	(8, 1, 1, 1-18)	वेणुवन कलन्दक निवाप	,,
बिम्बिसार की रोग-परिहार कथा	(8, 1, 2, 1-3)	,,	,,
राजगृह-श्रेष्ठी को रोग-रहित करना	(8, 1, 3, 1-9)	,,	,,
वाराणसी निवासी श्रेष्ठीपुत्र का रोग	(8, 1, 4, 1-4)	,,	,,
प्रद्योत की बीमारी	(8, 1, 5, 1-8)	,,	,,
प्रद्योत का दान और चीवर-प्रतिगृह की अनुज्ञा	(8, 1, 6, 1-10)	,,	,,
काशिराज का दान और कंबल-ग्रहण की अनुज्ञा	(8, 2, 1, 1-2)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
छह प्रकार के चीवरों का धारण	(8, 2, 2, 1-2)	,,	,,
चीवर के साथ पांसुकुल धारण	(8, 2, 3, 1-5)	,,	,,
चीवरों का बंटवारा	(8, 2, 4, 1)	,,	,,
चीवर-ग्राहक की योग्यता और अन्य बातें	(8, 2, 4, 1)	,,	,,
चीवरों की रंगाई	(8, 2, 5, 1-3)	,,	,,
दक्षिणागिरि की कथा	(8, 2, 6, 1)	दक्षिणगिरि	मगध
चीवर-निर्माण विधान	(8, 2, 6, 2)	राजगृह	,,

चुल्लवग्ग*

समथ खन्धक

स्मृति विनय	(4, 2, 1)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
अमूढ़ विनय	(4, 2, 2)	,,	,,
प्रतिज्ञात करण	(4, 2, 3)	,,	,,
यद्भूयसिक	(4, 2, 4)	,,	,,
तत्पापीयसिक	(4, 2, 5)	,,	,,
तिणवत्थारक	(4, 2, 6)	,,	,,

* प्रकाशक, नालंदा देवनागरी पालि ग्रंथमाला, बिहार, सन् 1958 ई..

चार अधिकरण	(4, 3, 1)	वेणुवन कलंदक निवाप	मगध
अधिकरणों के मूल	(4, 3, 1)	,,	,,
अधिकरणों के भेद	(4, 3, 3)	,,	,,
अधिकरणों का नामकरण	(4, 3, 4)	,,	,,
अधिकरणों का शमन	(4, 3, 4)	,,	,,

खुद्दकवत्थु खन्धक

स्नान, प्रसाधन एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का विधान	(5, 1, 1-13)	राजगृह	,,

शयन-आसन खन्धक

सर्वसाधन सम्पन्न विहार का दान	(6, 1, 1-6)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
विहार की रंगाई और नाना प्रकार के घर	(6, 2, 1-11)	,,	,,
अनाथपिण्डक की दीक्षा	(6, 3, 1)	राजगृह	मगध
संघ के कर्मचारियों का चुनाव	(6, 6, 1-12)	वेणुवन	राजगृह
देवदत्त की महंथी की याचना	(7, 2, 4-6)	राजगृह	मगध
देवदत्त का विद्रोह	(7, 2, 1-10)	,,	,,
संघ भेद की व्याख्या	(7, 3, 1-3)	,,	,,
संघ भेदक को पाप	(7, 4, 1-2)	,,	,,

पञ्चशतिका खन्धक

प्रथम संगीति की कथा	(11, 1, 1-3)	राजगृह	मगध
आनन्द पर दोषारोपण	(11, 2, 1-3)	,,	,,
भिक्षु पूर्ण का संगीति में सम्मिलित होने से इन्कार करना	(11, 3, 1)	वेणुवन	,,
उदयन को उपदेश और छन्न को दंड	(11, 4, 1)	,,	,,

मज्झिम निकाय

अनङ्गण सुत्त	(1, 1, 5)	राजगृह	,,
चूलदुक्खक्खन्धक सुत्त	(1, 2, 4)	गृद्धकूट पर्वत	राजगृह

रथविनीत सुत्त	(1, 3, 4)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
महासारोपम सुत्त	(1, 3, 9)	गृद्धकूट पर्वत	,,
चूलवेदल्ल सुत्त	(1, 5, 4)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
जीवक सुत्त	(2, 1, 5)	राजगृह	मगध
अभय राजकुमार सुत्त	(2, 1, 8)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
अम्बलट्ठिक राहुलोवाद सुत्त	(2, 2, 1)	,,	,,
गुलिस्सानि सुत्त	(2, 3, 3)	,,	,,
महावच्छ गोत्त सुत्त	(2, 3, 3)	,,	,,
दीघनख सुत्त	(2, 3, 4)	गृद्धकूट पर्वत	,,
महासुकुलुदायि सुत्त	(2, 3, 7)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
चूल सुकुलुदायि सुत्त	(2, 3, 9)	,,	,,
धानंजानि सुत्त	(2, 5, 7)	,,	,,
गोपक मोग्गल्लान सुत्त	(3, 1, 8)	वेणुवन	,,
इसिगिल सुत्त	(3, 2, 6)	ऋषिगिरि पर्वत	,,
वकुल सुत्त	(3, 3, 4)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
दत्तभूमि सुत्त	(3, 3, 5)	,,	,,
भूमिज सुत्त	(3, 3, 6)	,,	,,
महाकच्चायन भद्देकरत्त सुत्त	(3, 4, 3)	तपोदाराम	,,
महाकम्भ विभंग सुत्त	(3, 4, 6)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
धातु विभंग सुत्त	(3, 4, 10)	राजगृह	मगध
छन्नोवाद सुत्त	(3, 5, 2)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
पिण्डपातपारिशुद्धि सुत्त	(3, 5, 10)	,,	,,

दीघ निकाय

सामञ्ञफल सुत्त (सम्पूर्ण)	जीवन आम्रवन	राजगृह	मगध
महापरिनिव्वाण सुत्त "	(16, 1, 1-12)	गृद्धकूट पर्वत	राजगृह

महापरिनिव्वाण सुत्त (सम्पूर्ण)	(16, 1, 13-14)	अम्बलट्ठिका	मगध
महागोविन्द सुत्त	(16, 1, 1-60)	गृद्धकूट पर्वत	राजगृह

संयुक्त निकाय*

समिद्धि सुत्त	(1, 2, 10)	तपोदाराम	राजगृह
सकलित सुत्त	(1, 4, 8)	मद्दकुक्षिमृगदाव	,,
दीघलट्ठि सुत्त	(2, 2, 3)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
नन्दन सुत्त	(2, 2, 4)	,,	,,
चन्दन सुत्त	(2, 2, 5)	,,	,,
वासुदत्त सुत्त	(2, 2, 6)	,,	,,
सुब्रह्म सुत्त	(2, 2, 7)	,,	,,
उत्तर सुत्त	(2, 2, 9)	राजगृह	मगध
नाना तित्थिम सुत्त	(2, 3, 10)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
सप्प सुत्त	(4, 1, 6)	,,	,,
सोप्पसि सुत्त	(4, 1, 7)	,,	,,
आयु सुत्त	(4, 1, 9)	,,	,,
आयु सुत्त	(4, 1, 10)	राजगृह	मगध
पाषाण सुत्त	(4, 2, 1)	गृद्धकूट पर्वत	राजगृह
सकलिक सुत्त	(4, 2, 3)	मद्दकुक्षि मृगदाव	,,
गोधिक सुत्त	(4, 3, 3)	वेणुवन कलंद्रक निवाप	,,
सनत्कुमार सुत्त	(6, 1, 2)	सर्पिणी नदी का तट	,,
देवदत्त सुत्त	(6, 2, 2)	गृद्धकूट पर्वत	,,
धनञ्जानि सुत्त	(7, 1, 1)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
अक्कोस सुत्त	(7, 1, 2)	,,	,,
असुरिन्द सुत्त	(7, 1, 3)	,,	,,
बिलङ्गिक सुत्त	(7, 1, 4)	,,	,,
अग्गिक सुत्त	(7, 1)	,,	,,
कोण्डञ्ञ सुत्त	(8, 9)	,,	,,

* अनु., भिक्षु जगदीश काश्यप और भिक्षु धर्मरक्षित; प्रकाशक, महाबोधिसभा, सारनाथ (बनारस)।

मोग्गलान सुत्त	(8, 10)	ऋषिगिरि की काल शिला	राजगृह
इन्दक सुत्त	(10, 1)	इन्द्रकूट पर्वत	,,
सक्क सुत्त	(10, 2)	गृद्धकूट पर्वत	,,
सुदत्त सुत्त	(10, 8)	शीतवन	,,
सुक्का सुत्त	(10, 9)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
सुक्का सुत्त	(10, 10)	,,	,,
चीरा सुत्त	(10, 11)	,,	,,
दलिद्द सुत्त	(11, 2, 4)	,,	,,
यजमान सुत्त	(11, 2, 6)	गृद्धकूट पर्वत	,,
अचेल सुत्त	(12, 2, 7)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
अञ्ञतित्थिय सुत्त	(12, 3, 4)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
सुसीम सुत्त	(12, 7, 10)	,,	,,
चङ्कमं सुत्त	(13, 2, 5)	गृद्धकूट पर्वत	,,
गंगा सुत्त	(14, 1, 8)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
पुग्गल सुत्त	(14, 1, 10)	गृद्धकूट पर्वत	,,
तिंसति सुत्त	(14, 2, 3)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
वेपुल्ल पब्बत सुत्त	(14, 2, 10)	गृद्धकूट पर्वत	,,
जिण्ण सुत्त	(15, 5)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
पठम ओवाद सुत्त	(15, 6)	,,	,,
दुतिय ओवाद सुत्त	(15, 7)	,,	,,
ततिय ओवाद सुत्त	(15, 8)	,,	,,
चीवर सुत्त	(15, 11)	,,	,,
पक्कन्त सुत्त	(16, 4, 5)	गृद्धकूट पर्वत	,,
रथ सुत्त	(16, 4, 6)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
अट्ठिपेस सुत्त	(18, 1, 1)	,,	,,

गोघातक सुत्त	(18, 1, 2)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
पिण्ड साकुणी सुत्त	(18, 1, 3)	,,	,,
निच्छवा रब्भि सुत्त	(18, 1, 4)	,,	,,
असिसूकरिक सुत्त	(18, 1, 5)	गृद्धकूट पर्वत	,,
सति मागवी सुत्त	(18 1, 6)	,,	,,
उसुकाणिक सुत्त	(18, 1, 7)	,,	,,
सूचि सारथी सुत्त	(18, 1, 8)	राजगृह	मगध
सूचक सुत्त	(18, 1, 9)	,,	,,
गामकूटक सुत्त	(18, 1, 10)	,,	,,
कूपनिमुग्ग सुत्त	(18, 2, 1)	गृद्धकूट पर्वत	राजगृह
गूथखादिक सुत्त	(18, 2, 2)	,,	,,
निच्छवित्थी सुत्त	(18, 2, 3)	,,	,,
मङगलित्थि सुत्त	(18, 2, 4)	,,	,,
सीसछिन्न सुत्त	(18. 2, 6)	,,	,,
भिक्खु सुत्त	(18, 2, 7)	,,	,,
भिक्खुणी सुत्त	(18, 2, 8)	,,	,,
सिक्खमाना सुत्त	(18, 2, 9)	,,	,,
सामणेर सुत्त	(18, 2, 10)	,,	,,
सामणेरी सुत्त	(18, 2, 11)	,,	,,
थेरनाम सुत्त	(22, 10)	राजगृह	मगध
पठम सोण सुत्त	(21, 1, 5, 7)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
दुतिय सोण सुत्त	(21, 1, 5, 8)	,,	,,
वक्कलि सुत्त	(21, 2. 4, 5)	,,	,,
अस्सजि सुत्त	(21, 2, 4, 6)	,,	,,
सूचिमुखी सुत्त	(27, 10)	,,	,,
अन्धभूत सुत्त	(34, 1, 3, 7)	,,	,,
सारुप्प सुत्त	(34, 1, 3, 8)	,,	,,
समिद्धि सुत्त	(34, 2, 2, 3)	,,	,,
,, ,,	(34, 2, 2, 4-6)	,,	,,
उपसेन सुत्त	(34. 2. 2. 7)	शीतवन	,,
छन्दस्सायतनिक सुत्त	(34, 2, 2. 9)	,,	,,

छन्दस्सायतनिक सुत्त	(34, 2, 2, 10-11)	शीतवन	राजगृह
छन्न सुत्त	(34, 2, 4, 4)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
पुण्ण सुत्त	(34, 2, 4, 5)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
बाहिय सुत्त	(34, 2, 4, 6)	,,	,,
एज सुत्त	(34, 2, 4, 7-8)	,,	,,
द्वय सुत्त	(34, 2, 4, 9-10)	,,	,,
संगह्य सुत्त	(34, 2, 5, 1-2)	,,	,,
परिहान सुत्त	(34, 2, 5, 3)	,,	,,
सक्क सुत्त	(34, 3, 2, 5)	गृद्धकूट पर्वत	,,
पञ्चसिख सुत्त	(34, 3, 2, 6)	,,	,,
सोण सुत्त	(34, 3, 3, 5)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
पठम जीवकम्बवन सुत्त	(34, 4, 1, 5)	जीवक-आम्रवन	,,
दुतिय जीवकम्बवन सुत्त	(34, 4, 1, 6)	जीवक-आम्रवन	,,
पठम कोट्ठित सुत्त	(34, 4, 1, 7)	,,	,,
दुतिय ततिय कोट्ठित सुत्त	(34, 4, 1, 8-9)	,,	,,
मिच्छादिट्ठि सुत्त	(34, 4, 1, 10)	,,	,,
सक्काय सुत्त	(34, 4, 1, 11)	,,	,,
अत्त सुत्त	(34, 4, 1, 12)	,,	,,
सट्ठिपेय्याल सुत्त	(34, 4, 2, 1-60)	,,	,,
सीवक सुत्त	(34, 5, 3, 1)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
अट्ठसत सुत्त	(,, ,, ,, 2)	,,	,,
मिक्ख सुत्त	(,, ,, ,, 3)	,,	,,
पुब्बेञान सुत्त	(,, ,, ,, 4)	,,	,,
भिक्खु सुत्त	(,, ,, ,, 5)	,,	,,
पठम दुतिय, ततिय, समण ब्राह्मण सुत्त	(34, 5, 3, 6)	,,	,,
सुद्धिक निरांमिस सुत्त	(34, 1, 3, 9)	,,	,,
वापामनाप सुत्त	(35, 1, 1-2)	,,	,,
आवेणिक सुत्त	(35, 1, 3)	,,	,,

तोहि सुत्त	(35, 1, 4)	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
कोधन सुत्त	(,, ,, 5)	,,	,,
उपनाही सुत्त	(,, ,, 6)	,,	,,
इस्सुकी सुत्त	(35, 1, 7)	,,	,,
मच्छरी सुत्त	(,, ,, 8)	,,	,,
अतिचारी सुत्त	(,, ,, 9)	,,	,,
दुस्सील सुत्त	(,, ,, 10)	,,	,,
अप्पसुत्त सुत्त	(,, ,, 11)	,,	,,
कुसीत सुत्त	(,, ,, 12)	,,	,,
मुट्ठस्सति सुत्त	(, [illegible]3)	,,	,,
पञ्चवेट सुत्त	(,, ,, 14)	,,	,,
अकोधन सुत्त	(35, 2, 1-10)	,,	,,
विसारद आदि	(35, 3, 1-10)	,,	,,
पुत्त-सुत्त आदि	(40, 2-5)	,,	,,
मणिचूल, सुत्त	(40, 10)	,,	,,
पठम, दुतिय, ततिय गिलान सुत्त	(44, 2, 4-6)	वेणुवन	,,
पारगामी सुत्त आदि	(44, 2, 7-10)	,,	,,
उदायी वर्ग	(44, 3, 1-10)	,,	,,
नीवरण वर्ग	(44, 4, 1-10)	,,	,,
चक्रवर्ती वर्ग	(44, 5, 1-10)	,,	,,
अभय सुत्त	(44, 6, 6)	गृद्धकूट पर्वत	,,
सिरिवड्ढ सुत्त	(45, 3, 9)	वेणुवन	,,
मानदिन्न सुत्त	(45, 3, 10)	,,	,,
सूकरखात सुत्त	(46, 6, 8)	गृद्धकूट पर्वत	,,
दीघायु सुत्त	(53, 1, 3)	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
चिंता सुत्त	(54, 5, 1)	,,	,,
पयाल सुत्त	(,, ,, 2)	गृद्धकूट पर्वत	,,
परिलाह सुत्त	(,, ,, 3)	,,	,,
कूटागार सुत्त	(,, ,, 4)	,,	,,

जातक कथाएँ•

चुल्लसेट्ठि जातक	4	जीवक आम्रवन	राजगृह
लक्खण जातक	11	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
कुरुंगमिग जातक	21	,,	,,
महिलामुख जातक	26	,,	,,
वट्टक जातक	35	मगध में चारिका करते हुए	,,
मकस जातक	44	,,	,,
वानरिन्द जातक	57	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
तयोधम्म जातक	58	,,	,,
सीलव-नागराज जातक	72	,,	,,
सच्चंकिर जातक	73	,,	,,
मगल जातक	87	,,	,,
सिगाल जातक	113	,,	,,
दुम्मेध जातक	122	,,	,,
असम्पादान जातक	131	,,	,,
उभतोभट्ठ जातक	139	,,	,,
गोध जातक (2)	141	,,	,,
सिगाल जातक	142	,,	,,
विरोचन जातक	143	,,	,,
सञ्जीव जातक	150	,,	,,
विनीलक जातक	160	,,	,,
समिद्धि जातक	167	तपोदाराम	,,
दुब्भिय मक्कट जातक	174	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
गिरिदत्त जातक	184	,,	,,
दधिवाहन जातक	186	,,	,,
मणिचोर जातक	194	,,	,,
कुरङ्गमृग जातक	206	,,	,,

• अनु. भदन्त आनन्द कौसल्यायन; प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

कन्दगणक जातक	210	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
धम्मद्ध जातक	220	,,	,,
चुल्लनन्दिय जातक	222	,,	,,
कुम्भाल जातक	224	,,	,,
उपाहन जातक	231	,,	,,
हरितजात जातक	239	,,	,,
सब्बदाह जातक	241	,,	,,
गुत्तिल जातक	243	,,	,,
रोमक जातक	277	,,	,,
जम्बुखादक जातक	294	,,	,,
अन्त जातक	295	,,	,,
पुचिमन्द जातक	311	,,	,,
कक्कारु जातक	326	,,	,,
कालबाहु जातक	329	,,	,,
जम्बुक जातक	335	,,	,,
थुस जातक	338	,,	,,
वानर जातक	342	,,	,,
लटुकिक जातक	357	,,	,,
सालिय जातक	367	,,	,,
मूसिक जातक	373	,,	,,
सुवण्ण कक्कटक जातक	389	,,	,,
मनोज जातक	397	,,	,,
परन्तप जातक	416	,,	,,
गिज्झ जातक	427	गृद्धकूट पर्वत (अतीत से कथा)	,,
तित्तिर जातक	438	,,	,,
निग्रोध जातक	445	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
कुक्कुट जातक	448	,,	,,
महामंगल जातक	453	संस्थागार (सभा भवन)	,,
रूरु जातक	482	वेणुवन कलंदक निवाप	,,

रोहन्तमिग जातक	501	वेणुवन कलंदक निवाप	राजगृह
हंस जातक	502	,,	,,
सत्तिगुम्ब जातक	503	मद्दकुक्षि मृगदाव	,,
महाकपि जातक	516	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
सरभङ्ग जातक	522	,,	,,
संकिच्च जातक	530	जीवक-आम्रवन	,,
चुल्लहंस जातक	533	वेणुवन कलंदक निवाप	,,
महाहंस जातक	534	,,	,,
खण्डहाल जातक	542	गृद्धकूट पर्वत	,,

सुत्तनिपात•

पब्बज्जा सुत्त	राजगृह	मगध
माघ सुत्त	गृद्धकूट पर्वत	राजगृह
समिय सुत्त	वेणुवन कलंदक निवाप	,,

• मूल पालि तथा हिन्दी अनुवाद सहित। अनु. भिक्षु धर्मरत्न, एम.ए., प्रकाशक, महाबोधिसभा, वाराणसी, सन् 1951।
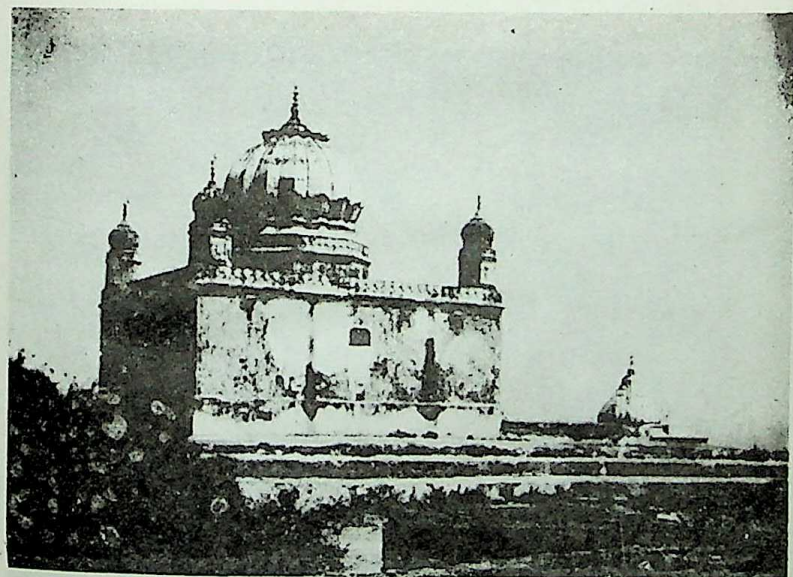
जैन मंदिर
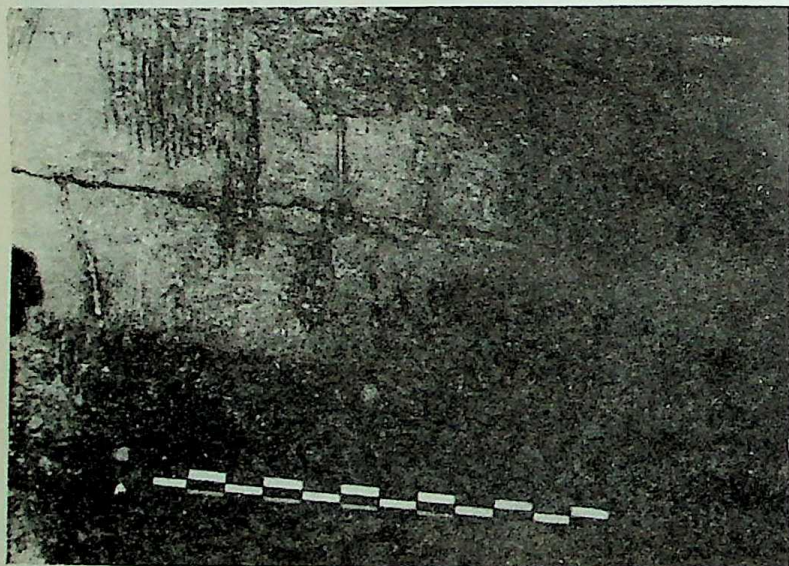
सोन भण्डार गुफा के छत के ऊपर का शिलालेख
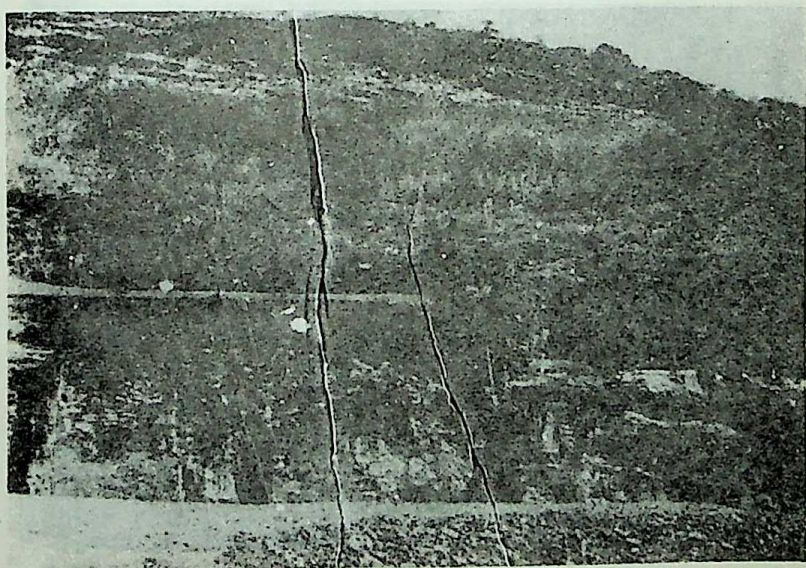
सोन भण्डार गुफा
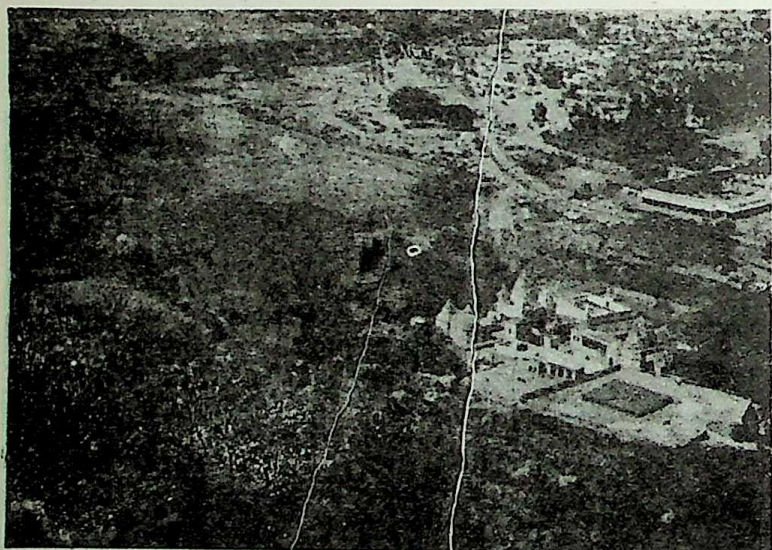
नवीन राजगीर

ग्रंथ-सूची

बुद्धकालीन राजगृह, अनंत कुमार

प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, स्व. प्रो. राधाकृष्ण चौधरी

प्राचीन भारत, आर. एस. शर्मा

प्राचीन भारत — एक रूपरेखा, डी. एन. झा

प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, स्व. राधाकृष्ण चौधरी

प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, सत्यकेतु विद्यालंकार

पुरातत्व की रूपरेखा, डॉ. मदनमोहन सिंह (जानकी प्रकाशन से प्रकाशित, 1973)

बौद्ध धर्म और बिहार, 1956, स्व. हवलदार त्रिपाठी

विश्व इतिहास की झलक, पं. जवाहरलाल नेहरू, (सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली से प्रकाशित)

श्रीमद्‌भागवत, वेदव्यास

गीता रहस्य, बाल गंगाधर तिलक

भगवान महावीर और उनका तत्व दर्शन, आचार्य रत्न श्री 108 भूषण जी विद्यालंकार

हमारे प्रेरणापुंज, भारत के राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा

महावग्गो (दो भाग-मूलपालि), सम्पादक—एन. के. भागवत, प्रकाशक—बंबई विश्वविद्यालय, बंबई-1, 1944-45 ई.

दीघ निकाय (तीन भाग-मूलपालि), प्रकाशक—नालंदा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला, नालंदा, 1958 ई.

चूलवग्गो (मूल पालि-सहित हिन्दी), प्रकाशक—नालंदा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला, नालंदा, 1958 ई.

सुतनिपात (मूल पालि-सहित हिन्दी), संपादक—भिक्षु धर्मरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ (बनारस), 1951 ई.

मज्झिम निकाय (मूल पालि), प्रकाशक—नालंदा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला, नालंदा, 1958 ई.

जातकट्ठकथा (मूल पालि-बुद्धघोष), भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1951 ई.

प्रज्ञोपायविनिश्रयसिद्धि (अनंगवज्र), गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौंदा

ज्ञान सिद्धि (अनंगवज्र), ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा

ललित विस्तर (सम्पादक—डॉ. राजेन्द्र लाल मित्र), प्रकाशक—जे.-डब्ल्यू. थामस, बैपटिस्ट मिशन प्रेस, 57 पार्कस्ट्रीट, कलकत्ता, 1887 ई.

दीघ निकाय (हिन्दी), महापंडित राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, 1936 ई.

मज्झिम निकाय (हिन्दी), पं. राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, 1936 ई.

थेरी-गाथा (अनु.—भरत सिंह उपाध्याय), प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

जातक (छह भार्गो में), अनु.—भदन्त आनंद कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन

महावंस (गायगर का संस्करण), भदन्त आनंद कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

महाभारत, भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टिच्यूट, पूना

बाल्मीकीय रामायण, पाण्डुरंगजावजी, बंबई

बुद्धचर्या (पं. राहुल सांकृत्यायन), प्रकाशक—शिवप्रसाद गुप्त, सेवा उपवन, काशी, विक्रम संवत् 1988

पालि साहित्य का इतिहास (श्री भरतसिंह उपाध्याय), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1949 ई.

बौद्ध-धर्म-दर्शन (आचार्य नरेन्द्र देव), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

भगवान बुद्ध (धर्मानन्द कोसम्बी), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1956 ई.

बुद्ध और उसके अनुचर (भदन्त आनंद कौसल्यायन), प्रयाग पब्लिशिंग हाउस, प्रयाग, 1950 ई.

बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन (श्री जयचन्द विद्यालंकार और श्री पृथ्वी सिंह मेहता) प्रकाशक—पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, 1940 ई.

भारतीय इतिहास का उन्मीलन (श्री जयचन्द विद्यालंकार-5वां संस्करण)

तपोभूमि (श्री राम गोपाल मिश्र), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् 2007

प्राङ्मौर्य बिहार (डॉ. देवसहाय त्रिवेदी), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

भारतीय कला को बिहार की देन (डॉ. विन्ध्येश्वरी प्रसाद सिंह), प्रकाशक-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, डॉ. विसेंट स्मिथ, 1924 ई.

आंग्ल भाषा के ग्रन्थ

Rajagriha —A. Ghosh

Rajagrha and its Surroundings, Geographical Rev. India—R. Bhattacharya and U. Sen, 28 (2) Je '66 41-46

A Note on the Topography of Ancient Rajagriha —Madan Mohan Singh, J Bihar RES SOC 50 (1-4), Ja—De 64, 23, 26

A Record of Buddhistic Kingdoms —James Legge, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.

The Indian Antiquary—A Journal of Oriental Research 1872-1933, Edited by—JAS Burgess, Published by Swati Publications, 34, Central Market, Ashok Vihar Delhi, 1984

Archaeological Survey of India—Annual Reports Published by Swati Publications.

Surfuddin Maneri : The Hundred Letters—Paul Jackson

Bihar's Makhdoom Shahib—Paul Jackson

Tourism in Bihar —Ramdulari Sinha

The Archaeology of Bihar —Parmeshri Lal Gupta

Janapada State in Ancient India —Mishra (Sudam), Varanasi Bhartiya Vidya Prakashan, 1973

Lectures on the Ancient History of India on the Period of 650 B.C.— D. R. Bhandarkar, Bhartiya Publishing House, Delhi, 1977

Corporate Life in Ancient India—R. C. Mazumdar, Ed. 2 Calcutta University, 1922

Buddhist India (London 1903)—T. W. R. Devis

Social Organisation of North-Eastern India in Buddha's Time (Calcutta, 1920)

Society at the Time of the Buddha—Narendra Wagle, Bombay, 1966

Geography of Early Buddhism—B. C. Low, London, 1932

Progress of Historical Researches in Bihar 1912-1985—Dr. B. P. Sinha, Published by Puravid Parishad, Patna

Vrbanisation in Ancient India—Vijay Kumar Thakur

An Outline of the Religious Literature, Oxford, 1920

Sudras in Ancient India, 1958—Dr. R. S. Sharma

Political History of Ancient India—H. C. Roychaudhary

History of India, 1966—Romila Thapar

Outline of Indian Philosophy, Delhi 1971—A. K. Warder

Antiquarian Remains in Bihar—D. R. Patil

अनुक्रमणिका

लेखक भोला झा का जन्म 1966 ई. में समस्तीपुर जिला अंतर्गत शेखपुरा नामक ग्राम में एक निर्धन कृषक परिवार में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय से इतिहास और प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। इन्होंने 1989 ई० में बी. आर. एन. के. एस. कालेज, कल्याणपुर, समस्तीपुर में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग के व्याख्याता के रूप में अध्यापन कार्य आरम्भ किया। वाद-विवाद प्रतियोगिता, पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, व्याख्यान तथा अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में इनकी अभिरुचि छात्रावस्था से ही रही है। आकाशवाणी से इनकी वार्ता नियमित रूप से प्रसारित होती है। पटेल विचार मंच, गांधी विचार मंच तथा अम्बेदकर विचार मंच से इनके अनेक व्याख्यान हो चुके हैं। के. पी. जायसवाल रिसर्च इंस्टीच्यूटं और बिहार रिसर्च सोसाइटी में इन्होंने अनेक बार आलेख पढ़ा है तथा इनके शोधपत्र इन संस्थाओं की पत्रिका में प्रकाशित हो चुके हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सौजन्य से ब्रजमोहन दास कालिज, दयालपुर, वैशाली के प्रांगण में 'गांधी मिथक नहीं, यथार्थ' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में उपस्थित विद्वज्जनों ने लेखक के व्याख्यान की प्रशंसा की थी। प्रो. आर. एस. शर्मा की अध्यक्षता में आर. बी. कालेज के प्रांगण में 'समस्तीपुर का क्षेत्रीय इतिहास : समस्यायें और संभावनायें' विषय पर लेखक के व्याख्यान की सराहना उपस्थित विद्वानों ने की थी। वर्तमान में लेखक 'वैशाली' तथा 'नवग्रह प्रतिमा' पर कार्यरत हैं। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।